रथ के पहिये

साहित्य भवन लिमिटेड
इलाहाबाद

लेखक की अन्य रचनाएँ

लोक-साहित्य : १. धरती गाती है, २. धीरे बहो, गंगा ! ३. बेला फूले आधी रात, ४. बाजत आवे ढोल; **कविता :** बन्दनवार ; **कहानियाँ :** १. चट्टान से पूछ लो, २. चाय का रंग, ३. नये धान से पहले, ४. सड़क नहीं बन्दूक; **निबन्ध-संग्रह :** १. एक युग : एक प्रतीक, २. रेखाएँ बोल उठीं, ३. क्या गोरी क्या साँवरी ।

पंजाबी में—लोक-साहित्य : १. गिद्धा, २. दीवा बले सारी रात; **कविता :** १. धरती दीयां वाजाँ, २. मुढ़का ते कणक; **कहानियाँ :** १. कुंग पोश, २. सोना गाची, ३. देवता डिग्ग पिया ।

उर्दू में—लोक-साहित्य : १. मैं हूँ खानाबदोश, २. गाये जा हिन्दुस्तान; **कहानियाँ :** १. नये देवता, २. और बाँसुरी बजती रही ।

अंग्रेजी में—लोक-साहित्य : Meet My People.

रथ के पहिये

देवेन्द्र सत्यार्थी

एशिया प्रकाशन : नई दिल्ली

मूल्य : साढ़े पाँच रुपये

मुख्य वितरक :

राजकमल प्रकाशन, १, फ़ैज़ बाज़ार, दिल्ली।

प्रकाशक : एशिया प्रकाशन, १००, बेयर्ड रोड, नई दिल्ली।
मुद्रक : गोपीनाथ सेठ, नवीन प्रेस, दिल्ली।

कविता वसुमती को

"घर में कन्या हुई है; उसका नाम रखा है कविता वसुमती, आशीर्वाद दीजिए।"

"कविता वसुमती—कविता की धरित्री— नाम सुन्दर है। मैं हूँ कवि; काव्य-सृजन न करूँ तो कवि कौन कहेगा? तुम्हारा मज़ा है। काव्य रचो न रचो; तुम हो कविता के पिता।"

—यों तुम्हें गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ठाकुर का आशीर्वाद प्राप्त हुआ, अब यह है एक उपन्यास, इसे स्वीकार करो।

रीरीना रीरीना, राजा, रीरीना
रथ चाले,[1] राजा, रथ चाले
रीरीना रीरीना, राजा, रीरीना
काहे लागे चका,[2] राजा, काहे लागे
रीरीना रीरीना, राजा, रीरीना
चन्दा सुरुज, राजा, चका लागे[3]
रीरीना रीरीना, राजा, रीरीना
सोने रूपा रथ,[4] राजा, हीरा लागे
रीरीना रीरीना, राजा, रीरीना
काहे लागे बैल, राजा, काहे लागे
रीरीना रीरीना, राजा, रीरीना
दिन अरु रात, राजा, बैल लागे[5]
रीरीना रीरीना, राजा, रीरीना
कोन रथवाह,[6] राजा, कोन रथवाह
रीरीना रीरीना, राजा, रीरीना
मानुख का पूत, राजा, रथ रथवाह[7]
रीरीना रीरीना, राजा, रीरीना

—एक गोंड लोकगीत

---

१. रथ चलता है, २. किसके पहिये लगे हैं ? ३. चाँद-सूरज के पहिये लगे हैं, ४. सोने-चाँदी का रथ है, ५. दिन और रात बैलों के रूप में जुते हैं, राजा ! ६. कौन सारथी है ? ७. मानवपुत्र है रथ का सारथी, राजा !

आमुख

'अन्नदेवता', मेरी पहली कहानी, तेरह वर्ष में लिखी गई थी। यह आत्म-स्वीकृति उपहास का विषय बन सकती है। लेकिन यह एक सचाई है। सन् १६२७ में लम्बी खानाबदोशी इख्तियार की। सन् १६४० के अन्त में एकाएक कहानी लिखने की ओर अग्रसर हुआ। वैसे 'अन्नदेवता' कुछ घण्टों में ही लिख डाली थी। लेकिन उसके पीछे तेरह वर्ष की लम्बी यात्रा थी।

'रथ के पहिये', मेरा पहला उपन्यास, सात वर्ष के लम्बे परिश्रम का परिणाम है। लेखक के लिए यह किसी प्रकार सम्भव न था कि वह जी में आई हुई बात को लेखनी उठाकर लिख डाले, क्योंकि यों ही घसीट देने का तो प्रश्न ही न उठता था।

सन् १६४३ में मुझे मोहेंजोदड़ो जाने का अवसर मिला। मैं जल्दी में था। इसलिए मोहेंजोदड़ो को ऊपर-ऊपर से ही देख पाया।

सन् १६४५ में मुझे पहली बार एक उपन्यास लिखने का विचार आया। विषय के लिए कोई कठिनाई न हुई। ज़मीन सामने थी जिस पर

खेमा ताना जा सकता था। सचमुच मुझे इस धन्धे में रचना का एक नया प्रयोग करना स्वीकार था जो चिन्तन और कर्म की प्रेरणा दे सके। मैं अपने भीतर एक कसक अनुभव कर रहा था। 'अन्नदेवता' का विषय एक बड़ा कैन्वेस चाहता था।

सन् १६४६ में, जब मैं लाहौर से दिल्ली चला आया, गवर्नमेण्ट हाउस में एक प्रदर्शनी देखने का अवसर मिला जिसमें मोहेंजोदड़ो से मिली हुई वस्तुओं से भारत की संस्कृति को शुरू होते दिखाया गया था। प्राचीन संस्कृति, पुरातत्त्व और कला-सम्बन्धी इस प्रदर्शनी में मोहेंजोदड़ो वाला विंग बाकी प्रदर्शनी पर भारी था। मेरे मन पर इस ने गहरी रेखाएं छोड़ीं। सभ्यता, संस्कृति और चिन्तन-कर्म के पूरे ढाँचे में मोहेंजोदड़ो का महत्त्व पूरी तरह सामने आया।

इस प्रदर्शनी से लौटकर मैं अपने एक मित्र के साथ कनॉट प्लेस के एक पार्क में आ बैठा। बातें करते-करते मैं एकाएक खामोश हो गया, जैसे मैं कच्ची सीढ़ियों के रास्ते किसी बावली में उतर गया।

"भई कहाँ चले गये ?" मेरे मित्र ने मेरा कन्धा झटककर कहा, "बहुत दूर निकल गये ?"

"वाकई बहुत दूर निकल गया था," मैंने सँभलकर कहा।

"जिस्म तो यहीं मौजूद रहा।"

"मैं पाताल में उतर गया था—मानसिक रूप में।"

गोंडों का जीवन, जिसकी एक झलक 'अन्नदेवता' में प्रस्तुत कर चुका था, पूरे रंग में सामने आकर खड़ी हो गई—एक जीती-जागती सभ्यता, जो अनगिनत शताब्दियों से ज़मीन के नीचे दफ़न होने से इन्कार करती रही थी; गोंडों के दिलों की धड़कनें, उनके गीत और नाच, जीने के पैमान, कबीले की परम्पराओं में ताजा लहू की गरमी, उनकी जीवन-चिन्ता और संघर्ष, जिसे लेकर वे समय के रथ पर भविष्य की ओर अग्रसर होते रहे थे, अंधियारे को पीछे छोड़ते हुए, एक नये क्षितिज की ओर देखते हुए,

एक नई उषा का समाचार सुनते हुए। ये लोग अपने से चन्द कदम के फासले पर हो रहे स्वतन्त्रता-युद्ध और मानव अधिकारों के संघर्ष से अपरिचित न थे।

मेरा विषय मेरे सम्मुख स्पष्ट हो गया। मेरे पात्र साँस लेने लगे। उनके साथ मेरा सम्बन्ध प्रतिदिन गहरा होता गया। जैसे मैं भी उन्हीं में से था। गोंड-जीवन का अनुभव मुझे पूरी तरह हो चुका था, लेकिन साहित्यिक और कलात्मक तकाज़े के अनुरूप यह आवश्यक समझा गया कि अमरकंटक और करंजिया की यात्रा फिर से की जाय। यह यात्रा बड़े कठिन मौसम में की गई जब वर्षा के पश्चात् सड़क टूट जाती है, पहाड़ी रास्तों पर घोड़े की सवारी रास नहीं आती और पैदल चलने के सिवा बात नहीं बनती।

'रथ के पहिये' की कहानी मोहेंजोदड़ो से आरम्भ होती है। अब यह पाठक के सामने है। वह देख सकता है कि गोंड-जीवन की कठिन राह पर होता हुआ यह रथ किस मंजिल की ओर जा रहा है। जहाँ तक लेखक की बात है, वह तो आज इस रथ को इस लम्बे रास्ते के एक महत्त्वपूर्ण पड़ाव तक ले आया और आज सात वर्ष बाद वह एक साहित्यिक प्रयोग से मुक्त हुआ।

देवेन्द्र सत्यार्थी

१००, बेयर्ड रोड, नई दिल्ली
७ नवम्बर, १६५२

जनता में भौतिक संसार की विभूतियों को ही पैदा करने की शक्ति नहीं होती, वह आध्यात्मिक विभूतियों को भी जन्म देती है; और इस जननी की गोद कभी खाली नहीं रहती। जनता ही सृष्टि की प्रथम दार्शनिक और आदिकवि है। संसार का श्रेष्ठ काव्य, सारे दुःखान्त और इन सबसे ऊँची चीज अर्थात् संसार की सभ्यता का इतिहास, इन सब का उसी ने निर्माण किया है। आत्म-रक्षा की भावना से प्रेरित होकर अपने जीवन के शैशव काल में खाली हाथों ही प्रकृति से लड़ते हुए भय, आश्चर्य और उल्लास से भरकर उसने धर्म को जन्म दिया। यही धर्म उसका काव्य था, और इसी में निहित था प्रकृति-शक्ति-सम्बन्धी उसका सारा ज्ञान, सारा अनुभव, जो बाहर की विरोधी शक्तियों से संघर्ष द्वारा उसे प्राप्त हुआ था। प्रकृति पर अपनी प्रथम विजय से लोकजन स्वाभिमानी हुआ, उसे अपनी शक्ति का आभास मिला, तदनन्तर नई विजय की लालसा पैदा हुई। इसी ने फिर उसे वीरगाथा की सृष्टि के लिए बाध्य किया, जो उसके निजी ज्ञान और नीतियों का संग्रह बन गया। कालान्तर में दन्तकथा और वीरगाथा मिलकर एक हो गईं, क्योंकि जनता ने वीर नायक को अपनी सामूहिक शक्ति देकर कभी उसे देवताओं के समक्ष और कभी उनके विरोध में खड़ा किया। दन्तकथा और वीरगाथा में—जैसे कि उनकी भाषा में भी—हमें किसी अकेले व्यक्ति के विचार नहीं, बल्कि समस्त जनता की सामूहिक रचना का आभास मिलता है।

—मैक्सिम गोर्की

१

इतिहास में ऐसे युग भी आते हैं जब मानव-सभ्यता सो जाती है, जैसे दादी अम्मा की परम्परागत कहानी में राजकुमारी सो जाती है। उस समय पूरे-का-पूरा नगर ज़मीन के नीचे दब जाता है। दुलहनों के सुहाग, राजनर्तकी का नृत्य, युवकों के हँसी-ठट्ठे, मन्दिरों की घंटियाँ, कारीगरों की कारीगरी, कलाकारों की कला, साँस और पसीने का स्पर्श, रंगीन वस्त्र, छज्जेदार दरवाजों और झरोखों से झाँकते हुए कुमारियों और दुलहनों के मुखड़े, लाल होंट और नूतन रक्त से गदराई बाँहें —सभ्यता की सभी रेखाएँ माटी की तहों के नीचे लम्बी ताने सोई रहती हैं, जैसे सूरज की किरनें नये पौधों का वक्षःस्थल टटोलते हुए नींद का अंचल थामे पड़ी रहती हैं। गर्मी-सर्दी की बू-बास हो चाहे खानदानी इज्जत की भावना, छोटे-बड़े का प्यार और सम्मान हो चाहे एक दूसरे की हड्डियों से गुजरकर आगे बढ़ने की लालसा, बेहूदगी और कमीनगी हो चाहे माँ की प्यार-भरी लोरियाँ, खर्चीले अधिकारियों का रोब-दाब हो चाहे दबे-पिसे लोगों की रेंगती हुई अभिलाषाएँ—सभ्यता की सभी करवटें पाताल की गहराइयों में उतर जाती हैं।

जन्मभूमि की धूल का सम्मान भी सो जाता है। मानव-मैत्री के गान भी आँख नहीं खोल सकते। मित्रता, घृणा, और पक्षपात का संघर्ष भी सो जाता है। आत्मा की आवाज़, परम्पराओं की फ़रमाइशें और प्रगति के पहिये—सभी थम जाते हैं, दब जाते हैं, सो जाते हैं।

मोहेंजोदड़ो का क्यूरेटर सन्देह और विश्वास के संगम पर खड़ा है। दूर से आते हुए यात्री की ओर देखते हुए वह दोनों हाथों की हथेलियों को एक दूसरे से मसलता है और फिर कवि की आवाज़ में पनाह लेते हुए कहता है, "ख़ाक में क्या सूरतें होंगी कि पिनहाँ हो गईं!"

यात्री की दृष्टि दूर तक तैरती चली जाती है। वह कुछ नहीं बोलता। खण्डहर खामोश हैं। उनके सीने में कोई दिल नहीं धड़कता। उनके रंग उड़ चुके हैं। उनकी करवटें खत्म हो चुकी हैं। उनकी आवाज़ मर चुकी है।

क्यूरेटर कहता है, "आज से अठारह वर्ष पहले यहाँ केवल माटी के टीले नज़र आ सकते थे। जब मैं यहाँ पहले-पहल आया, माटी के टीले होंठ हिलाकर बोले—हमारे नीचे एक सभ्यता सो रही है, तुम चाहो तो उसे जगा सकते हो। हाँ तो माटी के टीलों की आवाज़ मेरी आत्मा के तार हिला गई। मैंने माटी के टीलों का बोल पूरा कर दिखाया और सभ्यता अपने पुराने घूँघट और गहनों के साथ अपनी सुहाग-शय्या पर उठकर बैठ गई। उसने आँखें खोलकर मेरी ओर देखा। हाँ तो यह केवल अठारह वर्ष का चमत्कार है। अठारह वर्ष पहले इस पाँच हज़ार वर्ष पुरानी सभ्यता का चेहरा माटी के टीलों के नीचे छिपा हुआ था। उस समय किसी को इस दुल्हन की मुस्कान का अनुभव न हो सकता था। उस समय इस दुलहन के लमचोए नयन और गदराई बाँहें माटी के भारी-भरकम तोदों के नीचे निहित थीं। अठारह वर्ष पहले यहाँ दिन के समय सफर करना भी किसी को पसन्द न था। क्योंकि इन टीलों के सम्बन्ध में, जिनके नीचे यह सुन्दर सभ्यता सो रही थी, तरह-तरह की कहानियाँ प्रचलित थीं।"

यात्री आश्चर्य से मोहेंजोदड़ो के खण्डहरों की ओर देखता है। उसके

मुँह से एक भी बोल नहीं निकलता। वह इन खण्डहरों की कहानी इन्हीं की जबानी सुनना चाहता है। उसे बैलगाड़ी के धचके याद आते हैं। डोकरी रेल्वे स्टेशन से मोहेंजोदड़ो तक कच्ची सड़क पर चलनेवाली गाड़ियों की भद्दी, बेसुरी रीं-रीं उसकी कल्पना में तैर रही है—वैसी ही रीं-रीं जैसी खालिस लकड़ी के रहँट से आती है, जिसमें चर्ख़ के इलावा धुरी भी लकड़ी की होती है। डोकरी से आनेवाली बैलगाड़ियों की धुरी भी लकड़ी की बनती है, बल्कि पहियों के दोनों तरफ़ कीली भी लकड़ी की ही लगी रहती है। जैसे यह भद्दी, भारी-भरकम रीं-रीं उसकी आत्मा में धँसती चली गई हो।

क्यूरेटर एक सिक्काबन्द प्रशंसक के समान खण्डहरों के सिरे पर खड़ा है। उसकी दिलचस्पियाँ सीमित हैं। उसका अनुभव बन्द पोखर की तरह है। उसे विशाल संसार को देखने की अभिलाषा कभी नहीं सताती। वह खुदाई की कठिनाइयों की शिकायत कभी मुँह पर नहीं लाता। कभी-कभी मूँछों को ताव देने लगता है। घमण्ड के मारे गर्दन अकड़ जाती है। गोफना घुमाने के अन्दाज में बोलता है। खुदाई को दस्तकारी मानता है। प्रत्येक यात्री के साथ बहुत शीघ्र बेतकल्लुफ़ हो जाता है। लेकिन लतीफ़ों के स्तर तक भूलकर भी नहीं उभरता।

तरह-तरह के लोग मोहेंजोदड़ो को देखने आते हैं। प्रत्येक व्यक्ति के साथ जाकर उसे खण्डहर दिखाना क्यूरेटर के कर्तव्य के दायरे से बाहर है। वैसे उसे शौक है कि कुछ समझदार लोग भी मोहेंजोदड़ो आयँ जिन्हें मोहें-जोदड़ो दिखाने के बहाने स्वयं भी इनके सम्पर्क में रहने का अवसर मिलता रहे। जब वह पगड़ी ठीक करके दोबारा इसे सिर पर रखता है, उसके चेहरे पर किसी कदर अहमकाना-सी हँसी फूटती नजर आती है। कभी वह खाँसकर रोब झाड़ता है, कभी उसे अनुभव होता है कि उसकी मदद के बिना किसी के पल्ले मोहेंजोदड़ों के बारे में कुछ भी नहीं पड़ सकता। उसके विचारानुसार बाहर से आनेवाले प्रत्येक व्यक्ति का कर्तव्य है कि उसके पास आकर प्रार्थना

करे : 'मैं मोहेंजोदड़ो देखना चाहता हूँ।'

सिगरेट सुलगाकर कश लगाते हुए यात्री मोहेंजोदड़ो की ओर देखता है। जैसे कोई हाथ की लाटी का मुट्ठा कसकर थामे रखे। वह कुछ पूछना चाहता है। लेकिन वह खामोश रहता है। आखिर कैसे दब गया था यह नगर? इससे ऐसा-क्या गुनाह हो गया था कि उसे ज़मीन के नीचे दब जाना पड़ा? आज सो सच-सच बताओ मोहेंजोदड़ो! तुम ज़मीन के नीचे कैसे दब गये थे?

क्यूरेटर कहता है, "मोहेंजोदड़ो की सभ्यता शायद किसानों के हाथों नहीं, सौदागरों के हाथों फली-फूली जो सुदूर देशों के साथ व्यापारिक सम्बन्ध रखते थे। उनके पास पैसा ख़ूब था। ये लोग पेट काटकर भी पैसा जोड़ने के कायल थे। वे मज़े से गेहूँ और जौ खाते थे, जैसा कि यहाँ से मिलने-वाले घड़ों में भरे हुए उस युग के अनाज के नमूनों से ज़ाहिर होता है। यह फैसला नहीं किया जा सका कि यह अनाज वे स्वयं खेती करके उगाते थे या बाहर से मँगवाते थे। सिन्धु नदी के रास्ते मोहेंजोदड़ो के सौदागर अपनी नौकाओं को समुद्र में ले जाते होंगे।"

यात्री मुस्कराकर पूछता है, "उस समय हम कहाँ थे?"

"मोहेंजोदड़ो की सभ्यता बहुत बड़ी छलाँग थी," क्यूरेटर अपनी बात पर ज़ोर देता है, "इस स्थान पर पहुँचने के लिए सभ्यता को सात समुद्र पार करने पड़े होंगे। वैसे यह ठीक है कि यह सभ्यता हवा में पैदा नहीं हो गई थी। इसकी जड़ें तो हमारी धरती में पाताल तक चली गई थीं।"

यात्री हँसकर कहता है, "तो यह वह समय था जब सभ्यता की दीवारें ऊँची उठ रही थीं, जब सभ्यता के बाज़ार में नई रौनक आई, जब सभ्यता राजनर्तकी की तरह अपने घुँघरुओं की छनन-छनन के ताल पर नाचते-नाचते तन कर खड़ी हो जाती होगी—कूल्हों पर हाथ रखकर। क्षमा कीजिए, उस युग की सभ्यता आधुनिक सभ्यता से अलग होगी। आजकल तो बड़े-बड़े शहरों में यों मालूम होता है कि सभ्यता ने उस लड़की का रूप

धारण कर लिया है जो पब्लिक बस में बैठकर तेज़-तेज़ सलाइयाँ चलाते हुए स्वेटर बुनती है—मानो आधुनिक सभ्यता इसी अन्दाज़ में नये सपने बुनती है !"

क्यूरेटर तेज़-तेज़ डग भरते हुए कहता है, "लपक कर आइए। मोहें-जोदड़ो की सभ्यता बहुत पुरानी भी है और बहुत नई भी। पुरानी इसलिए कि यह वाकई पुरानी है और नई इसलिए कि यह आज भी नई मालूम होती है। मोहेंजोदड़ो के मकान देखकर इन मकानों में रहनेवालों के बारे में ज्यादा नहीं सोचना पड़ता।"

"मोहेंजोदड़ो की क्या बात है !"

"जी हाँ, मोहेंजोदड़ो की क्या बात है !"

"उन्हें टाउन प्लेनिंग का कितना तजरुबा था।"

"वाकई।"

"वे रहे दो-दो कमरों वाले छोटे घर। दो मकानों के बीच में खाँचे पर कुआँ बनाने का रिवाज़ था जहाँ दुलहनें और कँवारियाँ बड़े ठाट से पानी लेने आती होंगी। हरेक कुएँ से सटे हुए फर्श पर अलग-अलग गड्ढे बता रहे हैं कि वहाँ पनहारियाँ अपने घड़े रखती होंगी। हरेक कुएँ की मेड़ पर रस्सी की लगातार रगड़ से पैदा हुए निशान बता रहे हैं कि एक ही समय में एक से अधिक स्त्रियाँ पानी खींचती होंगी। गुसलखाने भी मुलाहज़ा हों।"

"वाह वाह ! ये तो आज भी गुसल की दावत दे रहे हैं।"

"पक्की और पटी हुई नालियाँ देखिए।"

"वाह वाह ! जैसे ये कह रही हों—अभी कल की बात है कि यहाँ पानी बहता था।"

चलते-चलते क्यूरेटर की आँखें बार-बार यात्री की ओर उठ जाती हैं। जैसे वह कहना चाहता हो कि आज तक जितने लोग मोहेंजोदड़ो देखने आये उनमें तुम्हारा दर्जा बहुत ऊँचा है। क्योंकि पहले किसी ने इतनी

दिलचस्पी न ली थी। "अब बड़े मकानों का डीज़ाइन मुलाहज़ा हो।"

"वाह वाह! ये मकान दोमंजिला रहे होंगे।"

"बाहर उतरनेवाले ज़ीने मुलाहज़ा हों। ये बता रहे हैं दोनों मंजिलों में अलग-अलग परिवार बसते होंगे। हर मकान के बाहर चहबच्चा बनाया जाता था जिससे भंगी पानी साफ़ करते होंगे।"

चलते-चलते क्यूरेटर पीछे मुड़-मुड़कर देखता है। उसके पाँव रुक जाते हैं। "बीचोंबीच छोड़े हुए ज़मीन के टुकड़े आजकल के पार्कों की तरह काम में लाये जाते होंगे।"

"वाक़ई। हाँ तो एक बात बताइए। इन लोगों का कोई टाउन हाल भी तो होगा।"

"वहीं चल रहे हैं। अब वह जगह दूर नहीं।"

क्यूरेटर का उत्साह ठंडा पड़ता नज़र नहीं आता। वह बार-बार मुस्कराता है। जैसे कोई उमंग जग गई हो।

"लीजिए यही था वह टाउन हाल जिसे इन बीस खम्भों पर खड़ा किया गया होगा।"

"इस हाल का रकबा कितना होगा?"

"कोई नौ सौ मुरब्बा गज़। अब ज़रा उधर चलिए। तैरने और नहाने का हौज़ मोहेंजोदड़ो का सबसे बड़ा कारनामा रहा होगा।"

हौज़ के किनारे पहुँचकर यात्री आश्चर्य से देखता है। क्यूरेटर कहता है, "मोहेंजोदड़ो के खुले चौकोर आँगन में यह हौज़ कितना खूबसूरत रहा होगा।"

"वाह वाह! पानी से भरने भर की देर है। वह खूबसूरती तो आज भी नज़र आ सकती है।"

"इसकी सीढ़ियाँ मुलाहज़ा हों।"

"मैं सब देख रहा हूँ।"

"वह रहा उन लोगों का गरम हम्माम। दीवारों में मोखे रखे गये हैं

जिनसे गरम हवा अन्दर आती होगी। अजी इस जगह से तेज़ाबी और आतशगीर मादों की राख भी ढूँढ निकाली गई है जिन्हें जलाकर ये लोग पानी को गरम करते होंगे।"

"अब तो म्यूज़ियम में चलना चाहिए।"

"चलिए।"

म्यूज़ियम की तरफ चलते-चलते क्यूरेटर बार-बार चेहरा घुमाकर खण्डहरों की तरफ देखता है। जैसे उसके पैर न उठ रहे हों, जैसे खण्डहर उसे पुकार रहे हों।

म्यूज़ियम में पहुँचकर क्यूरेटर के चेहरे पर एक नई चमक आ जाती है। एक शो-केस की तरफ़ कदम बढ़ाकर कहता है, "वे लोग पत्थर और ताँबे की रकाबियों में खाना खाते थे। ज़रा ध्यान से देखिए। वे रकाबियाँ मौजूद हैं। अजी, ये सीप के चमचे भी मुलाहज़ा फ़रमाइए।"

यात्री की आँखें दूसरी तरफ़ रखे हुए कुछ हड्डियों के ढाँचों की तरफ घूम जाती हैं। क्यूरेटर आगे बढ़कर कहता है, "वे लोग प्रेम से हाथी, ऊँट और साँड़ पालते थे। गाय, भैंस, भेड़, बकरी और सूअर पालते थे। ये सब उन्हीं के ढाँचे हैं। शौक से मुलाहज़ा फ़रमाइए।"

सभ्यता की यह करवट यात्री की कल्पना को छू जाती है। क्यूरेटर और आगे बढ़ता है। "ये रहे सींग और हाथी-दाँत के तकले। जैसे इन्हें अभी तक उन दुलहनों के गदराये बाज़ू याद हों जो इन पर सूत कातकर जुलाहों से कपड़े बुनने का तकाज़ा किया करती होंगी।"

यात्री की निगाह गहनों की तरफ़ उठ जाती है। क्यूरेटर आगे बढ़कर कहता है, "ये रहे सोने-चाँदी के ज़ेवर। सोना-चाँदी दक्खिनी हिन्द से आता होगा। लाले बदख़्शाँ भी मुलाहज़ा हो और खरासान का नीलम भी। ये कीमती पत्थर दुलहनों के शृङ्गार के लिए पूरबी तुर्किस्तान, तिब्बत और दूसरे देशों से आते होंगे। सीप से काम लेना ख़ूब जानते थे वे लोग। ताँबा राजस्थान और बलोचिस्तान से आता होगा।"

सभ्यता के इस परिचय से यात्री को पुरानी बू-बास से दिलचस्पी हो जाती है। "अब और आगे चलिए," क्यूरेटर एक उद्बोधक की तरह कहता है, "अब ज़रा मोहेंजोदड़ो की मूर्तियों की तरफ ध्यान दीजिए। उस सामने वाली मूर्ति से ज़ाहिर है कि वे लोग शाल का इस्तेमाल सीख चुके थे। वह एक पुरुष की मूर्ति देखिए। चेहरे पर दाढ़ी और मूँछें मुलाहज़ा हों। वह एक मूर्ति खड़ी है। मालूम होता है बहुत से लोग दाढ़ी मूँछ सफ़ा-चट कराने के क़ायल थे। वह रही एक मूर्ति। आजकल की लड़की की तरह देवीजी ने बाल तरशवा रखे हैं। यों बहुत सी स्त्रियाँ कन्धों तक बाल रखती होंगी। पर बहुत सी मूर्तियाँ ऐसी हैं जिनमें स्त्री को सिर के पीछे जूड़ा बाँधे पेश किया गया है। बालों को वैसे ही चुटीले में कसकर जूड़ा बाँधा जाता था जैसा कि आज भी हमारी स्त्रियों के शृङ्गार का नियम है। स्त्रियों के गले की मालाएँ हों चाहे कानों की बालियाँ, चाहे पैरों की पायलें—ये सब ज़ेवर तो हमारी स्त्रियाँ आज भी पहनती हैं और यों पाँच हज़ार बरस पहले की सभ्यता के साथ लम्बे रिश्ते में बँधी हुई हैं। जिस तरह आज भी हमारी लड़कियाँ काँच के मनके डोरे में पिरोकर पहनती हैं; वैसे ही मोहेंजोदड़ो की लड़कियाँ भी काँच के मनके पिरोकर पहनती थीं। वह सामने वाले शो-केस में काँच के मनकों की मालाएँ ढेर-की-ढेर जमा कर रखी हैं।"

'सभ्यता ने तो किसी भी युग में साँस लेना बन्द न किया होगा,' इस विचार को गीत की धुन की तरह गुनगुनाते हुए यात्री आगे बढ़ता है।

क्यूरेटर आगे बढ़कर तबले पर थाप लगाने के अन्दाज़ में कहता है, "वह सामने वाले शो-केस में उस युग की राजनर्तकियों की मूर्तियाँ देखिए। तीन मूर्तियाँ मिल सकी हैं। इनमें एक मूर्ति तो गज़ब की है। राजनर्तकी के लिए ऊँचा कद ज़रूरी समझा जाता था। हाथों की चूड़ियाँ देखिए। सिर का जूड़ा जैसे अभी-अभी बाँधा गया है। न जाने राजनर्तकी किस गहरी सोच में डूबी जा रही है। राजनर्तकी की यह मूर्ति बड़ी खूबसूरती से काँसे

में ढाली गई है ।"

"संगीत और नृत्य के बिना तो सभ्यता की कल्पना ही नहीं की जा सकती," यात्री मानो किसी ठुमरी का पहला बोल पेश करता है ।

"अब ज़रा उस ज़माने के हथियार भी मुलाहज़ा हों," क्यूरेटर आगे बढ़ कर शोकेस की तरफ इशारा करता है, "ये रहे तीर-कमान और भाले, खंजर और गुर्ज, बरछियाँ और कुल्हाड़ियाँ । ये सब शिकार के हथियार हैं । ढूँढने पर भी तलवार का पता नहीं चलाया जा सका । न जिरह-बकतर किस्म की कोई चीज़ मिली है । शायद मोहेंजोदड़ो के लोग जंगजू किस्म के इन्सान न थे । उन्हें कभी जंग से वास्ता न पड़ा होगा ।"

"जंग पर लानत भेजो," यात्री उभर कर कहता है, "पहले महायुद्ध के बाद हमारे युग में दूसरा महायुद्ध लड़ा जा रहा है । दुनियाँ तबाह हो रही है ।"

"ये रहे बच्चों के खिलौने," क्यूरेटर नया पर्दा उठाने के अन्दाज़ में कहता है, "बच्चों पर तो हर युग की सभ्यता निगाह डालती है । बच्चों के खिलौनों में पालतू पशु देखिए, चिड़ियाँ देखिए, गुड़ियाँ देखिए; वह रही माटी की बैलगाड़ी । इराक़ और मिस्र में ईसा के जन्म से सवा तीन हज़ार बरस पहले का जो रथ मिला है उसकी वज़ा-क़ता हू-ब-हू ऐसी है ।"

"दूर क्यों जाते हो, क्यूरेटर साहब !" यात्री जैसे व्यंग्य का अवसर पाकर कहता है, "अजी, बैलगाड़ी का यही नमूना हमारे देश के चप्पे-चप्पे पर मिलता है । बैलगाड़ी का यही नमूना सिन्ध में भी क़ायम है । डोकरी और मोहेंजोदड़ो के बीच जो बैलगाड़ियाँ चलती हैं, इसी डिज़ाइन की हैं और उन्हें देखकर यह कहा जा सकता है कि हमारे देश ने ज़रा भी तरक्की नहीं की; हम आज भी वहीं खड़े हैं जहाँ मोहेंजोदड़ो के युग में खड़े थे ।"

क्यूरेटर आश्चर्य से बैलगाड़ी के पहियों की ओर देखता है ।

"वह रही शक्ति या पृथ्वी देवी," क्यूरेटर आगे बढ़कर एक शो-केस की तरफ़ संकेत करता है, "इस मूर्त्ति के तीन मुँह हैं और छः आँखें;

सिर पर दो सींग हैं। दाईं तरफ़ हाथी और शेर खड़े हैं, बाईं तरफ़ गैंडा और भैंस; सामने दो सींगों वाला हिरन भी मौजूद है। वह रही चार हाथों वाली मूर्ति। इन्हें उस जमाने के ब्रह्मा या विष्णु समझ लीजिए। वह सामने एक 'स्ट्रीट 'लेट' रखी है, इस पर अंकित चित्र में वृक्षों की शाखाओं के बीच में एक देवी खड़ी है और सात स्त्रियाँ प्रार्थना के अन्दाज़ में झुकी हुई हैं। इन भक्तिनियों की कमर तक लटकती वेणियों की फ़बन मुलाहज़ा हो। देवी पीपल की शाखाओं के बीच खड़ी है।"

यात्री कुछ नहीं कहता।

क्यूरेटर आगे बढ़कर कहता है, "अफ़सोस तो इस बात का है कि मोहेंजोदड़ो की लिपि ठीक-ठीक पढ़ी नहीं जा सकी। मोहरों के इलावा बर्तनों पर भी अक्षरों से काम लिया गया है। जब अक्षरों की ठीक-ठीक पहचान हो जायगी, हमें इस सभ्यता के बारे में बहुत सी नई जानकारी हासिल होगी।"

म्यूज़ियम की खिड़कियों से आता हुआ प्रकाश अब पहले की तरह चुटकियाँ लेता नज़र नहीं आता, जैसे यह साँझ की सूचना हो और सायं-कालीन सूर्य की किरणें मोहेंजोदड़ो की थकी-हारी राजनर्तकियों की तरह नृत्य के अवसान से पहले सँभाला ले रही हों।

आगे-आगे क्यूरेटर है, पीछे-पीछे यात्री। म्यूज़ियम से बाहर निकल-कर पाँच हज़ार बरस पुरानी सभ्यता के ये नये आराधक यों खड़े हो जाते हैं जैसे सारस उड़ने से पहले पर तोलते हैं।

"चुन्नू मियाँ!" क्यूरेटर आवाज़ देता है।

"जी सरकार!" चुन्नू मियाँ अपनी जगह से उठकर सलाम करता है।

चुन्नू मियाँ के गंजे सिर के नीचे उसकी छज्जेदार दाढ़ी देखकर यात्री सोचता है कि मोहेंजोदड़ो की सभ्यता के बीसियों नमूने एक तरफ़, और यह ज़िन्दा इन्सान एक तरफ़; इस तराज़ू में ज़िन्दा इन्सान ही भारी रहेगा।

म्यूज़ियम को बन्द करने के लिए चुन्नू मियाँ लपककर चला जाता है।

क्यूरेटर कहता है, "आज से अठारह बरस पहले जब मैं मोहेंजेदड़ो की खुदाई के लिए यहाँ पहुँचा, चुन्नू मियाँ भी मेरे साथ यहाँ आया। अब कुछ बरसों से चुन्नू मियाँ मोहेंजोदड़ो म्यूज़ियम का दरबान है। खुदाई का काम उसकी आँखों के सामने हुआ। इसलिए उसे मोहेंजोदड़ो के म्यूज़ियम की हर चीज़ से लगाव है। जब आज से अठारह बरस पहले यहाँ खुदाई का काम शुरू हुआ, मेरा लड़का आनन्द छः बरस का था। उसे चुन्नू मियाँ की गोद में खेलने का मौक़ा मिला और मोहेंजोदड़ो की खुदाई का काम देखते-देखते उसने होश सँभाला। इसलिए उसे खुदाई के काम से लगाव होना चाहिए। मैं आनन्द को इसी काम में डालना चाहता हूँ। वैसे वह एन्थ्रोपॉलोजी का एम० ए० है, एक काम से लाहौर गया है। वैसे उसे कल ही आ जाना चाहिए था; शायद उसे रुकना पड़ गया हो।"

यात्री किसी क़दर तलमलाता है और सोचता है कि मोहेंजोदड़ो का क्यूरेटर तो एक ग्रामोफ़ोन-रेकार्ड है और अब यह रेकार्ड पूरा बजकर ही बन्द होगा।

"अभी तो बहुत सी खुदाई का काम बाकी है," क्यूरेटर बाँहें फैलाकर कहता है।

यात्री खामोश रहता है।

"अभी तो सभ्यता के चेहरे से पूरा घूँघट नहीं उठाया गया!" क्यूरेटर फिर टंकार लगाता है।

यात्री इस इन्तज़ार में खड़ा रहता है कि कभी तो क्यूरेटर का आख़िरी बोल बजकर ख़त्म हो जायगा।

"सभ्यता का बहुत सा शृङ्गार तो अभी दबा पड़ा है!" क्यूरेटर सँभाला लेता है, "सभ्यता की बहुत सी मुसकराहटें तो अभी हमारी आँख से ओझल हैं। उसका बहुत सा नाच-गान तो अभी मज़दूर की कुदाल का इन्तज़ार कर रहा है; जैसे शहज़ादी को शहज़ादे का इन्तज़ार रहता है, जो

सात टापुओं को पार करता हुआ सोने के महल में सोने की सेज से शहज़ादी को सौ साल की नींद से जगाने के लिए आ पहुँचता है। सभ्यता को अब ज़्यादा देर ज़मीन के नीचे सोने देना ठीक न होगा।"

"तो आपने इसका क्या इलाज सोचा है?" यात्री पूछता है, "इसके लिए फण्ड कहाँ से मिलेगा?"

"बस, यही तो वह अफसोसनाक मरहला है, जिसे तय करने के लिए मैं छटपटा रहा हूँ। इसके लिए सरकार को बार-बार लिखा जा चुका है। शायद सरकार मंजूरी दे दे। फण्ड न मिला तो यह काम नहीं हो सकता। मेरा तो दिल डूबने लगता है। मेरा हौसला जवाब देने लगता है। मैं सोच ही नहीं सकता कि सरकार को कैसे रजामन्द किया जाय। दिल कहता है कि शायद सरकार मान जाय। शायद सरकार मोहेंजोदड़ो की खुदाई के लिए फण्ड देना मंजूर कर ले। पिछले दिनों जब हमारे वायसराय लॉर्ड लिनलिथ-गो यहाँ तशरीफ लाये तो मैंने उन्हें अपने साथ ले जाकर मोहेंजोदड़ो का चप्पा-चप्पा दिखाया था। वे बहुत खुश हुए। उन्होंने सभ्यता की इस पाँच हज़ार वर्ष पुरानी करवट की जी खोलकर दाद दी। मैंने उनके सामने अपनी अरज़दाश्त रखी—अपना नया 'ब्ल्यूप्रिंट'। लॉर्ड लिनलिथगो के हमराह हमारे महकमा आर्क्योलोजी के डायरेक्टर जनरल भी थे। लॉर्ड लिनलिथगो ने हमारे डायरेक्टर जनरल से—मेरा मतलब है, हमारे डी० जी० साहब से—खुद कहा था कि वे अपने खास अख़्त्यार से मोहेंजोदड़ो की नई खुदाई के लिए बजट में माकूल रक़म का इन्तजाम कर देंगे। अब देखें, कब हमारे वायसराय साहब अपना वायदा पूरा करते हैं।"

इतने में एक बैलगाड़ी आकर म्यूज़ियम के सामने रुकती है। क्यूरेटर खुशी से उछलता है, "लीजिए, आनन्द आ गया!"

२

मोहेंजोदड़ो के गैस्ट हाउस के बरामदे में वे देर तक बातें करने के बाद एक-दूसरे को देखते रहते हैं। आनन्द कहता है, "रात बहुत उतर आई। मोहेंजोदड़ो की रात पाँच हज़ार बरस पुरानी बू-बास के साथ उतरती है।"

पेंड्रा रोड का ठेकेदार कुलदीप नागपाल फ़र्मायशी कहकहा लगाकर इधर-उधर देखता है और सिगरेट सुलगाकर कश लगाता है, "आज तुम्हारे पिताजी के साथ मोहेंजोदड़ो के खण्डहर देखते हुए मैंने देखा कि धूप में हर चीज़ चमकती है। और अब रात उतर आई है—खामोश, सुनसान रात, बेआबाद काली रात! अब तो कुछ भी नज़र नहीं आता—न जिन्दगी, न खण्डहर।" कुलदीप की आवाज़ एक शिकायत की तरह उभरती है, "लैम्प की रोशनी में दोस्ती का दम भरने में भी मज़ा है, आनन्द! लेकिन मैं पूछता हूँ जिन्दगी प्यारी चीज़ है या यह खण्डहर? पाँच हज़ार बरस पुरानी दीवारें देखने से जी नहीं भरता, न उस ज़माने के चमचे देखने से तबीयत खुश होती है, भले ही ये चमचे सीप से तैयार

किये गये हों। मिट्टी के खिलौनों में औरत की मूर्ति देखकर भी बात नहीं बनती, भले ही औरत ने सिर के पीछे जूड़ा बाँधने की बजाय नये ज़माने की लड़कियों की तरह बाल तरशवा रखे हों। जिन्दगी की और बात है। जिन्दगी तो साँस लेती है। जिन्दगी तो आँखें मटकाती है। कुलचे-जैसे चेहरेवाली औरत के चेहरे पर भी जिन्दगी अपने एक संकेत से नई रेखाएँ उभारती है और वह औरत कोई सुन्दरी मालूम होने लगती है। हाँ, तो तुम खामोश क्यों हो गये आनन्द? तुम्हारे कहने से ही तो मैं एक रोज़ के लिए रुक गया। पेंड्रा रोड में मेरा इन्तजार हो रहा होगा, जहाँ मैं फ़ॉरेस्ट-कॉन्ट्रेक्टर हूँ। जैसी तुम्हारी डोकरी है, वैसी हमारी पेंड्रा समझिए। डोकरी से कच्ची सड़क मोहेंजोदड़ो की तरफ़ आती है, पेंड्रा से कच्ची सड़क जंगल की तरफ़ जाती है—जंगल, जहाँ एक-एक पेड़ तुमसे तुम्हारा हाल पूछता है, जहाँ एक भी पेड़ जंगल से यह कहने का दुःसाहस नहीं कर सकता कि वह उसका बेटा नहीं बनना चाहता; जंगल, जहाँ गोंड बसते हैं। और मेरा तो विचार है कि गोंडों की संस्कृति मोहेंजोदड़ो की संस्कृति से कहीं ज़्यादा पुरानी है।"

"तो तुम गोंडों से मिल चुके हो?" आनन्द खुशी से उछलकर कहता है, "मैंने गोंडों के बारे में पढ़ रखा है। मैंने एम० ए० में एन्थ्रोपॉलोजी ली थी। गोंडों से मिलकर मुझे बेहद खुशी होगी।"

"गोंडों के बारे में पीछे बात होगी, आनन्द! पहले कोई मोहेंजोदड़ो की कहानी हो जाय ज़रा," कुलदीप सिगरेट का धुआँ छोड़ता है।

"मोहेंजोदड़ो की कहानी सुनोगे नागपाल जी?"

"ज़रूर!"

आनन्द बड़े रख-रखाव से मोहेंजोदड़ो की कहानी शुरू करता है, "यह बहुत पुरानी कहानी है, नागपाल जी। तब यहाँ एक राजा का राज था। राजा का हुक्म टालना किसी के लिए आसान न था। जो राजा चाहता वही होता। कहते हैं राजा बहुत मेहरबान था, खुश हो जाता तो बड़े-बड़े

इनाम देता। कुछ लोगों को तो वह जागीरें भी दे चुका था। लेकिन जब राजा नाराज़ होता तो जागीर के साथ लोगों की अपनी जायदाद भी ज़ब्त कर लेता। राजा बहुत ऐशपरस्त था। राजनर्तकी का नाच देखे बिना उसे नींद न आती थी। राजनर्तकी को बड़े-बड़े सुख प्राप्त थे, लेकिन उसे इतनी आज़ादी न थी कि किसी समय राजमहल से बुलावा आने पर कोई बहाना तराश सके और राजा का रथ खाली ही लौटा दे। राजनर्तकी का नाच होता तो यों लगता कि फूल और भी लाल हो गये। राजनर्तकी राजा के प्रेम की नैय्या खेती नज़र आती तो राजमहल की महकती हुई रात अपने यौवन पर मचल उठती। राजा की बहुत-सी रानियाँ थीं, नागपाल जी! लेकिन राजनर्तकी की-सी फबन किसी में न थी। शुरू में हरेक रानी नई मालूम होती। फिर कुछ दिन बाद वही रानी अपनी उषा की सी मुस्कान गँवाकर पुरानी पड़ जाती और उसे महीनों राजा की सूरत नज़र न आती। राजा के रनवास में सैंकड़ों रानियाँ, इस अवस्था में जबकि वसन्त ऋतु उनके कन्धों पर बिखरे हुए बालों में खोने के लिए व्याकुल रहती थी, क़ैदी से अधिक महत्त्व न रखती थीं। अब, नागपाल जी, पुराने समय के राजा ने आज्ञा दे रखी थी कि जब भी कोई लड़की दुलहन बने, पहली रात राजमहल में आकर गुज़ारे। हाँ, तो हर दुलहन को राजमहल में राजनर्तकी की तरह नाचना पड़ता था, नागपाल जी!"

"उसके लिए खास तौर पर राजनर्तकी का लिबास प्राप्त किया जाता होगा।"

"अजी नागपाल जी, स्वयं राजनर्तकी उसे नाच का थोड़ा अभ्यास कराती। वैसे तो हर लड़की नाचना जानती थी, और उसकी यही कोशिश रहती थी कि राजा के सामने राजनर्तकी को मात दे दे।"

"कभी किसी को एतराज़ न हुआ था कि राजमहल में नाचने के लिए हर लड़की को क्यों मजबूर किया जाता है?"

"अजी, सच तो यह है कि हरएक लड़की इसे अपना सौभाग्य समझती

थी। फिर राजा ने आज्ञा दी कि दुलहन का नाच केवल राजमहल के लिए ही सीमित न रहे, अब हर-कोई राजमहल में आकर दुलहन का नाच देख सकता था।"

"उस समय दुलहन यह भूल जाती होगी कि कोई उसे देख रहा है या नहीं!"

"अजी, न तो कभी किसी दुलहन ने एतराज किया और न उसके घरवालों ने। हाँ, कुछ लोग दिल-ही-दिल में अवश्य झुँझलाते कि यह तो दुलहन का अपमान है।"

"तो लोग चुपचाप यह अपमान सहते रहे?"

"अजी, एक बार एक सौदागर के बेटे ने अपनी दुलहन का सिर काट डाला, क्योंकि दुलहन ने राजा की अवज्ञा करने और पहली रात राजमहल में गुज़ारे बिना ही अपने पति के साथ नौका में बैठकर समुद्र की ओर भाग जाने से इन्कार कर दिया था। राजा को यह सूचना मिली तो उसे क्रोध आया और उसने एक ढोलिये को बुलाकर कहा—'सब जगह मुनादी कर दो कि जो कोई किसी दुलहन को पहली रात राजमहल में गुज़ारने से मना करेगा, उसके हाथ कटवा दिये जायँगे।' सौदागर के बेटे के हाथ कटवा दिये गये। फिर उसकी आँखें भी निकलवा दी गईं, यह इस अपराध में कि उसने राजा का मुकाबला करने का विचार दिल में आने दिया। बाद में उसे कुत्तों से नुचवाकर मार डाला गया, यह इसलिए कि उसने एक दुलहन के लहू से हाथ रंग लिए थे। वैसे राजमहल से लौटकर हरएक दुलहन यही कहती कि राजा ने उसके साथ दो घड़ी हँसी-मज़ाक अवश्य किया, लेकिन उसने न आग की तरह तबीयत को भड़कने दिया, न पानी की तरह आग पर गिरकर उसे बुझने पर मजबूर किया।"

"तो हरएक लड़की राजा के अच्छे स्वभाव की प्रशंसा करती थी?"

"अजी, कोई-कोई लड़की तो यहाँ तक कहती कि राजा ने उसे सामने बिठाये रखा और दूर से ही उसके रूप का रस लेता रहा। एक बार राजा

के एक सामन्त की लड़की दुलहन बनी तो उसने राजमहल में जाने से इन्कार कर दिया !"

"राजा ने उसे क्या सज़ा दी ? जिन्दा तो क्या बच पाई होगी !"

"अजी, उस लड़की को जिन्दा ज़मीन में गाड़ दिया गया ! राजा का हुक्म और भी सख्त होता गया। राजमहल में सभी तरह की लड़कियाँ आतीं—तांबे की रकाबियों में ताँबे के चमचों से खानेवाली लड़कियाँ और सोने की रकाबियों में सीप के चमचों से खानेवाली लड़कियाँ; सिर के पीछे जूड़ा बाँधने वाली लड़कियाँ और बाल तरशवाने वाली ज़रा नये फ़ैशन की लड़कियाँ; बैलगाड़ी पर बैठने वाली लड़कियाँ और तांबे तथा हाथी-दाँत से सुसज्जित रथ पर बैटने वाली लड़कियाँ। राजा की एक बहन थी, नागपाल जी, और जब राजा की बहन की लड़की दुलहन बनी तो उसे भी वैसे ही राजमहल में जाना पड़ा।"

"वह तो रथ में बैठकर राजमहल में गई होगी ?"

"जी हाँ, लेकिन राजा की बहन के तन-बदन में आग-सी लग गई। राजा की बहन बहुत लोकप्रिय थी। जनता का विचार था कि राजा की भांजी को दुलहन बनने पर राजमहल में नहीं जाना होगा। सबने मिलकर निर्णय किया कि कोई व्यक्ति राजमहल में राजा की भांजी का नाच देखने नहीं जायगा। और ऐसा ही हुआ भी, नागपाल जी !"

"छोड़िए यह किस्सा !" कुलदीप सिगरेट का कश लगाकर कहता है।

"तो आपको इस किस्से में जान नज़र नहीं आती, नागपाल जी ?"

"ख़ैर, छोड़िए रात बहुत चली गई ! हाँ तो मेरे लिए वह बैलगाड़ी तो रोक ली थी न ! अब सवेरे मुझे यहाँ से ज़रूर चल देना चाहिए।"

"बैलगाड़ी मौजूद है, नागपाल जी !"

"कभी पेंड्रा रोड आइए और जंगल में चलिए। हमारे यहाँ के गोंड आपको बहुत पसन्द आयेंगे। वे ज़मीन के ऊपर मिलेंगे, नीचे नहीं। अगर उनकी सुध न ली गई तो कोई आश्चर्य नहीं कि मोहेंजोदड़ो की सभ्यता की

तरह गोंड-सभ्यता भी ज़मीन के नीचे दब जाय और उसे सदियों तक इन्त-ज़ार करना पड़े कि कोई व्यक्ति नई स्कीम लेकर वहाँ पहुँचे और उस सभ्यता को ज़मीन से बाहर निकाले।"

"तो क्यों न उसका अवलोकन इसी समय किया जाय जबकि वह सभ्यता जीवित है, नागपाल जी?"

"खण्डहरों को क्यूरेटर मिल जाता है। जीवन की कौन परवाह करता है?"

आनन्द कहता है, "एक सिगरेट इधर भी, नागपाल जी!"

दोनों मित्र सिगरेट का धुआँ एक-दूसरे की ओर छोड़ते हैं। "हाँ तो तुम्हारी मोहेंजोदड़ो की कहानी तो बीच में ही छूट गई।"

"हाँ तो सुनिए, उस रात के बाद किसी लड़की को राजमहल में जाने की नौबत न आई। राजा की भांजी आखिरी दुलहन थी जिसे दूलहा के यहाँ जाने से पहले एक रात राजमहल में गुजारनी पड़ी।"

"तो क्या मोहेंजोदड़ो के राजा ने अपना हुक्म वापस ले लिया था?"

"अजी राजा ने अपना हुक्म वापस नहीं लिया था, नागपाल जी!"

"तो यह फिर कैसे सम्भव हुआ?"

"यह यों हुआ, नागपाल जी, कि राजा की बहन ने पृथ्वी देवी की पूजा आरम्भ कर दी ताकि राजा के पाप का प्रायश्चित करे। पृथ्वी देवी सबसे बड़ी देवी थी और उसे शक्ति भी कहते थे। तीन मुँह और छः आँखों और दो सींगों वाली पृथ्वी देवी ने अपनी दाईं ओर हाथी और शेर की तरफ़ देखा, फिर उसने अपनी बाईं ओर गैंडे और भैंस की तरफ़ देखा। फिर देवी ने अपने सामने बैठे दो सींगों वाले हिरन की तरफ़ देखा और उसने राजा की बहन से पूछा, 'क्या माँगती हो, मेरी भक्तिन्!' राजा की बहन बोली, 'मुझे वरदान दो, देवी! ऐसा वरदान कि मेरा हर बोल पूरा हो जाय।' यह उसी रात की बात है जब कि राजा की भांजी को राजमहल में जाना पड़ा था।

पृथ्वी देवी ने राजा की बहन को वरदान दे दिया। और राजा की बहन ने राजा को श्राप दिया :

मोंह थरड़ा
शल्ल नगरी
नास थेअई !

अर्थात् 'हे कठोर चेहरे वाले मोंह ! तेरी नगरी का सत्यानाश हो जाय !' हाँ तो नागपाल जी, यह राजा मोंह की बहन के श्राप का परिणाम था कि मोंह की राजधानी ज़मीन के नीचे दब गई। इसीलिए इसका नाम पड़ा—मोहेंजोदड़ो—मोंह जो दड़ो—अर्थात् मोंह का टीला। अब नागपाल जी, जो लोग राजा मोंह की कहानी नहीं जानते, वह तो यही कह छोड़ते हैं कि असल शब्द है मोआ जो दड़ो, अर्थात् 'मुर्दों का टीला'।"

"मोहेंजोदड़ो की कहानी तो तौरेत की टक्कर की है।"

"ज़रा विस्तार से कहिए, नागपाल जी!"

"हाँ तो सुनिए। तौरेत में लिखा है :

"और खुदा-ए-ताला ने कहा—देखो, आदमी हमारे जैसा हो गया है, क्योंकि वह नेक और बद को पहचानने लगा है। अब कहीं ऐसा न हो कि वह अपना हाथ बढ़ाए और जिन्दगी के पेड़ का फल भी खा ले और ग़ैर-फ़ानी हो जाय।

'इसलिए खुदा-ए-ताला ने उसे बाग़े-अदन से निकलवा दिया ताकि वह इस ज़मीन में हल चलाये जिसकी मिट्टी से वह बनाया गया था।

'इसलिए उसने इन्सान को बाहर निकलवा दिया। और उसने बाग़े-अदन के मशरिक़ में फ़रिश्तों को मुकर्रर किया, जिनके हाथ में चमकती हुई तलवारें थीं जो हर तरफ़ पलट सकती थीं ताकि वे जिन्दगी के पेड़ के रास्ते की निगहबानी करें।'

"हाँ तो अब कहिए। मेरा विचार है कि राजा की बहन का तो

बहाना था। जब तक मोहेंजोदड़ो की सभ्यता नेक और बद की पहचान से अलग रही, उसे अपनी मंजिल की ओर बढ़ने से कोई न रोक सका। पृथ्वी देवी उन लोगों पर खुश थी, लेकिन जब लोगों में धीरे-धीरे नेक और बद को पहचानने की क्षमता आती गई तो पृथ्वी देवी ने इस सभ्यता को अपने सामने साँस लेते देखने का इरादा छोड़ दिया। फिर तो एक ही इलाज था कि ज़मीन फट जाय और जब यह सभ्यता नीचे चली जाय तो ऊपर से ज़मीन के दरवाज़े बन्द हो जायँ।"

रात के अन्धकार में मोहेंजोदड़ो के खण्डहर खामोश हैं। लैम्प का प्रकाश भी मन्द पड़ गया।

"हाँ तो अब यह महफ़िल बरखास्त की जाय।"

"अच्छा, आज्ञा दीजिए, नागपाल जी! कल सवेरे हाजिर हूँगा। गाड़ीवान को कह दिया था कि सवेरे ही गाड़ी तैयार कर ले।"

आनन्द अपने घर की ओर चल पड़ता है। उसके क़दम धीरे-धीरे उठ रहे हैं। उसे याद आता है कि आज से अठारह वर्ष पहले जब वह अपने पिता के साथ यहाँ आया, तो चुन्नू मियाँ उसे उठाकर खुदाई वाले स्थान पर ले आता था। इसलिए उसके हृदय में चुन्नू मियाँ का बहुत सम्मान है। चुन्नू मियाँ तो मर्दे-कलन्दर है—न कोई आगे है न पीछे; दम-का-दम। चुन्नू मियाँ की सूरत उसे पसन्द है; चुन्नू मियाँ का स्वभाव उससे भी अधिक पसन्द है। गेस्ट-हाउस से कुलदीप की आवाज़ उसके कान पर टंकार लगाती है:

मोंह थरड़ा
शल्ल नगरी
नास थेअई!

३

मोहेंजोदड़ो म्यूज़ियम के क्यूरेटर को बहुत दिनों से अतिरिक्त खुदाई के लिए सरकारी स्वीकृति की प्रतीक्षा है। अतिरिक्त खुदाई शीघ्र-से-शीघ्र प्रारम्भ की जाय, इस पर उसने बार-बार ज़ोर दिया। इस सिलसिले में बहुत-से अधिकारियों से वह स्वयं जाकर मिला, जैसे यह उसका व्यक्तिगत कार्य हो। वह पुरातत्त्व-विभाग के सम्बन्ध में यों बात करता है, जैसे मोहेंजोदड़ो की खुदाई ही उसकी सबसे बड़ी कारगुज़ारी हो, जैसे यही खुदाई का सबसे बड़ा चमत्कार हो। अभी तो न जाने ज़मीन के नीचे कैसी-कैसी वस्तुएँ छिपी पड़ी हैं। जब उन सब वस्तुओं को निकाल लिया जायगा तो जहाँ मोहेंजोदड़ो म्यूज़ियम का महत्त्व बढ़ जायगा, वहाँ यह भी सम्भव है कि देश का इतिहास पाँच हज़ार वर्ष से भी कहीं अधिक प्राचीन सिद्ध किया जा सके।

हर रोज़, जब भी डाकिया डाक लेकर आता है, क्यूरेटर जल्दी-जल्दी वह लिफ़ाफ़ा ढूँढ़ने का यत्न करता है, जो डी० जी० के दफ़्तर से आने वाला है, जिसकी प्रतीक्षा करते-करते आँखें थक गईं। वह सोचता है कि

लिफ़ाफ़ा देखकर ही खत का मज़मून भाँप लेना कुछ भी मुश्किल नहीं, और बीसियों लिफ़ाफ़े आते हैं, वह लिफ़ाफ़ा नहीं आता जिसका इन्तज़ार है; चलिए डी० जी० साहब, जितना चाहें इन्तज़ार करा लें। मौखिक स्वीकृति तो वायसराय ने भी दे दी; अब केवल तहरीर में आने की आवश्यकता है। चलिए, एक दिन तो यह स्वीकृति तहरीर में आकर रहेगी। सरकार का लाल फीता क़ायम रहे। अब युद्ध का ज़माना है, लाल फीता यों भी पूरे ज़ोर पर नज़र नहीं आता। बड़ी-बड़ी बातों का फ़ैसला तो ज़बानी ही हो जाता है और बड़े-बड़े हुक्म धकेल दिये जाते हैं। वैसे ध्यान से देखा जाय तो लाल फीता इतनी बुरी चीज़ नहीं है। सारा कार्य सोच-विचार कर किया जाना चाहिए। जब एक फ़ाइल शुरू होती है तो पता नहीं चलता कि यह कितना लम्बा सफ़र तय करेगी। लेकिन फ़ाइल का सफ़र भी आवश्यक है। अंग्रेज़ मूर्ख तो नहीं हैं। लाल फीता उसकी बुद्धि का बहुत बड़ा प्रमाण है। जब एक फ़ाइल विभिन्न अफ़सरों के हाथों से गुज़रती है तो सब अपनी-अपनी राय लिखते हैं। और फिर जब एक चीज़ के लिए स्वीकृति मिलती है तो इतनी पक्की स्वीकृति मिलती है कि फिर भगवान् चाहें तो भी रुकावट नहीं डाल सकते। लेकिन मोहेंजोदड़ो की अतिरिक्त खुदाई का मामला तो वर्षों से घिसट रहा है। यह स्वीकृति मिलने में ही नहीं आती। ख़ैर, यह भी मोहेंजोदड़ो का सौभाग्य है कि स्वयं वायसराय महोदय यहाँ पधारे और डी० जी० साहब भी उनके साथ थे और वायसराय ने मेरी प्रार्थना पर झट हाँ कर दी। वायसराय की 'हाँ' क्या ऐसी-वैसी चीज़ है? मोहेंजोदड़ो की अतिरिक्त खुदाई की स्वीकृति तो आकर रहेगी।

चुन्नू मियाँ, मोहेंजोदड़ो म्यूज़ियम का दरबान, अपने गंजे सिर पर हाथ फेरता है और क्यूरेटर के सामने आते ही दोनों हाथों से छज्जेदार दाढ़ी पकड़कर कहता है, "अल्ला पाक की मर्ज़ी होगी तो मंज़ूरी आकर रहेगी। अल्ला पाक का क्या नुकसान है? अजी इन्सान के काम में अल्ला

पाक ख्वाह-म-ख्वाह तो रोड़ा नहीं अटकाते। बस सरकार, अब समझ लीजिए कि मंजूरी वह पड़ी है। अल्ला पाक का फ़ज़ल हो जायगा तो हमारे चुटकी बजाते ही आ जायगी मंजूरी।"

"अरे चुन्नू मियाँ, तुम भी बस वह हो!" असिस्टेंट क्यूरेटर पास आकर कहता है, "सरकार के काम बड़े आराम से होते हैं। मंजूरी आज भी आ जाय तो क्या यह काम कल ही शुरू हो जायगा?"

"मंजूरी आने पर महीना-भर तो जरूर चाहिए, फ़ज़ल इलाही!" क्यूरेटर हँसकर कहता है, "तैयारी तो जरूरी है।"

"आप ठीक फ़रमाते हैं!"

"चुन्नू मियाँ!"

"जी सरकार!"

क्यूरेटर मुस्कराकर अर्थपूर्ण दृष्टि से चुन्नू मियाँ की तरफ़ देखता है जैसे कहना चाहता हो—'जी सरकार' तुम्हारी जिन्दगी का निचोड़ है, 'जी सरकार' तुम्हारी ग़ज़ल का मतला भी है और मक़ता भी। अपने कमरे से निकलकर वह म्यूज़ियम में तेजी से घूमने लगता है। असिस्टेंट क्यूरेटर पीछे-पीछे चलता है।

चुन्नू मियाँ पलटकर अपनी ड्यूटी पर खड़ा हो जाता है। वह यों खड़ा है जैसे कोई प्राचीन काल की मानवाकार मूर्ति खड़ी हो।

क्यूरेटर एक स्थान पर रुककर असिस्टेंट क्यूरेटर से कहता है, "मैंने हमेशा तुम्हारी फ़ाइल पर तुम्हारी तारीफ़ की है। फ़ाइल पर चढ़ी हुई तारीफ़ पीछे नहीं हटती, फ़ज़ल इलाही।"

"जी हाँ, फ़ाइल पर चढ़ी हुई तारीफ़ पीछे नहीं हटती।" असिस्टेंट क्यूरेटर चुटकी लेता है, "आजकल जंग का जमाना है, कई बार रेडियो में खबर आती है—'हमारी फ़ौजें बहुत बहादुरी से पीछे हट आईं!'··· आपका मतलब है फ़ाइल पर चढ़ी हुई तारीफ़ फिरंगी की फ़ौज की तरह बहादुरी से भी पीछे नहीं हटती?"

"मैं मज़ाक नहीं करता, फ़ज़ल इलाही !"

"गुस्ताखी माफ़, बन्दा परवर ! आपकी वजह से तो मैंने यह रुतबा पाया है !"

"अब खुदाई के काम के लिए तो आनन्द का नाम मंज़ूर हो जायगा।"

"यह कुछ मुश्किल नहीं। डी० जी० साहब तो आपका इशारा समझते हैं !"

"आनन्द इस काम में बहुत तरक्की करेगा। बचपन से ही वह मोहें-जोदड़ो की खुदाई का काम देखता आया है। खुदाई का काम उसके खून में रचा हुआ है। यह कोई मामूली काम तो नहीं है, फ़ज़ल इलाही ! दिल धड़कता है और दिमाग़ दिल को समझाता है कि कुछ-न-कुछ निकलने वाला है। खरगोश की तरह ज़मीन को सूँघकर देखना होता है, फ़ज़ल इलाही ! बार-बार टीले के करीब जाकर ज़मीन की आवाज़ सुनने का यत्न करना पड़ता है। ज़मीन के होंठ कोई हमेशा तो नहीं हिलते, लेकिन जब हिलते हैं तो खूब हिलते हैं। उस वक्त मज़दूरों से कहना होता है—चलाओ कुदाल, आज कुछ निकलने वाला है !"

"स्लोगब की वह कहानी तो आपने भी पढ़ी होगी, दीवान जी !" असिस्टेंट क्यूरेटर व्यंग्य कसता है, "स्लोगब की उस कहानी का उनवान है 'मसावात'। चन्द लाइनों में रूसी अफ़साना-नगार ने एक बहुत बड़ी बात कह दी है : बड़ी मछली ने छोटी मछली से कहा—मैं तुम्हें खा जाऊँगी। इस पर छोटी मछली ने कहा—मैं तुम्हें खा जाऊँगी, आख़िर मुझे भी भूख लगी है। बड़ी मछली बोली—अच्छा तुम मुझे खा जाओ। छोटी मछली ने मुँह खोला और फिर आहिस्ता से कहा—अच्छा तुम ही मुझे खा जाओ !"

"घबराओ नहीं, फ़ज़ल इलाही ! तुम्हारी तरक्की का मुझे ध्यान है। अब की मैं ख़ास तौर पर सिफ़ारिश करूँगा।"

चुन्नू मियाँ अपनी ड्यूटी पर खड़ा है। जैसे वह प्राचीन युग का इन्सान

हो, जैसे उसने मोहेंजोदड़ो के निर्माताओं और कलाकारों को अपना काम करते देखा हो। वे निर्माता और कलाकार चल बसे, चुन्नू मियाँ जीवित हैं।

क्यूरेटर की कुहनियाँ ऊपर को उठने लगती हैं जैसे सारस उड़ने से पहले पर तोलता है। म्यूज़ियम में घूमते हुए वह जल्दी-जल्दी क़दम उठाता है। असिस्टेंट क्यूरेटर पीछे-पीछे चलता है।

डाकिया डाक लेकर आता है।

"लीजिए वह लिफ़ाफ़ा आ गया, फ़ज़ल इलाही !"

"आ गया वह लिफ़ाफ़ा, दीवान जी ?"

"हाँ हाँ, अभी तो यह लिफ़ाफ़ा बन्द है, पर यह लिफ़ाफ़ा मंज़ूरी लाया है यह मैं पहले से कह सकता हूँ।"

"यह वह लिफ़ाफ़ा नहीं है, दीवान जी !"

"तो शर्त लगाओ !"

"दस रुपये की शर्त रही !"

"मंज़ूर है !"

क्यूरेटर लिफ़ाफ़ा खोलता है। उसकी आँखें चमक उठती हैं, "मंज़ूरी आ गई, फ़ज़ल इलाही !"

"मुबारक दीवान जी !" असिस्टेंट क्यूरेटर दस का नोट निकालकर क्यूरेटर की ओर बढ़ाता है।

क्यूरेटर यह नोट लेकर अपने हाथ से इसे असिस्टेंट क्यूरेटर की जेब में डाल देता है और कहता है—"आनन्द के कन्धों पर नई ज़िम्मेदारी आन पड़ी, फ़ज़ल इलाही !"

"मुझे तो अभी तक यक़ीन नहीं आ रहा कि जंग के ज़माने में सरकार मोहेंजोदड़ो की मज़ीद खुदाई के लिये रुपया देगी, दीवान जी !"

"अब यक़ीन न आने की क्या बात है, फ़ज़ल इलाही ?"

"न जाने मुझे क्यों यकीन नहीं आता, दीवान जी !"

"जंग खत्म हो लै, फिर तो हम सरकार पर और भी ज़ोर डाल सकते

हैं। सरकार को चाहिए बजट का ज़्यादा-से-ज़्यादा रुपया खुदाई पर खर्च करे; अभी तो बहुत-कुछ निकल सकता है।"

"पहले ही कौनसे म्यूज़ियम खाली पड़े हैं, दीवान जी!"

"यह तो अच्छी बात है। जिन्दा मुल्कों के म्यूज़ियम हमेशा भरे रहते है, फ़ज़्ल इलाही!"

क्यूरेटर एक-एक शो-केस के समीप जाकर ध्यान से देखता है, जैसे उसे वे दिन याद आ रहे हों जब ये वस्तुएँ ज़मीन से निकाली गई थीं। दिल-ही-दिल में वह इन वस्तुओं से बातें करता जाता है।

शाम उतर रही है। दफ़्तर का समय कभी का हो लिया। असिस्टेंट क्यूरेटर 'फँस गये सो फँस गये' अन्दाज़ में खड़ा है।

"जंग का ज़माना जल्दी ख़त्म होगा," क्यूरेटर मन्त्रमुग्ध होकर कहता है, "हम दुनिया को चकाचौंध कर देंगे। हम इतिहास को बहुत पीछे ले जायँगे, हम उस इतिहास का पता चलाएँगे जो अभी लिखा ही नहीं गया।"

"इससे क्या हासिल होगा, दीवान जी?" असिस्टेंट क्यूरेटर व्यंग्य कसता है, "ख़ैर, यह भी एक नज़रिया है।"

"मैं मज़ाक नहीं करता, फ़ज़ल इलाही! ज़मीन के नीचे अनगिनत चीज़ें छिपी पड़ी हैं, उन्हें बाहर निकालना हमारा काम है।"

"मैं चलकर आनन्द को इतलाह देता हूँ," असिस्टेंट क्यूरेटर छुट्टी चाहता है।

"बहुत बेहतर!"

"अच्छा इजाज़त!"

असिस्टेंट क्यूरेटर चला जाता है। सूर्य की अन्तिम किरणें शो-केसों पर पड़ रही हैं। क्यूरेटर खिड़की की ओर देखते हुए दरवाज़े के समीप आ जाता है।

"चुन्नू मियाँ!"

"जी सरकार !"

"कुछ होकर रहेगा, चुन्नू मियाँ !"

"जी सरकार !"

"हम इतिहास को धकेलकर दस-बीस हजार बरस बल्कि तीस-चालीस हजार बरस पीछे ले जायँगे।"

"जी सरकार !"

"एक बरस तक बड़े पैमाने में मुल्क-भर में सब-के-सब टीलों की खुदाई कराई जाय तो बहुत-कुछ निकल सकता है।"

"जी सरकार !"

"क्यों न एक बरस तक रेडियो का बजट काट डाला जाय; मेरा मतलब है, इसे कम कर दिया जाय। और भी इधर-उधर से निकाले जा सकते हैं, चाहे कितनी भी किफ़ायत क्यों न करनी पड़े।"

"जी सरकार !"

"हाँ तो मजदूरो ! चलाओ कुदाल—आज कुछ निकलने वाला है !"

चुन्नू मियाँ अपने गंजे सिर पर हाथ फेरता है और दोनों हाथों से छज्जेदार दाढ़ी को पकड़कर कहता है, "इन्सान की तलाश भी क्या तलाश है ! इन्सान की तलाश कभी खत्म न होगी। अल्ला पाक भी इसमें कुछ दखल नहीं दे सकते। मैं इन आँखों से यह सब देख रहा हूँ। अल्ला पाक इसमें कुछ भी नहीं बोल सकते। इन्सान के कारनामें जमीन के नीचे दबे पड़े हैं। उन्हें निकालना जरूरी है। और इन्सान के कारनामें जमीन के ऊपर भी मौजूद हैं, उन्हें भी देखना चाहिए। इन्सान के कारनामें तो अल्ला पाक को भी पसन्द हैं, यह मैं अपने कानों से सुन रहा हूँ। इन्सान तो अनगिनत सदियों से जिन्दा है। फिर दस-बीस हजार बरस और तीस-चालीस हजार बरस क्या होते हैं ? यह सब इन्सान का फ़ज़ल है। यह सब इन्सान की अजमत है। यह सब इन्सान की शान है। इन्सान कभी नहीं मिट सकता, उसे तो अल्ला पाक भी नहीं मिटा सकता। लेकिन एक शर्त है कि इन्सान

इन्सान को पहचान ले। जमीन के नीचे भी इन्सान जिन्दा है, और ऊपर भी इन्सान जिन्दा है। अल्ला पाक सब देखते हैं, सब समझते हैं। अल्ला पाक तो खुश हैं कि इन्सान जिन्दा है!"

डॉक्टर जय आदर्श एम० ए०, पी०-एच० डी०, डी० लिट्०, एम० आर० ए० एस०, क्यूरेटर मोहेंजोदड़ो म्यूजियम अर्थपूर्ण दृष्टि से चुन्नू मियाँ की ओर देखता है। क्यूरेटर और दरबान के चेहरों पर सूर्य की अन्तिम किरणें पड़ रही हैं। क्यूरेटर की दृष्टि मोहेंजोदड़ो के खण्डहरों की ओर तैरती चली जाती है।

४

डॉक्टर जय आदर्श ने आनन्द के नाम पन्द्रह हजार रुपये बैंक में जमा न करा दिये होते तो पुत्र पर पिता का कुछ जोर रहता। कम-से-कम असिस्टेंट क्यूरेटर फ़ज़ल इलाही का तो यही ख्याल था। क्यूरेटर के कहने पर चुन्नू मियाँ ने आनन्द को बहुत समझाया कि वह पिता का हुक्म न टाले, लेकिन आनन्द के कान पर जूँ तक न रेंगती। अब चुन्नू मियाँ भी फ़ज़ल इलाही के साथ सहमत हो गया; न आनन्द की माँ दिक से बीमार पड़ती न उसने जिद की होती कि उसका पति आनन्द को उच्च शिक्षा की दृष्टि से विलायत भेजने के लिए पन्द्रह हजार रुपये आनन्द के नाम बैंक में जमा करा दे।

आनन्द की माँ तो चलती बनी, अब पुत्र पर पिता का कुछ भी जोर नहीं रह गया था। नहीं तो यह कैसे सम्भव था कि घर में आये हुए रोजगार पर लात मार दी जाय। डॉक्टर जय आदर्श को नींद नहीं आती थी। आनन्द साफ इन्कार किये जा रहा था। उसकी दलील यह थी कि मोहेंजोदड़ो की अतिरिक्त खुदाई कराने के लिए उसने जन्म नहीं लिया।

एक दिन वह आवेश में आकर बोला, "मोहेंजोदड़ो तो निरा कब्रिस्तान है, पिताजी ! मैं अब यहाँ नहीं रह सकता ।"

पाँच दिन से पिता ने एक प्रकार से भूख-हड़ताल कर रखी थी। उसका विचार था कि पुत्र इससे प्रभावित होगा, किन्तु आनन्द पर इसका कुछ प्रभाव न पड़ा, बल्कि उसने तो चुन्नू मियाँ को भी अपनी तरफ कर लिया।

जिस दिन चुन्नू मियाँ ने नौकरी से त्यागपत्र दे दिया, डॉक्टर जय आदर्श को कहना पड़ा, "मैं तुम्हारा इस्तीफ़ा मंजूर नहीं कर सकता, चुन्नू मियाँ !"

चुन्नू मियाँ का यह हाल था कि दम का दम खटका न ग़म ! उसके दो लड़के थे और एक लड़की; वे बहुत पहले ही चल बसे थे। फिर उसकी पत्नी भी चलती बनी। और अब उसे यह फैसला करते ज्यादा उलझन न हुई कि वह आनन्द के साथ चलेगा।

आनन्द ने चुन्नू मियाँ के सामने गोंडों के जीवन का चित्र प्रस्तुत किया, जो उसने एक कलाकार के समान कल्पना को गरमाते हुए पेंड्रा रोड के फ़ारेस्ट-कन्ट्रेक्टर कुलदीप नागपाल से गोंड-जीवन का विस्तृत वर्णन सुनकर तैयार किया था। इस चित्र में उसने अपनी ओर से रंगों को और भी चमका दिया था। आखिर उसने एन्थ्रोपॉलोजी का एम० ए० किया था। उसने जोर देकर कहा, "मोहेंजोदड़ो पाँच हजार साल पुरानी तहजीब का अमानतदार है, बड़े बाबा ! लेकिन गोंडों की तहजीब मोहेंजोदड़ो से भी पुरानी कही जा सकती है। जिन्दा इन्सानियत एक उदास कब्रिस्तान से कहीं बढ़कर होगी, यह हम जंगल में चलकर देखेंगे।"

"मैं तुम्हारे साथ रहूँगा, राजा बाबू !" चुन्नू मियाँ ने अपनी छज्जेदार दाढ़ी पर हाथ फेरते हुए विश्वास दिलाया।

आनन्द के चेहरे की रंगत उल्लास और उत्साह से निखर गई। उसकी कल्पना में जंगल का दृश्य उभरा; वृक्ष-ही-वृक्ष ये वृक्ष : उसे पुकार रहे थे। जंगल में जाकर कुछ वर्ष बिताने का विचार बुरा न था। इसे खूब ठोंक-

बजाकर देखा। यह विचार उसके मस्तिष्क पर तबला बजाता रहा। धीरे-धीरे एक गान उभरा, यह गान पैर के चक्कर का गान था। यह गान इस बात का प्रतीक था कि जीवन एक यात्रा है, और इस यात्रा का कभी अन्त न होगा। युग-युगान्तर से मनुष्य यह यात्रा करता आ रहा है।

चुन्नू मियाँ के सामने जैसे एक नया क्षितिज खुल गया। गंजे सिर पर हाथ फेरने के बाद उसने दोनों हाथों से अपनी छज्जेदार दाढ़ी को पकड़कर कहा, "मुल्के खुदा तंग नेस्त।[1] अब इस मुहिम पर जल्दी चलना चाहिए।"

आनन्द ने देखा कि चुन्नू मियाँ एक बार मोहेंजोदड़ो छोड़ने का इरादा करने के बाद अब एक दिन भी यहाँ रुकना नहीं चाहता। वह जंगल से अपरिचित था, इसलिए जंगल देखने के लिए बुरी तरह बेचैन हो रहा था। यों मालूम होता था कि अब यदि आनन्द अपना कार्यक्रम बदल भी ले तो भी चुन्नू मियाँ रुकेगा नहीं। वह एक मस्त मलंग की तरह नाचने लगता। जंगल देखने के विचार से उसकी आँखों की पुतलियाँ फैलने लगतीं—जैसे पौ फटने का दृश्य पहली बार सामने आया हो। किसी दार्शनिक विचारधारा का सहारा लेते हुए वह कहता, "पेड़ मुझे बुला रहे हैं, बाँहें फैला रहे हैं कि मेरा इस्तकबाल करें। पेड़ भी अल्ला पाक उगाता है, जैसे वह इन्सानों को पैदा करता है। अब अल्ला पाक ने गोंडों को कैसा बनाया है, यह भी देख लेंगे।"

"तो फिर कब की तैयारी की जाय?" आनन्द ने एक दिन चुन्नू मियाँ के कन्धे पर हाथ रखते हुए कहा।

उस दिन डॉक्टर जय आदर्श की भूख-हड़ताल का सातवाँ दिन था। चुन्नू मियाँ ने आनन्द को राय दी कि चलना है तो जल्दी चलना चाहिए। पिता ने देखा कि पुत्र पर उनका अधिकार खत्म हो चुका है, इसलिए नरमी बरतने में ही बेहतरी समझी। उसने चुन्नू मियाँ को ताकीद की, "तुम्हारा इस्तीफ़ा मंजूर करने की बजाय मैं तुम्हें तीन महीने की छुट्टी दे रहा हूँ।

---

१. ख़ुदा का मुल्क तंग नहीं है।

तीन महीने कम तो नहीं होते। तीन महीनों में तो पूरी दुनिया घूम आओ। खैर तीन महीने की छुट्टी है; आनन्द को जल्दी वापिस लेकर आना, चुन्नू-मियाँ!"

आनन्द ने सुना तो खुशी से उछल पड़ा, "चलिए, किसी तरह पिता जी रज़ामन्द तो हुए।"

बैलगाड़ी डोकरी की ओर चली तो डॉक्टर जय आदर्श ने आँखें पोंछते हुए कहा, "तीन महीने से अधिक न लगाना, आनन्द! तीन महीने तक तो खुदाई रुकी रह सकती है। फिर इससे और ज्यादा देर तक तो रोकना मुश्किल होगा।"

"हम लोगों को भूल तो न जाओगे, राजा बाबू?" फ़ज़ल इलाही ने मचलकर कहा, "हमारे राजा बाबू की सेवा में कोई कसर उठा न रखना, चुन्नू मियाँ!"

"यह भी कोई कहने की बात है?" चुन्नू मियाँ ने विश्वास दिलाया।

बैलगाड़ी के पहियों की भारी-भरकम रीं-रीं आनन्द और चुन्नू मियाँ की कल्पना में स्वर भरती रही। रीं-रीं, रीं-रीं! जैसे पहिये पूछ रहे हों—किधर की तैयारी है?

इस कच्ची सड़क पर आते-जाते चुन्नू मियाँ की आयु का बहुत-सा भाग व्यतीत हो गया। आज उसके मस्तिष्क के आर-पार इस सड़क का चित्र कुछ इस प्रकार अंकित हो गया, जैसे इस सड़क के अगले सिरे पर डोकरी रेल्वे स्टेशन न हो, बल्कि वहीं से जंगल शुरू हो गया हो।

"बुज़दिल इस दुनिया में कुछ नहीं कर सकते," चुन्नू मियाँ ने एक दार्शनिक की तरह कहा, "बहादुरी यही नहीं है कि तलवार के दो हाथ दिखाये जायँ, यह भी बहादुरी है कि इन्सान अपने दिमाग़ को खुला छोड़ दे, किसी की परवाह न करे, किसी से दबे नहीं, और अपने लिए खुद रास्ता ढूंढे या तैयार करे।"

"यह तो ठीक है, बड़े बाबा! और मेरा तो ख्याल है कि बहादुर वही

है जिसे किसी तरह का घमंड न हो।"

"घमंड तो इन्सान का दुश्मन है। एक-दूसरे पर भरोसा होना चाहिए। इन्सान एक जगह रुकने के लिए पैदा नहीं हुआ। इन्सान भी एक तरह का दरिया है। वह आगे बढ़ता है, बेधड़क आगे बढ़ता है। अपने तजुरबे से इन्सान ज़माना-शनास बनता है।"

"हाँ बड़े बाबा, यह तो ठीक है। लेकिन सभी इन्सान एक तरह के तो नहीं होते।"

"कुछ लोग सरकश घोड़ों की तरह होते हैं, घुड़सवार को नीचे गिराकर भाग जाते हैं। कुछ लोग एक-दूसरे को सब्ज़ बाग़ दिखाने में उमर गुज़ार देते हैं। लेकिन इन्सान वही है जिसका इरादा नेक हो, जिसकी ज़बान एक हो, आपस में कोई सचाई हो, कोई आपसदारी हो; यही आपसदारी तो दरिया की लहरों को गले मिलकर आगे बढ़ने की ताकत देती है, राजा बाबू!"

"यही तो मेरा भी ख्याल है, बड़े बाबा!"

५

रेल के डिब्बे में बहुत भीड़ है। कहाँ बैलगाड़ी के पहियों की रीं-रीं,—जैसे वह पाँच हज़ार पुरानी सभ्यता की चीख़-पुकार हो, और कहाँ रेलगाड़ी के पहियों की दनदनाहट,—जैसे यह नई सभ्यता की गतिमयता की धारवाही विवेचना कर रही हो। ये लोग कहाँ से आ रहे हैं? कहाँ जा रहे हैं? जितनी सवारियाँ किसी स्टेशन पर उतरती हैं, वहाँ उनसे अधिक भीतर आ जाती हैं; जैसे किसी ने बोरे में आलू ठोंस रखे हों। आदमी पर आदमी चढ़ा जा रहा है। यह भीड़ और यह शोर! कभी-कभी तो यह शोर यों उभरता है जैसे बिल्लियाँ आपस में लड़ रही हों। ये बे-सिर-पैर की बातें, काम-धन्धे की चिन्ता, युद्ध की बातें, फौज में भर्ती होने की बातें; हिटलर की बातें,—जिसे देखा किसी ने न था पर उसकी बहादुरी का सिक्का हर कोई मान रहा था; जापानियों की बातें,—जिनके बारे में प्रसिद्ध था कि कलकत्ते तक पहुँचने की तैयारी कर चुके हैं; चोरों और डाकुओं की बातें,—जो क़ानून तोड़ने की क़सम खा चुके थे और पुलिस वालों को उन्हें पकड़ने की फ़ुरसत नहीं थी; अनाज के भाव की बातें, सदाचार की बातें,

रिश्वत की बातें,—जिसके बिना पत्ता भी न हिल सकता था; त्योहारों और मेलों की बातें, सगाई और ब्याह की बातें, मुकदमे की पेशी की बातें,—जो हर तारीख पर आगे-ही-आगे सरकती रहती थी; स्वास्थ्य और रोग की बातें; कर्ज और किस्तों की बातें; लड़ाई और क़त्ल की बातें; महात्मा गांधी और कायदे आज़म जिन्ना की बातें; दस नम्बर के बदमाशों और चार सौ बीसों की बातें—और अक्सर एक प्रसंग दूसरे प्रसंग से उलझ जाता है। और प्रसंग की छीना-झपटी में बातों की फाँसें बुरी तरह निकलने लगती हैं।

आनन्द सिगरेट का कश लगाकर धुआँ खिड़की से बाहर फेंकता है। उसके मुख पर हल्की-सी मुस्कान सदा खेलती रहती है। अब तो मोहेंजोदड़ो बहुत पीछे रहा गया। वह बार-बार चुन्नू मियाँ की ओर देखता है जिसकी गोद में उसका बचपन बीता, जिसने उसे सदा बेटे से बढ़कर समझा। उसे सदा चुन्नू मियाँ की खुशी मंजूर है; उसकी छज्जेदार दाढ़ी देखकर उसे हँसी आने लगती है, लेकिन वह उसका मज़ाक कैसे उड़ा सकता है? किसी क़दर दबी आवाज़ में कहता है; "बड़े बाबा!"

"क्या चाहिए, राजा बाबू?"

"चाय लोगे, बड़े बाबा?"

"अभी तो ली थी, राजा बाबू?"

"और नहीं लोगे, बड़े बाबा!"

"नहीं, राजा बाबू?"

आनन्द की आयु 'राजा बाबू' सुनते कटी है। ख़ैर, अब तो वह बालिग़ है, लेकिन जब बच्चा था, तो इसी चुन्नू मियाँ के हाथों उसने होश सँभाला। और अब यह उसका सौभाग्य है कि चुन्नू मियाँ उसके साथ आने में राज़ी हो गया। पिताजी तो योंही नाराज़ हो गये। इन्सानों से तो कबूतर ही अच्छे हैं। बच्चा ज़रा उड़ने लायक होता है तो माता-पिता उसे अपने घोंसले में बन्द करके नहीं रखते। कहते हैं—अब जाओ बेटा, मौज करो।

अपनी खुशी से उड़ो; जहाँ जी चाहे उड़ो। लेकिन इन्सान क्यों ऐसा नहीं कर सकता। क्योंकि जीवन तो कुछ करने के लिए है, बँधी-बँधाई लीक पीटते रहने से क्या हासिल ?···

डिब्बे में अब उतनी भीड़ नहीं है जितनी पहले और दूसरे दिन थी। आनन्द चाहता है कि चुन्नू मियाँ उसके बचपन की बातें सुनाये और कोई मनोरंजक घटना सुनाकर उसे चकित कर दे। इसी इरादे से वह कहता है, "बड़े बाबा, कोई मजेदार बात सुनाओ—मेरे बचपन की कोई बात !"

"हाँ तो लो ! बचपन में राजा बाबू को सरकस देखने का बहुत शौक था।"

"वह शौक तो राजा बाबू को अब भी है, बड़े बाबा !"

"एक बार डोकरी में सरकस आया। राजा बाबू को खबर मिली तो जिद करने लगे। और राजा बाबू के पिता ने मुझे बुलाकर कहा कि मैं राजा बाबू को डोकरी ले जाऊँ और सरकस दिखा लाऊँ। मुझे याद है कि राजा बाबू किस तरह शेर और भालू को देखकर डर गये थे।"

"अब तो वह डर खत्म हो गया, बड़े बाबा ! जहाँ हम चल रहे हैं वहाँ जंगल में शेर और भालू तो आम हैं। राजा बाबू को शेर और भालू का डर होता तो वह हर्गिज वहाँ जाने का प्रोग्राम न बनाता।"

"एक और बात याद आ गई, राजा बाबू ! एक दिन खुदाई हो रही थी। वहाँ एक नाग की बाँबी थी। नाग बहुत गुस्से में बाहर निकला। उसने फन फैलाया और मुझ पर झपटा। अब मेरी गोद में था राजा बाबू ! मैं भाग निकला और नाग मेरे पीछे-पीछे हो लिया। मजदूरों ने आगे बढ़कर नाग को न मार डाला होता तो नाग ने उसी दिन हम दोनों को डस लिया होता, राजा बाबू !"

"हमें कोई एक-साथ तो क्या दफ़नाता ! लेकिन अब हम इकट्ठे रहेंगे।"

"एक बार हमारे राजा बाबू फ़ेल हो गये और डोकरी स्कूल से भाग

गये। मैं ही राजा बाबू को पकड़ कर लाया था !"

"उस वक्त राजा बाबू तुम्हारे क़ाबू में था और अब तुम राजा बाबू के क़ाबू में हो !" आनन्द ने किसी क़दर शरारती नज़रों से देखते हुए कहा।

"ख़ैर, छोड़िए यह किस्सा ! हाँ तो बचपन में राजा बाबू को कहानियाँ सुनने का बहुत शौक था—शाहज़ादों और शाहज़ादियों की कहानियाँ, परियों की कहानियाँ। जानी चोर की कहानी सुनते हुए तो राजा बाबू को नींद नहीं आती थी। पाताल में जाकर शाहज़ादी को लाने वाले शाहज़ादे की कहानी तो राजा बाबू बार-बार सुनना चाहते थे। मैं तो तंग आ जाता और सोचता कि हमारे राजा बाबू एक दिन बड़े होंगे और अच्छी-सी दुलहन ब्याह कर लायेंगे। और उस वक्त हमारे राजा बाबू को धरती और पाताल की कहानियाँ कहाँ याद रहेंगी।"

"राजा बाबू को दुलहन नहीं चाहिए, बड़े बाबा !" आनन्द ने मुँह दूसरी ओर फेर लिया।

"शाहज़ादी को हासिल करने के लिए सौदागर के बेटे को कैसी-कैसी शर्तें पूरी करनी पड़ती थीं पुरानी कहानियों में; वह कहानियाँ तो राजा बाबू को याद होंगी। किस तरह मौत के मुँह से होकर गुज़रना पड़ता था सौदागर के बेटे को ! कैसी-कैसी कठिन शर्तें रखी जाती थीं : यह लेकर आओ, वह लेकर आओ ! और ये चीज़ें लेकर आने में सौदागर के बेटे को कितनी मुश्किलों का सामना करना पड़ता था। इतना करने पर भी कभी शाहज़ादी मिलती और कभी बिलकुल न मिलती !"

आनन्द मुस्कराता है और सिगरेट के कश लगाता हुआ धुएँ के छल्ले खिड़की से बाहर फेंकता है। उसे अनुभव होता है कि चुन्नू मियाँ सूखा ठूँठ नहीं है, बल्कि वह तो उस पुराने पेड़ की तरह है जिससे आज भी नई-नई कोंपलें फूट रही हों ! कितनी मज़ेदार बातें सुनाता है, जैसे पुराना पेड़ दूर से बाँहें फैलाकर कहता है—आओ, मेरे पास आओ !······

"एक बात और याद आ गई, राजा बाबू ! राजा बाबू की माँ राजाबाबू

को बहुत प्यार करती थी।"

"यह भी कोई बड़ी बात है, बड़े बाबा ? हरएक माँ अपने बेटे से प्यार करती है," आनन्द ने चुटकी ली।

"राजा बाबू की माँ तो राजा बाबू पर जान छिड़कती थी!" चुन्नू मियाँ ने ज़ोर देकर कहा।

"और कैसी थी राजा बाबू की माँ?" आनन्द ने दोबारा चुटकी ली।

"राजा बाबू की माँ बड़ी खानदानी औरत थी," चुन्नू मियाँ ने जैसे स्मृति से पर्दा उठाते हुए गम्भीर आवाज़ में कहा, "मेरे घरवाली को तो वह बहुत चाहती थी। या खुदा! तूने क्या बेहतरी समझी कि उन दोनों मासूम औरतों को उठा लिया, अपने पास बुला लिया!"

"अब कोई और बात सुनाओ, बड़े बाबा ?" आनन्द ने बात का रुख बदलना चाहा।

"यह तो खत्म हो जाय। राजा बाबू की माँ के दिल में किसी के लिए मैल न थी। मोहेंजोदड़ो में आकर उसने किसी से ऊँची आवाज़ में बात न की थी; हमेशा नरमी से बोलती थी जैसे खानदानी औरतें बोलती हैं। वैसे तो मेरे घरवाली भी खानदानी औरत थी। इसीलिए तो राजा बाबू की माँ से इतने लम्बे अरसे तक उसकी बन सकी। मैं तो हैरान रह जाता कि उनकी बातें कब खत्म होंगी। आखिर एक दिन उनकी बातें खत्म हो गईं, और अल्ला पाक ने उन्हें अपने पास बुला लिया। अल्ला पाक तो नेक औरतों को ही अपने पास बुलाता है। छिनाल और फफाकुटनी किस्म की औरतों को अपने पास बुलाकर अल्ला पाक को क्या मिल सकता है ? उसका तो हमेशा नेक रूहों से प्यार रहता है। दुनिया की भीड़-भाड़ में नेक रूहों की तो हमेशा कमी रहती है?"

"इसमें कोई शक नहीं, बड़े बाबा, कि दुनिया की भीड़-भाड़ में नेक रूहों की हमेशा कमी रहती है।" आनन्द की आँखें भर आईं जैसे उसके सामने बीमार माँ की अन्तिम झांकी घूम गई हो।

चुन्नू मियाँ भी समझ गया कि आनन्द पर उसकी बातों का असर हुए बिना नहीं रहा। उसे लगा कि अब मौका है; लगे हाथ आनन्द के सामने एक-दो जरूरी बातें रख दी जायँ। मन्त्रमुग्ध-सा होकर बोला, "गुस्से में नथने फुलाकर चलने वाले लोग दुनिया में कोई बड़ा काम नहीं कर सकते, राजा बाबू ! और न ऐसे इन्सान दुनिया में लोगों का भरोसा हासिल कर सकते हैं, जिनके दिल में बदी ने भिड़ों की तरह छत्ता बना रखा हो। नेक इन्सान तो वह है, राजा बाबू, जो सितारों की तरह चमके। ऐसे ही लोगों पर अल्ला पाक खुश रहता है। वह भी क्या इन्सान है जो साँप की तरह अपने फन को फैला ले, जो भी सामने आये उसी पर झपट पड़े और अपना जहर उसकी रगों में उँडेल दे। ऐसे इन्सान पर अल्ला पाक की हजार लानत !"

आनन्द मुसकराता है और सोचता है—बात कहाँ से कहाँ पहुँची, लेकिन चुन्नू मियाँ बात ठीक कह रहा है; यही तो इन्सान की आवाज है जो सदा कायम रहेगी, यही तो इन्सान की सचाई की आवाज है।···

"मेरी बात अच्छी नहीं लगी, राजा बाबू !"

"अच्छी क्यों नहीं लगी, बड़े बाबा ! मैं इन्सान की तलाश में निकला हूँ। मोहेंजोदड़ो के खण्डहर पीछे रह गये। इन्सान नजदीक आ रहे हैं। इस तलाश में ऐसे साथी की जरूरत रहती है जो रुकावट न बने।"

"मैं क्यों रुकावट बनने लगा, राजा बाबू !"

रेलगाड़ी दनदनाती हुई चली जा रही है—मोहेंजोदड़ो को और भी पीछे छोड़ते हुए; दनदनाते हुए पहिए, इंजन का धुआँ, खिड़की से आते हुए धूल के कण, घूमता हुआ दृश्य, अस्त होते हुए सूर्य की अन्तिम किरणें ! आनन्द कहता है, "अब कटनी जंकशन नजदीक है, बड़े बाबा ! कटनी पहुँच कर हम गाड़ी बदलेंगे। विलासपुर की तरफ़ जाने वाली गाड़ी लेंगे और कल सवेरे पेंड्रा रोड रेलवे स्टेशन पर उतरेंगे।"

६

"आनन्द के पिताजी का पत्र आया है, रंजना!"

"क्या लिखते हैं?"

"लिखते हैं कि यदि मैं किसी तरह आनन्द को समझा-बुझाकर वापिस मोहेंजोदड़ो भिजवा सकूँ तो अच्छा होगा।"

"आनन्द वापिस नहीं जायगा।"

"यही तो मैं भी समझता हूँ, रंजना ! शायद मैंने तुम्हें बताया था कि मैंने ही आनन्द को राय दी थी कि जंगल में आकर गोंडों से मिले। अब मैं क्या जानता था कि ये हज़रत सचमुच चल पड़ेंगे ! खैर रंजना, देखा जायगा।"

"तुम उसे समझा देखो, मान जाय तो क्या बुरा है।"

"अब यह पार्सल वापस नहीं जायगा।"

जब आनन्द को उसके पिताजी का पत्र दिखाया गया तो वह देर तक उसे पढ़ता रहा। रंजना ने अन्दाजा लगाया कि आनन्द पर पिताजी की बातों का प्रभाव पड़ रहा है और यह बला टल जायगी।

"तुम हफ़्ता-दस दिन तो ठहरोगे, आनन्द ?" कुलदीप ने अपनी नवविवाहिता पत्नी की ओर देखते हुए कहा।

"हाँ हाँ, ठहरेंगे क्यों नहीं!" रंजना ने बड़ी उत्सुकता से कहा, "हम इन्हें जाने नहीं देंगे।"

"तुम क्यों ख़ामोश हो गये, आनन्द !" कुलदीप ने पास सरकते हुए कहा।

"अब मैं मोहेंजोदड़ो नहीं जा सकता !" आनन्द के मुख पर गम्भीर रेखाएँ उभर आईं।

पति-पत्नी ख़ामोश हो गये जैसे उन्हें काठ मार गया हो। लेकिन कुलदीप ने ऊपर से यही कहा, "ऐसी भी क्या बात है ? यहाँ शौक से रहो, आनन्द !"

"इसे अपना ही घर समझिए," रंजना ने भी आनन्द का मान रखना आवश्यक समझा।

आनन्द की दृष्टि बराबर पिताजी के पत्र पर थी।

"अब मैं बच्चा तो हूँ नहीं कि कोई मेरी उँगली पकड़कर मुझे चलाये," आनन्द ने आँखें घुमाते हुए कहा, "सच पूछो तो मेरी आत्मा को खानाबदोशों का वह गीत छू गया है।"

"कौन-सा गीत, आनन्द ?" रंजना ने मुस्कराकर कहा, जैसे मेज़बान की पत्नी का कर्तव्य निभाना आवश्यक हो।

"वही गीत, भाभी, जिसमें कहा गया है : 'संसार का ऐश्वर्य, जो तुम्हारे पास है, तुम्हें अपने नीचे दबाये रखता है और तुम्हारा अन्त कर डालता है। प्रेम होना चाहिए खुली और मुक्त हवा-सा, नये प्राण फूँकने वाला ! हवा को दीवारों में बन्द कर लो, वह गन्दी हो जायगी। खुले खेमे, खुले दिल ! हवा को चलने दो।' भाभी, यह खानाबदोशों का गीत है जो आज योरुप में हर जगह बिखरे हुए हैं और जो किसी युग में भारत से वहाँ चले गये थे। मुझे यह गीत 'खानाबदोशों की कहानी' में मिला और

इसने मुझ पर जादू-सा कर दिया !"

"शायद तुम बहुत ठीक कह रहे हो, आनन्द !" रंजना ने अपने ढलके-ढलके-से जूड़े को दोनों हाथों से ठीक करते हुए कहा, "विवाह से पहले मुझे भी सदा दूर-दूर के देशों के सपने आया करते थे; अब सोचती हूँ कि मैं पिंजरे की मैना बन गई !"

"मुझे दोषी सिद्ध करने का यह अच्छा उपाय है, रंजना !" कुलदीप ने चाय का घूँट भरते हुए कहा, "सैर का तो मुझे भी शौक है। मोहेंजोदड़ो चलने के लिए मैंने कम जोर तो न दिया था। उस समय तुम मायके में क्यों रह गई थी ?"

"दोष मेरा ही है।"

रहने के लिए घर होता है, रंजना ! "कुलदीप ने हँसकर कहा, पिंजरा तो मत कहो। सैर के लिए तो मैं हर समय हाजिर हूँ।"

हवा में सनसनाहट घुली हुई थी। मार्च के अन्तिम दिन थे। मौसम बड़ा प्यारा था। "खैर, जंगल की यात्रा के लिए तो यही मौसम है।" रंजना ने उमंग में आकर कहा, "आनन्द, तुम कितने सौभाग्यशाली हो !"

रंजना की गहरी हरी अंगिया पर हल्की हरी साड़ी उसके सुडौल शरीर के सौन्दर्य में वृद्धि कर रही थी। हाथों में सोने की चूड़ियाँ थीं; जूड़े में श्वेत पुष्प जैसे शृंगार की अन्तिम सीमा-रेखा हो। उसके दाएँ गाल पर एक गोल-सा तिल था। जब वह बात करती तो तिल के समीप एक गड्ढा-सा पड़ जाता। उसकी आँखों में हर समय एक वेदना-सी छलकती रहती, जैसे गेटे का यह विचार मूर्तिमान् हो उठा हो कि प्रकृति ने हमारे भाग्य में आँसू-ही-आँसू दिये हैं। लेकिन रंजना ने अपनी वेदना पर मुसकान का आवरण-सा डाल रखा था।

"तुम भी हमारे साथ चलो, भाभी !" आनन्द ने चाय का खाली कप मेज पर रखते हुए कहा।

"इनसे आज्ञा ले दीजिए।" यह कहते ही रंजना की मुस्कान उसके

होंठों के कोनों में गुम हो गई, जैसे सूर्य की किरण नये पत्तों में गुम हो जाती है।

"मेरी ओर से आशा-ही-आशा है, रंजना!" कुलदीप ने अखबार से दृष्टि हटाकर कहा, "लेकिन जंगल में तुम्हें घर का-सा सुख कहाँ मिलेगा?"

"शायद तुम ठीक कह रहे हो," रंजना ने चाय उँडेलते हुए कहा।

"और, क्या गलत कह रहा हूँ?" कुलदीप ने चाय का कप उठा लिया, "यह मत समझो कि मैं केवल रुपये के फेर में पड़ा हूँ, लेकिन यह भी तो आवश्यक है।"

"यह आनन्द से पूछिए!"

"अब यह तो अपना-अपना दृष्टिकोण है!" आनन्द ने चाय का घूँट भरकर कहा।

"इसके सिवा हानि और लाभ सोचने का कोई तरीक़ा भी तो नहीं निकाला जा सका," कुलदीप ने चुटकी ली, "जंग का ज़माना है, आज चार पैसे आ रहे हैं; हम सोचते हैं कि समय से लाभ उठा लिया जाय।"

"यह तो जंगल के बारे में भी यूँ बात करेंगे, आनन्द!" रंजना ने कहकहा लगाया, "कि जंगल में लकड़ी बहुत है—और सस्ती भी है! वहाँ मज़दूर बहुत मिलते हैं—और सस्ते भी! विवाह से पहले मैंने कभी न सोचा था, आनन्द, कि मैं एक ठेकेदार की पत्नी बनने जा रही हूँ।"

"मैं केवल एक ठेकेदार ही नहीं हूँ, रंजना!" कुलदीप ने अपनी वकालत की, "यह तो आनन्द भी जानता है। आखिर मैं मोहेंजोदड़ो केवल सैर की दृष्टि से गया था। सच पूछो तो जब मैंने आनन्द से गोंडों की चर्चा की, मुझे विश्वास था कि उस पर मेरी बात का प्रभाव पड़ेगा। आखिर मेरी बात दिल से निकली थी। अब अफसोस तो इस बात का है कि आजकल यहाँ काम का अधिक ज़ोर है, नहीं तो मैं आनन्द के साथ जाता और उसे गोंडों से मिलाता। तुम शौक़ से आनन्द के साथ जा सकती हो। बस यह

याद रखना कि हम यहाँ तुम्हारी अनुपस्थिति में ऐसे झुलस जायँगे जैसे तेज़ धूप में नये पौधे झुलस जाते हैं !"

आनन्द की आँखों में रंजना का वह चित्र घूम गया जो ड्राइंग-रूम की दीवारगीर पर एक रुपहले फ्रेम में जड़वाकर बड़े प्यारे अन्दाज़ में रखा हुआ था। जैसाकि उसे स्वयं रंजना ने बताया था, पिछले दिनों पेंड्रा रोड क्लब में एक फेंसी ड्रेस-नाच हुआ था, जब उसने अपनी एक गोंड नौकरानी से माँगकर ये वस्त्र पहने थे। गोंड-वेष में रंजना का सौंदर्य ज़रा भी तो दबने न पाया था। रंजना के कूल्हे झुके हुए थे, जैसे कोई पहाड़ी झुक गई हो; गले में मूँगों की माला, कानों में बड़े-बड़े कर्णफूल, सिर पर कसकर बाँधा हुआ जूड़ा ! सचमुच की रंजना से उस चित्र की रंजना कितनी अलग थी। लेकिन बहुत शीघ्र आनन्द को उस वेदना का ध्यान आ गया जो रंजना की आँखों से छलकी पड़ती है।

"क्या सोच रहे हो, आनन्द ?" रंजना ने मुस्कराकर कहा, "मैंने जंगल के बारे में जो किस्सा सुना उससे मेरी आत्मा पर भय का आतंक छा गया।"

"जंगल तो मैंने भी नहीं देखा, लेकिन ऐसी भी क्या बात है, भाभी ! जंगल से डरने का तो प्रश्न ही नहीं उठता।"

"तुम जंगल में क्यों जा रहे हो, आनन्द ?"

"वहाँ मैं गोंडों से मिलूँगा।"

"इससे क्या लाभ होगा ?"

"यह तो वहाँ जाकर देखूँगा, भाभी !"

"फिर भी कुछ तो बताओ !"

"पहली बात तो यह है, भाभी !" आनन्द ने कुलदीप की तरफ़ सार्थक दृष्टि से देखते हुए कहा, "मैं गोंडों के बारे में एक पुस्तक लिखूँगा।"

"गोंडों के बारे में पहले भी तो कोई पुस्तक लिखी गई होगी !" रंजना ने चुटकी ली, "और अब तुम्हारी पुस्तक से गोंडों को क्या लाभ होगा ?"

"कुछ दिन वहाँ जमकर रहने का इरादा है, भाभी!" आनन्द ने विश्वास दिलाया, "मैं सोचता हूँ कि यही समय है कि गोंडों की जीवित संस्कृति का अध्ययन किया जाय और हो सके तो उसे आधुनिक सभ्यता के हाथों मिटने से बचाया जा सके। जंगल में रहने वाले आदिवासियों के साथ हमारी प्रगति जुड़ी हुई है।"

"वह कैसे?"

"उन्हें पीछे छोड़कर हम आगे नहीं जा सकते, भाभी!"

"आनन्द एन्थ्रोपॉलोजी का एम० ए० है, रंजना!" कुलदीप ने अखबार से दृष्टि उठाकर कहा, "एक दिन आनन्द किसी विश्वविद्यालय में एन्थ्रोपॉलोजी-विभाग का अध्यक्ष बनेगा। इस दृष्टि से अच्छा है कि वह किसी आदिवासी कबीले में जाकर रहे और महत्वपूर्ण अनुभव प्राप्त करे जो पुस्तकों से मिलना दुर्लभ है।"

"आदिवासियों को पीछे छोड़कर हम आगे कैसे जा सकते हैं, भाभी?" आनन्द ने अपने मन्तव्य पर जोर दिया, "हम यह नहीं चाहते कि बड़ी सभ्यता छोटी सभ्यता को खा जाय।"

"लेकिन यह तो सदा से होता आया है, आनन्द!" रंजना ने कह-कहा लगाया, "बड़ी मछली छोटी मछली को खा जाती है।"

"आवश्यकता है तो इस बात की, भाभी, कि हम गोंडों के जीवन में किसी प्रकार का विघ्न डाले बिना, उनके रहन-सहन में व्यर्थ का परिवर्तन किये बिना, उनकी सहायता कर सकें; उनके जीवन में नई वृद्धि कर सकें।" आनन्द की आँखें चमक उठीं।

"इससे क्या लाभ होगा?" रंजना ने उत्सुकता से कहा।

"इससे यह लाभ होगा, भाभी, कि हमारे देश के जीवन में गोंड-संस्कृति का समावेश भी उसी प्रकार हो जायगा जैसे घर में अतिथि आता है, अपने व्यक्तित्व को बचाते हुए, अपने व्यक्तित्व की गरिमा को सभ्यता की रंगारंग जयमाला में मनके के समान पिरोते हुए!" आनन्द ने जैसे अपने

मेज़बान की पत्नी का धन्यवाद करते हुए कहा।

"आदिवासियों की समस्या पर मैंने भी काफी विचार किया है," कुलदीप ने अखबार का पृष्ठ पलटते हुए कहा, "अब यदि मैं ठेकेदारी की दलदल में न धँसता चला गया होता तो शायद मैंने भी आदिवासियों की सेवा के लिए अपना जीवन न्योछावर कर दिया होता। लेकिन एक बात याद रखो, रंजना, कि उस अवस्था में मुझे न तुम्हारे जैसी पत्नी मिलती और न मैंने उस अंग्रेज बुढ़िया से यह बँगला खरीदा होता। सब पैसे का खेल है, रंजना! लाख कोई खिल्ली उड़ाये कि पैसे के खेल में क्या रखा है, लेकिन मैं कहता हूँ कि आदिवासियों के बीच काम करने के लिए भी तो पैसे का सहारा लेना पड़ेगा। जब मैंने पिछले दिनों बस्तर रियासत में जगदलपुर में ठेका ले रखा था, मैंने एक अन्धे भिखारी को एक गीत गाते सुना।"

"हम भी तो सुनें वह गीत।" रंजना ने मानो कुलदीप के हृदय की तह को छूते हुए कहा।

"बड़ा दर्दीला गीत था, रंजना!" कुलदीप ने एक कुशल काव्य-प्रेमी के अन्दाज़ में कहा, "वह अन्धा भिखारी अपने गीत में कह रहा था: 'कोरापेट में डिपो है डिपो! वहाँ पर साहब भर्ती करेंगे; हम इस देश से दूर देश में जायँगे। काम देंगे; लुगड़ा-कपड़ा देंगे; दोना भर के साग-भात देंगे, दोना भर के हलवा देंगे! कोरापेट में डिपो बाबू आये हैं, चलो तुम्हें भर्ती करें! सोमाजी को साहब ले गया; फिर वह लौटकर नहीं आया। न जाने वह कहाँ चला गया! घर में बहन रोती है, माँ रोती है। अब के साहब आयेगा तो उसे मार डालेंगे। भैया! तू मत जाना। बाबा! तू मत जाना।' यह है आदिवासियों की वेदना! बहुत से आदिवासियों को उनके वातावरण से अलग कर दिया जाता है। ये डिपो क्यों खुलते हैं बार-बार? इसीलिए न कि आदिवासियों को उनके वातावरण से दूर ले जाया-जाय, जहाँ वे चाय बागानों पर या किसी दूसरे काम पर एक प्रकार से गुलामी में उमर गुज़ारें। ये डिपो सचमुच लालच के अड्डे होते हैं; भोले-भाले आदिवासी डिपोवालों की बातों में

आकर अपना नाम लिखवा देते हैं, एक बार अपने गाँव से जाकर कभी लौटकर अपने गाँव में नहीं आते।"

"अन्धे भिखारी का गीत तो बहुत दर्दीला है," आनन्द ने जोर देना आवश्यक समझा, "आदिवासियों का दर्द वस्तुतः बहुत ही गहरा है!"

"हमारे देश में कुल कितने आदिवासी होंगे?" रंजना ने बड़ी उत्सुकता से पूछा।

"ढाई-तीन करोड़ से कम तो क्या होंगे हमारे आदिवासी!" कुलदीप ने रंजना की ओर देखते हुए कहा।

"कहाँ-कहाँ बसे हुए हैं ये लोग?"

"अब यह आनन्द से पूछो, आखिर वह एन्थ्रोपॉलोजी का एम० ए० है!"

"हमारे देश के आदिवासियों के तीन वर्ग हैं, भाभी!" आनन्द ने गम्भीर स्वर में कहा, "उत्तर-पूर्वी वर्ग, केन्द्रीय वर्ग, और दक्षिणी वर्ग। उत्तर-पूर्वी वर्ग में कोई तीस लाख आदिवासी होंगे; सिक्कम के लेपचा प्रसिद्ध हैं। आसाम में राभा, मेचा, काछारी और मिकिर हैं, या फिर गारो और खासी; आसाम के दूसरे आदिवासी कबीले हैं—अप्पा-तानी, अबोर, मिश्मी चूलीकाटा, बेलेजीया, खामती, सिंगफू और नागा। अब फिर हमारे नागा लोगों के भी कई विभाग हैं, भाभी! कोन्यक, सेमा, अंगामी, ल्होता और रेङ्मा आदि।"

"इतने कबीलों में काम करने के लिए तो कई आनन्द चाहिएँ।" रंजना मुस्कराई।

"हमारा आनन्द कोई मामूली आदमी नहीं है!" कुलदीप ने अपने अतिथि की ओर गर्व से देखते हुए कहा।

"सुनो भी, भाभी!" आनन्द ने उमंग में आकर कहा, "अब आदिवासियों के केन्द्रीय वर्ग की नामावली सुनो। नर्मदा और गोदावरी के बीच के पहाड़ी प्रदेश में सबसे अधिक आदिवासी मिलेंगे। केन्द्रीय वर्ग के पूर्वी भाग

के गंजाम जिला में सावरा, गडबा और बोंदो, उड़ीसा के कोंढ और खड़िया, सिंहभूम और मानभूम के हो, और छोटा नागपुर के सन्थाल, उराँव और मुण्डा आ जाते हैं; इस वर्ग के पश्चिमी और मध्यवर्ती भाग में हैं कोल औरभील रेवा के वैगा और बस्तर के मुरिया और माड़िया, या फिर हमारे ये गोंड, जिनसे मिलने के लिए मैं जा रहा हूँ। आदिवासियों का तीसरा वर्ग है दक्षिणी वर्ग; इसमें आते हैं, चेंचू, टोडा, बडगा, कोटा, पनियान, ईरूला और कुसम्बा, या फिर काडार, काणीकर, मालवदन, माला और कुरावन।"

"आनन्द, तुम्हारी चाय ठण्डी हो गई," रंजना ने हँसकर कहा, "भई मान लिया कि तुम एन्थ्रोपॉलोजी में एम० ए० हो।"

फिर से चाय आगई। गरम-गरम चाय। चाय का घूँट भरते हुए आनन्द को ख्याल आया कि उसकी बात तो बीच में ही छूट गई। "दक्षिण भारत के आदिवासी संख्या में सबसे कम हैं, भाभी!" आनन्द ने जैसे रहस्योद्घाटन करते हुए कहा," काडार, ईरूला और पनियान, जिनमें नीग्रो रक्त का मिश्रण हुआ है, हमारे देश के सबसे पुराने आदिवासी हैं। वे अपनी भाषाएँ भी भूल चुके हैं।"

"तो क्या तुम उन लोगों को, जो अपनी-अपनी भाषाएँ भूल चुके हैं, फिर से उनकी भाषाएँ सिखाओगे, आनन्द?" रंजना ने चुटकी ली।

"सुनो भी, भाभी!" आनन्द ने उभरकर कहा, "अब तो दक्षिण भारत के सब से पुराने आदिवासी—काडार, ईरूला और पनियान—अपनी भाषाएँ खोकर तमिल, तेलुगु, मलियालम और कन्नड़ के बिगड़े हुए रूप प्रयोग में लाते हैं। पर कुछ बातों में हमारे आदिवासी कबीले काफी सभ्य हैं, भाभी! कुछ आदिवासी कबीलों को तो अब खेती-बाड़ी का भी ज्ञान है। वे अधिक सुन्दर घर बनाकर रहते हैं। काठ की नक्काशी, टोकरी बनाना तथा अन्य दस्तकारियाँ तो उनके बायें हाथ का खेल है। उनका सामाजिक जीवन भी अधिक उन्नत है। सन्थालों को ही लो। उनके सामाजिक

जीवन में 'घुमकुड़िया' को विशेष स्थान प्राप्त है, भाभी !"

"यह घुमकुड़िया क्या बला है, आनन्द ?" रंजना ने उत्सुकता से कहा।

"घुमकुड़िया में गाँव-भर के कुँवारे लड़के एक साथ रहते हैं और वहाँ उन्हें समाज-शिक्षा दी जाती है। बस्तर राज्य के अन्तर्गत मुरिया क़बीले में 'घोटुल' को भी यही स्थान प्राप्त है, लेकिन घोटुल को घुमकुड़िया से भी अधिक महत्व दिया जाना चाहिए। वह इसलिए भाभी, कि घोटुल में लड़के-लड़कियाँ एक साथ रहते हैं।"

"यदि घोटुल की बात सत्य है, आनन्द, तो मैं सोचती हूँ कि इन लोगों में थोड़ी बहुत राजनीतिक चेतना भी अवश्य आई होगी।"

"कदाचित् तुम्हें मालूम नहीं, भाभी !" आनन्द ने उभरकर कहा, "आसाम के आदिवासियों में कई बार विद्रोह हुआ और उनके हरएक विद्रोह को सरकार ने बलपूर्वक दबा दिया। हर बार विद्रोह का एक ही कारण था कि कबीले के लोग अपने उन्नत पड़ोसियों के हाथों अपना शोषण नहीं चाहते थे।"

"मुझे भी एक बात याद आ गई," कुलदीप ने कहा, "मैंने प्रोफेसर अनिलचन्द्र गांगुली का एक लेख पढ़ा था। उसमें उन्होंने बताया था कि अमरीका में शोषण का आरम्भिक युग व्यतीत हो जाने पर कबीलेवालों के जीवन और हितों के संरक्षण के लिए उन्हें विशेष स्थानों में सीमित करने की योजना बनाई गई; इसी कार्य-पद्धति का अनुसरण करते हुए भारत में सन् १८७४ के एक्ट के अनुसार आदिवासियों के क्षेत्रों को अनुसूचित क्षेत्र घोषित किया गया; इसमें समय-समय पर परिवर्तन हुआ। सन् १९३५ के एक्ट में कुछ धाराएँ जोड़ी गईं, जिनसे आदिवासियों के हितों की काफी रक्षा हुई।"

"लेकिन यह मत भूल जाओ, कुलदीप !" आनन्द ने अखबार उठाते हुए कहा, "कि आज की माँग यह नहीं है कि आदिवासियों को अनुसूचित

घोषित करने की पद्धति पर चला जाय। यह पृथक्करण की नीति अब बहुत संकटमय सिद्ध होगी। आज के युग की माँग यह तो बिलकुल नहीं है कि हम अपने आदिवासियों को उनके प्रदेशों में पुरानी रस्मों के म्यूज़ियम बना-कर रख छोड़ें।"

"तुमने उस जर्मन एन्थ्रोपॉलोजिस्ट के विचार भी तो पढ़े होंगे, आनन्द!" कुलदीप ने फिर किसी लेख का उल्लेख करते हुए कहा, "उस जर्मन विद्वान् के कथनानुसार आदिवासियों को विभिन्न नस्लों में बाँटने का विचार सिरे से गलत है। इन्सान की नस्ल तो एक है। विभिन्न तथाकथित् जातियों में पारस्परिक सम्बन्ध बढ़ने चाहिएँ। उनमें आम शादी ब्याह होने लगें तो उनसे मिल-जुल कर जो इन्सानी नस्ल अस्तित्व में आयगी उसमें खुद-ब-खुद शान्ति तथा एकता स्थापित हो जायगी; फिर यह सम्भव न होगा कि एक देश के लोग दूसरे देश के सागरतट पर उतर कर बम बरसायें, क्योंकि वहाँ इन लोगों की ससुराल भी हो सकती है!"

"यह तो मेरा भी विचार है!" आनन्द ने जोर दे कर कहा।

"यह तो बहुत ही अच्छा विचार है।" रंजना मुसकराई।

इतने में नौकर ने आकर सूचना दी, "कोई साहब बाहर से आये हैं।"

कुलदीप उठकर बाहर चला गया। फिर वापस आकर बोला, "सोम आया है, रंजना!"

७

आनन्द की कल्पना में बार-बार माँ का चेहरा उभरता, जैसे वह उसके मस्तिष्क की खिड़की से हाथ बढ़ाकर उसे कहना चाहती हो—पिता का अधूरा कार्य तो पुत्र को ही करना पड़ता है; पुत्र तो पिता का ही दूसरा रूप होता है !···

उँगलियों से बालों में कंघी करते हुए वह सोफे पर बैठा रहा और विचारधारा में खो गया—पिताजी का कार्य भी कितना विचित्र है, जिसके लिए वे मुझे रोकना चाहते थे, माँ ! पिताजी तो हर घड़ी एक ही रट लगाते हैं : खुदाई, खुदाई, खुदाई ! अब तुम ही बताओ माँ, कि घड़े, कूजे और मनके जमीन के नीचे से निकालते रहने से मनुष्य पीछे की ओर जायगा या आगे की ओर ?—निश्चय ही यह तो पीछे की ओर जाने का मार्ग है; खिलौने और मूर्तियाँ निकालते चले जाओ, या फिर गहने और हथियार—पत्थर और धातु की वस्तुएँ—ज़मीन खोद-खोद कर निकालते चले जाओ; यह भी क्या जीवन है ? मैं खुदाई के कार्य में कैसे उलझा रह सकता था, माँ ?···

कुलदीप और रंजना सोम के साथ न जाने किधर चले गये थे। आनन्द को यह बात अच्छी न लगी। फिर उसे ख्याल आया कि दोष तो उसी का है; न वह आज सवेरे ही बिना बताये अकेले-अकेले वसन्त ऋतु का रस लेने के लिए लम्बी सैर पर निकल गया होता और न वापस आने पर उसे घर में सब सुनसान नज़र आता। उसने सिगरेट सुलगाया और लम्बा कश लगाते हुए वह फिर किसी विचारधारा में बह गया—पिताजी उस तीस फुट चौड़ी सड़क की प्रशंसा करते फूले नहीं समाते, जो मोहेंजोदड़ो के प्राचीन निर्माताओं ने नगर के बीचोंबीच बनाई थी। ईंटों को घिस-घिस कर उनके किनारे एक-दूसरे से मिलाने की कला, जो मुग़ल स्थापत्य में दृष्टिगोचर होती है, उसका पूर्व संकेत तो मोहेंजोदड़ो की पक्की ईंटों की दीवारों में नज़र आता है; यह चर्चा करते हुए पिताजी की आँखें किस तरह चमक उठती हैं। पिताजी यह भी तो कहा करते हैं कि मोहेंजोदड़ो के कारीगर ईंटों की चिनाई में जितनी कुशलता से गारा बरतते थे, उतनी कुशलता से तो आजकल के कारीगर चूना भी नहीं बरतते। और यह कहते हुए पिताजी की आँखें किस तरह चमक उठती हैं कि मोहेंजोदड़ो की खुदाई से एक-दूसरे के ऊपर बसे हुए नौ नगरों का सिलसिला मिला है, जिससे यह सिद्ध किया जा सकता है कि अधिक नहीं तो एक हजार वर्ष तक मोहेंजोदड़ो की सभ्यता अवश्य जीवित रही होगी। लेकिन ये बातें मेरे लिए कोई महत्व नहीं रखतीं, मैं तो जीवन का अन्वेषक हूँ।

उसने सोफे से उठकर आवाज़ दी :

"अरे भई, कोई है ?"

उसकी आवाज सुनकर कोई न आया। वह फिर सोफे पर आ बैठा और सिगरेट सुलगाकर कश लगाने लगा : पिताजी कहते हैं कि मोहेंजोदड़ो की सभ्यता ताँबे की सभ्यता थी; बर्तन, हथियार और औजार, जो भी खुदाई से मिले हैं, सभी ताँबे के हैं—लोहे का एक भी टुकड़ा नहीं मिला; यह अन्वेषण मेरे लिए नहीं है, बिलकुल नहीं है; मेरा पथ दूसरा है।

सिगरेट के कश लगाते हुए वह सोफे पर बैठा रहा। किसी अज्ञात फारसी कवि का विचार उसकी कल्पना को गुदगुदाने लगा : 'अस्सलाम ऐ बादे मा आइन्दगाने रफ्तनी, बरशुमा खुशबाद नाखुशहाय दुनियाए दनी !'[1] यह शेर उसे बहुत पसन्द था। अपनी पीढ़ी के अनुभवों को थोड़े-से शब्दों में व्यक्त करते हुए कवि ने आनेवाली पीढ़ी को आशीर्वाद दिया; यों कवि ने दुनिया को कमीनी कहकर अपनी निराशा की अभिव्यक्ति की थी। दुनिया की एक कमीनगी यह भी तो है कि गड़े मुर्दों को खोद-खोदकर म्यूजियम बनाये जा रहे हैं और जीवित मनुष्यों की किसी को चिन्ता नहीं है। आखिर इन्सान इस धरती पर कहीं बाहर से टिड्डी दल के समान तो नहीं आ निकला था!

वह पिताजी के पथ पर नहीं चलेगा। जंगलों और पहाड़ों से घिरी हुई जो प्राचीन सभ्यता इस धरा पर मूर्तिमान है, उसे क्यों न देखा जाय? जंगलों से घिरी हुई संस्कृति को उसकी समस्त सरलता के साथ प्रकाश में लाया जाय; इसी सरलता में संस्कृति की सबसे बड़ी लचक है। जीवन की नूतन स्थापना के लिए, एक नूतन सौंदर्यबोध के लिए, फिर से इसी सरलता को अपनाना होगा। सौंदर्य की अनुपस्थिति में नया क्षितिज नजर नहीं आ सकता। इसके बिना दुनिया की नाखुशियाँ खुशियाँ नहीं बन सकतीं, चाहे इसके लिए किसी पहली पीढ़ी के कवि ने नई पीढ़ी के लिए लाख आशीर्वाद दिया हो। सभ्यता तो एक सामाजिक उपज है; सभ्यता कर्म के लिए जनता का आह्वान करती है, जिसके बिना सभ्यता एक ठोस वस्तु नहीं बन सकती। सभ्यता के नये निर्माताओं को वर्ण, जाति और देश के भेदों से ऊपर उठना होगा; हाँ, युग-धर्म का अनुभव तो होना चाहिए, अवश्य होना चाहिए।

सिगरेट के धुएँ में जैसे किसी कवि का चेहरा उभरा। क्या यही सरमद का चेहरा था? सरमद शहीद ने कहा था : 'शोरे शुदो अज ख्वाबे-अदम

1. सलाम, हमारे बाद आनेवालो, जिनके लिए जाना आवश्यक है, तुम पर इस कमीनी दुनिया की नाखुशियाँ खुशियाँ सिद्ध हों!

चश्म कशूदेम, दीदेम की बाकीस्त शबे फितना ग़नूदेम ![1]...यह तो कोई बात न हुई कि एक शोर-सा हो, कवि आँख खोले और कलह की रात शेष देखकर फिर सो जाय; यह दृष्टिकोण तो आज उपयोगी नहीं हो सकता। आज तो कुछ करने की आवश्यकता है, जीवन की नूतन स्थापना के लिए एक नूतन दृष्टिकोण की आवश्यकता है। कुछ कर दिखाने का दृष्टिकोण जमीन खोदते रहने से तो पूरा होने से रहा। अब तो उन लोगों के लिए कुछ कर दिखाने की आवश्यकता है जो धरती पर अभी जीवित हैं। हम एक नये समाज का सपना देख रहे हैं जिसमें कलह की रात इतनी लम्बी न होगी, जिसमें किसी कलह के लिए स्थान ही न होगा। यह तो ठीक है कि अतीत की धरा पर वर्तमान की जड़ें गहरी धँसती चली जाती हैं; हम मानव के अतीत को विस्मृत करके अग्रसर नहीं हो सकते। इसका यह अर्थ तो नहीं कि हम पुराने मोहेंजोदड़ो खोद-खोद कर निकालते रहें और जीवित मनुष्यों की हमें कुछ भी चिन्ता न हो।

उसने फिर आवाज दी :

"अरे भई, कोई है ?"

वह फिर गहरे चिन्तन में खो गया : क्या उसे मोहेंजोदड़ो लौट जाना चाहिए ? नहीं, नहीं, यह कैसे हो सकता है ? यह तो ठीक है कि मानव अपने अतीत के साथ पूरी तरह बँधा रहता है, अर्थात् जो-कुछ वह आज है, आज से पहली अवस्था का ही एक रूप है; पहले की अवस्था और आज की अवस्था के निरीक्षण से ही ज्ञात होता है कि मानव ने कितनी प्रगति की है। वृक्ष जितना धरती के ऊपर होता है उतना ही, या कदाचित् उससे भी अधिक, धरती के भीतर होता है। पिता जी की विद्वत्ता से तो उसे इन्कार न था। पिता जी को उसने बार-बार यह कहते सुना था कि मोहेंजोदड़ो के लोगों को घोड़े का ज्ञान न था। और शायद यही मोहेंजोदड़ो

1. एक शोर-सा हुआ, हमने चिरनिद्रा से आँख खोली; हमने देखा कि कितनी रात बाकी है, हम फिर सो गये।

के लोगों की सबसे बड़ी दुर्बलता थी; भाला, बर्छी, फ़रसा, कुल्हाड़ी और धनुष-बाण विद्यमान थे, पर घोड़े की अनुपस्थिति में दूर तक मार करने का दम न था। बेचारों को अपने रथ भी बैलों से चलाने पड़ते थे। ऋग्वेद में स्थान-स्थान पर घोड़े का उल्लेख मिलता है। घोड़ों से चलाए जाने वाले रथों की प्रशंसा के पुल बाँधे गये हैं। लेकिन मोहेंजोदड़ो की सभ्यता घोड़े से नितान्त अपरिचित थी। इससे यह भी सिद्ध हो जाता है कि मोहेंजोदड़ो की सभ्यता के निर्माता आर्यों से भिन्न प्रकार के लोग रहे होंगे। मोहेंजोदड़ो की खुदाई से लड़ाई के हथियार इतनी कम संख्या में मिले हैं कि इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि मोहेंजोदड़ो के लोग अत्यन्त शान्तिप्रिय थे। चार-दीवारी से घिरे हुए इस नगर में कई शताब्दियों तक शान्तिमय जीवन व्यतीत करने के कारण ही उन्होंने जीवन का यह दृष्टिकोण बना लिया था। आर्यों के ग्रन्थों में यह उल्लेख मिलता है कि आर्यों और असुरों में युद्ध हुआ था; यह अनुमान लगाना कठिन नहीं कि मोहेंजोदड़ो के लोगों को ही असुर कहा गया था। खुदाई में मोहेंजोदड़ो की चारदीवारी की बुनियाद मिली है; इस दीवार में जो फाटक और दरवाज़े होते थे उनके चिह्न भी मिले हैं···ऐसी-ऐसी बातें पिताजी के मुँह से सुनते-सुनते तो कान पक गये। नहीं, नहीं, मैं मोहेंजोदड़ो बिलकुल नहीं जाऊँगा। अब पिताजी लाख शिकायत करें कि पुत्र ने पिता का अधूरा काम पूरा न किया।···

सोफ़े पर बैठे-बैठे उसने फिर आवाज़ दी :

"कोई है ?"

उसकी आवाज सुनकर कोई न आया। उसे अनुभव हुआ कि आजकल के ये नौकर भी कितने विचित्र प्राणी हैं; मालिक आँख से ओझल हुआ नहीं कि उन्होंने अतिथि को भुला दिया।

उसने फिर आवाज़ दी :

"अरे कोई सुनेगा भी या नहीं।"

उसकी आवाज किसी ने न सुनी। मार्च की हवा खिड़की से भीतर

आ रही थी जिसमें फूलों की सुगन्ध बसी हुई थी। वह चाहता था कि उठकर बाहर चला जाय और बाग़ीचे में जाकर फूलों से बातें करे। लेकिन न जाने वह क्या सोचकर सोफ़े पर ही बैठा रहा।

फिर वह सोफ़े से उठकर कमरे में टहलने लगा। दीवारगीर के समीप जाकर रंजना का फोटो देखा—गौंड-वेष में रंजना कुछ कम सुन्दर नज़र नहीं आ रही थी। उसे एक मानसिक पीड़ा-सी अनुभव होने लगी, वह फिर सोफ़े पर आ बैठा: पिताजी बता चुके हैं कि आर्यों के ग्रथों में कई स्थलों पर चारदीवारी से घिरे हुए नगरों का उल्लेख मिलता है। मिलने दो। हम क्या करें? पिताजी ने बार-बार बताया है कि इस प्रकार के चारदीवारी से घिरे हुए नगर को ही 'पुर' कहते थे। अब कोई पिताजी से पूछे कि बार-बार यह गाथा सुनाने से क्या लाभ? आर्यों की ओर से इन्द्र ने असुरों के साथ युद्ध किया था तो अब मुझे इस गाथा से क्या लाभ? इन्द्र ने अनेक बार असुरों के पुरों पर विजय प्राप्त की थी तो अब हम उसे लेकर चाटें··· इस समय चाय का कप मिल जाता तो तबीयत सँभल जाती। खैर छोड़िए। शायद घर में कोई नहीं। कोई तो होना चाहिए। शायद नौकर भी बाहर चले गये हैं···पिताजी बार-बार आर्यों के पुरातन ग्रन्थों का प्रमाण देते हुए कहते हैं कि असुरों ने सोने, चाँदी और ताँबे के तीन नगर बसाये थे। सोने का द्युलोक था आकाश में, चाँदी का अन्तरिक्ष वायु में और ताँबे का नगर धरती पर! वाह, वाह! कितनी अछूती कल्पना है! बस ताँबे के नगर की बात ही सत्य होगी—वही मोहेंजोदड़ो की ओर संकेत होगा। ठीक है, ठीक है—सब ठीक है; मोहेंजोदड़ो की खुदाई से लोहे का एक भी टुकड़ा नहीं मिला और ताँबे की वस्तुओं की भरमार है। चलिए ठीक है। चलो मान लिया कि मोहेंजोदड़ो ही वह ताँबे का नगर होगा जिसका उल्लेख आर्यों के पुरातन ग्रन्थों में आया है···

उसने बाग़ीचे की तरफ़ खुलने वाली खिड़की से झाँककर देखा। उसके जी में फिर यह ख्याल आया कि बाहर बागीचे की तरफ़ चला जाय। लेकिन

वह ड्राइंग-रूम में ही घूमता रहा : पिताजी, बार-बार यह क़िस्सा ले बैठते हैं कि ईसा से दो हज़ार वर्ष पूर्व ईराक में दजला और फ़रात के किनारों पर उसी प्रकार के नगर बसे थे जैसे हमारे मोहेंजोदड़ो और हड़प्पा। अब छोड़िए भी यह क़िस्सा !···

रोशनदान से एक चिड़िया का पंख नीचे आ गिरा। उसने यह पंख उठा लिया और दिल-ही-दिल में हँसने लगा : अब इस पंख को भी कोई म्यूज़ियम के किसी शो-केस में रखकर यह लेबिल लगा सकता है कि यह उस चिड़िया का पंख है जो मोहेंजोदड़ो में उड़कर आया करती थी। पिता जी ज़ोर देकर कहते हैं कि ईराक की खुदाई से मोहेंजोदड़ो की कुछ मोहरें मिली हैं। मोहेंजोदड़ो के व्यापारी ही इन्हें वहाँ ले गये होंगे ? पिताजी यह भी तो कहते हैं कि एक बार मोहेंजोदड़ो पर आक्रमण हुआ; राजा न अपनी सहायता कर सका न प्रजा की। सीढ़ियों और कमरों में मनुष्यों की अस्थियों के जो पिंजर मिले हैं उनसे अनुमान लगाया जा सकता है कि लोगों ने अपने प्राणों की रक्षा करने के लिए घरों में छिपे रहने की चेष्टा की होगी।

वह ड्राइंग रूम में टहलता रहा। अचानक बाहर से कहकहे सुनाई दिये।

"तुम कब आ गये, आनन्द !" रंजना ने भीतर आकर हँसते हुए कहा, "हमने तुम्हें बहुत ढूँढा।"

"मैं सैर के लिए निकल गया था, भाभी !"

फिर सोम भी अन्दर आ गया; उसके मुख पर कोई प्रश्न न था। आनन्द ने उसकी ओर देखा और उसे इस परिणाम पर पहुँचते देर न लगी कि सोम को उसके साथ ज़रा भी दिलचस्पी नहीं है।

कुलदीप जैसे हँसी की फुलझड़ी-सी छोड़ते हुए अन्दर आया और बोला, "तुम हमारे साथ होते तो मज़ा रहता, आनन्द !"

कुलदीप और रंजना के कहकहे आनन्द को बिलकुल बे-मौका मालूम हुए; सोम की खामोशी फिर भी क्षम्य थी।

"तुमने मुझे बम्बई में बताया था न सोम, कि बम्बई के आर्ट स्कूल से अन्तिम परीक्षा में उत्तीर्ण होना तुम्हारे लिए माउंट एवरेस्ट को हाथ लगाने से कम न था!" रंजना ने हँसकर कहा, "खैर, एक दिन देश में तुम्हारी कला की पूछ होगी।"

सोम कुछ न बोला।

"सोम बम्बई से चला आया, रंजना!" कुलदीप ने तनिक गम्भीर होकर कहा, "यह तो उसकी कला के लिए अच्छा हुआ। मैं इतना ही निवेदन कर सकता हूँ कि वह अपने को अनाथ समझना छोड़ दे। पग-पग पर यह अनुभव होते रहना कि मानव अनाथ है, यह तो ग़लत बात है। अब ये हज़रत कहते हैं कि उन्हें सदा यह अनुभव होता है कि एक माँ अपने बच्चे की ओर खिलौने बढ़ा रही है। माँ से प्यारी कोई चीज़ नहीं दुनिया में। लेकिन अपने लिए यह धारणा बना लेना कि माँ का स्नेह नहीं मिला, तो कुछ भी नहीं मिला, यह तो एक तरह की हार है, रंजना!"

"मैं तो स्वयं माँ की स्मृति में खो जाती हूँ!" रंजना ने गम्भीर होकर कहा, "मायके की कल्पना तो माँ की स्मृति से ही सम्बद्ध है; मायके की सुधि आते ही लगता है कि मैं स्वयं अपने को नहीं जानती।"

"खैर छोड़ो ये दार्शनिक विचार, रंजना!"

रंजना ने सोम की ओर देखा जिसने एक भी शब्द कहने की आवश्यकता न समझी थी।

"आनन्द, तुम्हें यह सुनकर हर्ष होगा कि सोम तुम्हारे साथ जायगा।" कुलदीप ने जैसे किसी रहस्य से पर्दा-सा उठाते हुए कहा, "सोम अपने चित्रों के लिए नई सामग्री चाहता है और तुम भी तो इन्सान की तलाश में निकले हो।"

आनन्द की आँखों में एक नई ही चमक आ गई; उसका उज्ज्वल भविष्य उसके सामने अठखेलियाँ करने लगा।

सोम ने अपने भावी साथी को जिज्ञासा से देखा।

"यह मत समझिए कि मैं उस इन्सान की खोज में निकला हूँ जिसने अभी जन्म ही नहीं लिया !" आनन्द ने सोम की ओर अर्थपूर्ण दृष्टि से देखते हुए कहा, "मैं कदाचित् अपनी ही खोज में निकला हूँ। मोहेंजोदड़ो मुझे बाँधकर न रख सका। मैं उस इन्सान की खोज में निकला हूँ जो हजारों वर्षों से जीवन के पथ पर चलता आया है; पर्वत और नदियाँ जिसका मार्ग न रोक सकीं; मृत्यु जिसके व्यक्तित्व को न कुचल सकी; जो कुहरे में अपना पथ टटोलता हुआ आगे बढ़ता आया है; जिसने सदा परिस्थितियों से संघर्ष करने की ठानी; जिसने सदा विरोधी शक्तियों से लोहा लिया।"

"इसमें कोई सन्देह नहीं, आनन्द ! इन्सान तो सदा प्रगति करता रहा है।" रंजना बड़े गर्व से आनन्द की ओर देखती रह गई।

"मैं उन लोगों से कोई सम्बन्ध नहीं रखना चाहता भाभी, जो मानव के अस्थि-पिंजर, खोपड़ियाँ और चट्टानों पर खुदे हुए आलेख और चित्र देखकर यह अनुमान लगाया करते हैं कि मानव जीवन की कहानी का ताना-बाना लाखों-करोड़ों वर्षों का ताना-बाना है। ऐसे वैज्ञानिकों के साथ भी मेरी सहानुभूति नहीं हो सकती जो जीवन का इतिहास ढूँढने बैठते हैं तो जैसे बड़े ठाठ से कहते हैं—जीवन का अतीतकाल तीन विभागों में बाँटना होगा : सर्वप्रथम विभाग कोई नौ करोड़ अस्सी लाख वर्ष पूर्व आरम्भ हुआ, दूसरा विभाग नौ लाख वर्ष पूर्व और तीसरा विभाग तीन लाख वर्ष पूर्व···मैं पूछता हूँ भाभी, कि हमारी खोज की दिशा पीछे की ओर क्यों है ? अतीत के अस्थि-पिंजरों और खोपड़ियों से हमें क्या लेना-देना है ? पुराने खण्डहरों को हम कब तक सँभालते रहेंगे ? पुरानी चट्टानों और गुफ़ाओं में हम कब तक आदिमानव के हाथों से अंकित चित्रों की खोज करते रहेंगे ? हमारा ध्यान आज तक संग्रहालयों तक सीमित रहा है, जहाँ प्राचीन काल का कबाड़ ढूँढ-ढूँढ कर एकत्रित किया जाता है। आज समय आ गया है कि हमारी खोज की दिशा बदले, हमारे सामने एक नई मंजिल उभरे।"

"इस यात्रा के लिए हम बधाई देते हैं, आनन्द !" रंजना बोल उठी।

"इसके लिए मुझे भी तो बधाई दो!" कुलदीप ने हँसकर कहा, "न मैं मोहेंजोदड़ो जाता और न आनन्द पेंड्रा रोड आता।"

सोम के मुख पर मुसकान दौड़ गई; वैसे वह चुप रहा।

आनन्द ने मन्त्रमुग्ध होकर कहा, "मेरा पथ मेरे सामने है। मैं जीवित मानव का पक्ष लेता हूँ; मैं उसके जीवन का अध्ययन करूँगा; मानव की भावनाओं और अनुभूतियों में असंख्य पीढ़ियों को लाँघकर आते हुए जीवन की गाथा सुनूँगा। मैं मानव के दृढ़-संकल्पों में भविष्य की मुखाकृति देखूँगा; मैं उसके साथ चलूँगा। जीवन आज इसी यात्रा के लिए आह्वान कर रहा है। जंगल से भयभीत होने की तो आवश्यकता नहीं है, भाभी! जंगल तो मानव के पुरखाओं की प्राचीन जन्मभूमि है; जंगल मेरे सम्मुख अपना हृदय खोल देगा; जंगल की पगडंडियों पर मुझे असंख्य पीढ़ियों के पदचिह्न मिलेंगे; इन पदचिह्नों से भविष्य की यात्रा स्पष्ट होगी। मानव के संघर्ष से हमें दूर भागने की आवश्यकता नहीं है, भाभी! पुराने संग्रहालयों में पुरानी सभ्यता का कबाड़खाना प्रस्तुत करने वालों को मैं जीवन के इस नये मोड़ का आमन्त्रण देता हूँ। यह न हो कि वे कबाड़खाने सँभालते रहें और मानव अपने संघर्ष में पिसता चला जाय। मानव कभी खत्म न होगा; मानव का संघर्ष तो उसे थाती में मिला है। इस संघर्ष पर जीवन की छाप है। मैं इस छाप को और गहरा करूँगा। मैं जीवन के नये तेवर देखने निकला हूँ। मैं केवल एक अन्वेषक के समान अपनी पुस्तक के लिए सामग्री जुटाने तक ही अपनी शक्तियों को सीमित नहीं रहने दूँगा, बल्कि जीवन के एक सेनानी के समान लोगों के आजू-बाजू खड़े होकर उनके संघर्ष में उनका साथ दूँगा। उस समय उनके चेहरों पर मेरे लिए मित्रता की रेखाएँ कितनी गहरी हो जायँगी, कितनी अर्थपूर्ण!"

सोम ने आनन्द की ओर प्रसन्नता से देखा। उसके हृदय में उसके भावी साथी ने आदर का स्थान ग्रहण कर लिया।

"हम तुम्हें मान गये, आनन्द!" रंजना बड़े गर्व से अपने अतिथि की

ओर देखने लगी।

"अरे भई, हमें भी तो मान जाओ," कुलदीप ने हंसकर कहा, "मैंने कहा था न कि न मैं मोहेंजोदड़ो जाता न आनन्द पेंड्रा रोड आता!"

सोम ने अपना मौन त्यागते हुए कहा, "मेरे हाथ में मेरी तूलिका होगी; मेरे रंग स्वयं अपने लिए मार्ग चुनेंगे। आनन्द, जिस इन्सान को तुम चुनोगे, मैं उसी के चित्र बनाऊँगा।"

"चलो अच्छी जोड़ी मिली!" कुलदीप ने हंसकर कहा।

इतने में चुन्नू मियां ने ड्राइंग रूम में प्रवेश किया।

"मैं हफ़ीज कलन्दर से मिल आया, उसकी बैलगाड़ी तैयार है, राजा बाबू!" चुन्नू मियाँ ने गंजे सिर पर हाथ फेरते हुए कहा, "अल्ला पाक तो खुश हैं कि हम जंगल का सफ़र करेंगे।"

"तो आनन्द, तुम सचमुच जंगल में जा रहे हो?" रंजना ने गम्भीर होकर कहा; मानो पिंजरे की मैना पंख फड़फड़ा कर रह गई!

८

"आनन्द और सोम को कोई कष्ट न होने पाए, हफ़ीज !" रंजना ने गाड़ीबान को आदेश दिया।

"हफ़ीज कलन्दर तो जंगल से पूरी तरह परिचित है," कुलदीप ने हँसकर कहा, "चुन्नू मियाँ और हफ़ीज कलन्दर का साथ भी खूब रहेगा !"

मुँह अँधेरे बैलगाड़ी पेंड्रा रोड से चल पड़ी। "तुम जंगल में घर बनाकर रहोगे तो शायद कभी हम लोग भी भूले-भटके वहाँ आ निकलें।" रंजना की आवाज हवा में उछली।

"बड़ा प्यारा मौसम है। ऐसे में तो जंगल मुँह से बोल उठेगा।" आनन्द ने भी जैसे हाथ बढ़ाकर चित्र पर रंग लगा दिया।

बैलगाड़ी पर बाँस की खपच्चियों और चटाइयों को जोड़कर बड़ी सुन्दरता से गोल छत बनाई गई थी। हफ़ीज गाड़ीबान के समीप सोम यों बैठा था जैसे उसे वर्षों से जानता हो। गाड़ी के पिछली ओर चुन्नू मियाँ मूर्तिवत् बैठा था और उनके बीच आनन्द जमा हुआ था।

सड़क के दोनों ओर वृक्षों की रेखाएँ अँधेरे में बहुत धुँधली प्रतीत हो

रही थीं । पक्षियों के कलरव पर किसी हद तक नींद का बोझ पड़ा हुआ था ।

"अल्ला पाक तो खुश होंगे, "चुन्नू मियाँ ने खाँसकर कहा, "हमारा सफ़र आराम से कटेगा ।"

"तुम चिन्ता मत करो, चुन्नू मियाँ ।" सोम ने उसे दिलासा देते हुए कहा, "जब इन्सान किसी से डरता है तो मानों अपने से ही डरता है ।"

अँधेरे के बावजूद बैलगाड़ी आगे बढ़ती गई । आनन्द ने सिगरेट सुलगाया और कश लगाते हुए भावधारा में बह गया : असंख्य शताब्दियों से मानव किस खोज में भटक रहा है ? उसे नया प्रकाश चाहिए, नई आशा चाहिए, सौन्दर्य की नई अनुभूति चाहिए; इस खोज में मानव अपने रथ को आगे की ओर ले जा रहा है । फिर भावधारा से उभरकर उसने सोचा : अरे, अरे ! यह तो बैलगाड़ी है, रथ कहाँ है ?······सिगरेट के धुएँ में, धुएँ के बल खाते छल्लों में, उसे सूर्य के रथ का ध्यान आ गया : सूर्य तो प्रतिदिन अपने रथ पर सवार होकर निकलता है; उसके रथ में घोड़े जुते रहते हैं । ऋग्वेद का उषा सूक्त उसकी आँखों के सामने घूम गया । वैदिक कवि ने सर्वप्रथम सूर्य के रथ के पहियों की कल्पना प्रस्तुत की थी । माटी की वह खिलौना-गाड़ी भी उसकी आँखों में घूम गई, जो मोहेंजोदड़ो म्यू-जियम के शो-केस में पड़ी थी । और अब यह बैलगाड़ी; उसे लगा कि यह बैलगाड़ी सीधी मोहेंजोदड़ो से चली आ रही है !

नदी के अस्थायी पुल पर से गुज़रती हुई बैलगाड़ी आगे बढ़ गई । भारी-भरकम चट्टानों को चीरती हुई नदी जलतरंग-सी बजा रही थी "यह थी हमारी मलिनिया नदी !" गाड़ीवान ने बैलों को हाँकते हुए कहा, "बहुत दूर से आती है मलिनिया ! इससे कोई पूछे जंगल और पहाड़ के भेद !"

"तुम्हारी मलिनिया तो पीछे रह गई ।" चुन्नू मियाँ ने कहा, "अब तो आगे की बात करो, हफ़ीज़ कलन्दर !"

"आगे की बात सुनोगे?" हफ़ीज ने हँसकर कहा, "रात उतरने से पहले-पहले क्योंची जरूर जा पहुँचेंगे। वहाँ सड़क के दोनों तरफ़ जो जंगल है, वह है सतकठा का जंगल।"

"सतकठा क्या होता है, हफ़ीज कलन्दर?"

"जंगल में तरह-तरह के पेड़ हैं, चुन्नू मियाँ! सतकठा का मतलब है—सात किस्म का। सुनो, चुन्नू मियाँ, चौदहवें मील तक पूरे चालीस और दो नाले रास्ते में पड़ते हैं, इन पर आरजी पुल बनाये जाते हैं जो बरसात में टूट जाते हैं। इसलिए जून से नवम्बर तक यह सड़क एकदम बन्द हो जाती है।"

"तो हम बहुत अच्छे मौसम में आये; तुम्हारा क्या ख्याल है, सोम?"

"वाक़ई जंगल की सैर का तो यही मौसम है, आनन्द!"

फिर कोई न बोला। गाड़ी आगे-ही-आगे चली जा रही थी, पहियों की रीं-रीं जैसे मार्ग नाप रही हो।

अन्धेरा विलीन हो रहा था। दो स्थल ऐसे भी आये जहाँ दो-दो फर्लांग तक सड़क के दोनों ओर खेत-ही-खेत थे। जैसे यह खेत पुकार-पुकार कर कह रहे थे—पहले यहाँ भी जंगल था, फिर इन्सान के हाथों ने जंगल काटकर खेत तैयार किये।

सूर्य कुछ इस शान से उदय हुआ जैसे पूछ रहा हो—अरे, मैं भी तो देखूँ कि यह बैलगाड़ी किधर से चली आ रही है। सूर्य ने चतुर्दिक् सोने का पानी फेर दिया, जैसे वृक्ष भी सोने के हों।

सिगरेट के कश लगाते हुए आनन्द फिर भाव-प्रवाह में बह गया : जंगल तो हाथ उठा-उठाकर हमें बुला रहा है, जैसे वह हमें आज भी पहचानता हो। सड़क का दृश्य बहुत सुन्दर था। उसकी दृष्टि तैरती चली गई। सड़क दूर तक चली गई थी, शरीर पर उभरी हुई रग के समान। आनन्द को लगा कि जंगल हँस-हँस कर उसे देख रहा है, जैसे कह रहा हो—अच्छा हुआ

कि तुम आ गये, अब संसार की कोई शक्ति तुम्हें मुझ से पृथक् न कर सकेगी।

"कुछ-कुछ सफ़ेदी लिए हलके-पीले महुए के फूल मुझे बहुत पसन्द हैं," सोम ने कहा, "रवीन्द्रनाथ ठाकुर की कविताओं के एक संग्रह का नाम है 'महुआ,' इससे महुए के फूलों की सुन्दरता और सुगन्ध का महत्त्व आँका जा सकता है।

"उधर देखो!" सोम ने सड़क के दाईं ओर संकेत करते हुए कहा, वे कुछ स्त्रियाँ महुए के फूल चुन रही हैं। महुए के फूल रात को टपकते हैं। महुआ खूब जानता है कि लोग उसके फूलों को खाना पसन्द करते हैं। इसीलिए साँवली-सलोनी कुलवधुएँ और कुमारियाँ हाथ में अपनी-अपनी डलियाँ उठाए महुआ के फूल चुनने चली आती हैं।"

आनन्द को यह दृश्य बहुत पसन्द आया। आकाश की नीलिमा बहुत गहरी हो गई थी। शाल के वृक्ष अपने श्वेत, सुगन्धित पुष्पों के साथ महुए के वृक्षों के मुँह आ रहे थे, जैसे कहना चाहते हों—अरे, कमबख्त महुए, तुम भी कोई वृक्षों में वृक्ष हो! तुम्हारे फूल भी कोई फूल हैं! हमारे सफेद फूल देखो, और इनकी सुगन्ध लेकर देखो। तुम्हें अपने फूलों की सुगन्ध भूल जायगी।

सेमल के फूल लाल थे—एकदम लाल; जैसे वे पुकार-पुकार कर कह रहे हों—हमें सुगन्ध का घमण्ड नहीं; हमारा रंग देखो और दाद दो; शाल के फूल तो केवल मुसकराना जानते हैं, हमें तो हँसना भी आता है; धरती के भीतर कितनी आग छिपी हुई है, यही तो हम दिखाना चाहते हैं और वह भी हँसते-हँसते।

आनन्द और सोम की बातें सुनकर हफ़ीज़ का ध्यान भी महुआ के फूलों की ओर आकर्षित हो गया; बिन बुलाये अतिथि के समान बोला, "महुए के फूलों की शराब भी बनती है, बाबू साहब! महुए की शराब न हो तो गोंडों का काम ही न चले। गोंड हों चाहे बैगा, सभी महुए की

शराब के रसिया होते हैं। जब ये लोग धरती की पूजा करते हैं तो धरती पर दो-चार बूँदे महुए की शराब टपकाना नहीं भूलते।"

चुन्नू मियाँ भी चुप न रह सका, "जब हम गोंड और बैगा लोगों से मिलेंगे तो उनसे यह थोड़े ही कहेंगे कि धरती की पूजा छोड़ दो; दुनिया में जो भी कौम बसती है अल्ला पाक के हुक्म से बसती है।"

पीपर खुटी में तालाब के किनारे रुककर उन्होंने थोड़ी पेट-पूजा की; फिर वही बैलगाड़ी के पहियों की रीं-रीं आरम्भ हो गई। थोड़ी दूरी पर सोनभद्र नदी मिली; भारी-भरकम चट्टानों को चीरकर सोनभद्र ने रास्ता बनाया था, पर इस समय तो पानी की छोटी-सी धारा बह रही थी।

"सोनभद्र का पाट तो शेरों का ख़ास रास्ता है," हफ़ीज़ बोला, "दिन के वक्त तो खतरा नहीं रहता; रात के वक्त तो यहाँ से कोई माई का लाल ही गुजर सकता है!"

"अल्ला पाक बचानेवाला है, हफ़ीज़ कलन्दर!" चुन्नू मियाँ ने हँसकर कहा, "आराम से बढ़े चलो।"

कहीं-कहीं सड़क के किनारे किसी निकटवर्ती गाँव के लोग नज़र आ जाते; सबकी आँखें उनकी ओर उठ जातीं, और वे भी तो जंगल के इन यात्रियों को आश्चर्य से देखते।

"गोंड तो केवल लंगोटी लगाये जहाँ जी चाहे घूम आयें!" सोम ने चुटकी ली, "गोंड को कपड़ा मिलता भी तो नहीं। एक बार मैंने गोंडों का एक गीत सुना था, आनन्द, जिसमें कहा गया था—दुर्भिक्ष के मारे वह बुरा हाल हुआ कि मालगुज़ार ने एक धोती के बदले अपनी बहन को बेच दिया।"

"मालगुज़ार साहब का यह हाल हुआ, सोम, तो बेचारे गोंड पर क्या बीती होगी!" आनन्द की आवाज़ में सहानुभूति की पुट थी।

बैलगाड़ी जंगल के सन्नाटे को चीरती हुई आगे बढ़ती गई। सड़क के किनारे एक खरगोश दिखाई दिया तो आनन्द की आँखों में 'फ़ैंटासिया' फ़िल्म

का वह दृश्य घूम गया जिसमें दो खरगोश भागते हुए दिखाए गये थे; एकदम नीरवता छा गई थी, फिर संकेत ही से एक खरगोश ने दूसरे खरगोश से कहा था—'चुप भैया, इन्सान का जन्म हो गया,···फिर एक जंगली कबूतर एक विचित्र-सी चीत्कार करते हुए पास की झाड़ी से यों उड़ा, जैसे कह रहा हो—मुझे पकड़ लो तो उस्ताद मान लूँ !······घिसटती, खिसकती, रेंगती बैलगाड़ी आगे की ओर बढ़ती गई। जंगल का सन्नाटा जैसे अपनी मूक वाणी द्वारा कह रहा हो—जंगल में प्रवेश के कई द्वार हैं; बाहर निकलने का कोई द्वार नहीं।

आनन्द खामोश बैठा जंगल का रहस्य समझने का यत्न करता रहा। एक ओर एक मधुमक्खी नशे में चूर अपनी पसन्द के फूल की खोज में घूम रही थी। वृक्ष-ही-वृक्ष, फूल-ही-फूल ! वह जंगल से कहना चाहता था—उस्ताद, तुम्हारी दुनिया भी अजब दुनिया है ! महुए के फूल कह रहे हैं—हमें अपनी मुसकान के तराजू में तोलकर देखो; शाल के फूल कह रहे हैं—हमें आराम से हाथ लगाना; सेमल के फूल कह रहे हैं—हमारा अपना ही रंग है। यहाँ तो तरह-तरह की आवाजें आ रही हैं : कुछ ऐसी जैसे झरने की त्रिल-रिल, त्रिल-रिल, कुछ ऐसी जैसे पायल की झंकार : ये आवाजें यों गले मिलतीं जैसे दो रागिनियाँ एक संगम पर मिल जायँ, जैसे दो सभ्यताएँ एक बिन्दु पर इकट्ठी हो जायँ।

साँझ ने रात्रि का अंचल थाम लिया तो वे क्यूँची पहुँच चुके थे।

जंगल विभाग के रेस्ट हाउस में आनन्द की आँख खुली तो हफ़ीज ने आकर कहा, "अब तो सूरज दो बाँस ऊपर उठ गया, आनन्द बाबू साहब !"

जलपान के बाद आनन्द और सोम बैगा टोला देखने निकले। "आमा

नाला का दृश्य कितना सुन्दर है !" सोम ने जूते उतारकर जल में से गुज़रते हुए कहा, "यहाँ से चार मील की चढ़ाई चढ़कर पगडंडी के रास्ते अमर-कंटक पहुँचा जा सकता है ।"

बैगर टोला क्यूँची से कुछ दूरी पर था; यहाँ केवल बैगों के ही तीस घर थ । क्यूँची की आबादी तो मिली-जुली थी; बीस घर गोंडों के थे तो दस-पंद्रह घर अहीरों, बनियों और ब्राह्मणों के ।

"बैगा घरों की सफ़ाई देखिए," सोम ने हाथ से संकेत किया, "दरवाज़ों के ऊपर माटी के पलस्तर पर अंकित चित्र देखिए, जो पलस्तर करते समय अंगुलियों से माटी को दबा-दबा कर बनाए गये हैं । युवतियों के गले में मूँगों की मालाएँ हैं, जूड़ों पर फूल; साँचे में ढले हुए शरीर देखिए, आँखों में अनगिनत शताब्दियों का इतिहास पढ़िए ।"

"इन लोगों की आत्मकथा तो मोहेंजोदड़ो से भी पुरानी होगी, सोम !"

वे बैगा टोला से लौटे तो बैलगाड़ी तैयार थी । "आज ग्यारह मील चलना होगा," हफ़ीज़ ने बैलों को हाँकते हुए कहा, "पहाड़ का मामला है, फिर घना जंगल ! कबीर चबूतरा तो रात तक हर हालत में पहुँचना ही होगा ।"

अब महुआ नज़र न आता था; अमलतास ने महुए का स्थान ले लिया था । "अमलतास के ढेर-के-ढेर पीले सुनहरी फूल भालू बहुत मज़े से खाता है, बाबू साहब !" हफ़ीज ने हँसकर कहा, "तुम्हें भी तो ये फूल खूबसूरत मालूम होते होंगे, चुन्नू मियाँ !"

"अमलतास तो कोई दूल्हा मालूम होता है," चुन्नू मियाँ ने कहा, "पीले सुनहरी फूलों के सेहरे तो किसी दूल्हे ने भी न पहने होंगे ।"

"मुझे शाल के सफ़ेद फूल पसन्द हैं, सोम !"

"और मुझे पलाश के लाल फूल, आनन्द ! अमलतास के फूलों में मुझे तो कोई ख़ास बात नज़र नहीं आती !"

"फूलों की ज़बान समझने के लिए तो बरसों जंगल में रहना चाहिए,

बाबू साहब !" हफ़ीज ने बैलों के हाँकते हुए कहा ।

हिरनों का एक जोड़ा भागकर सड़क से थोड़ा हटकर खड़ा हो गया : आनन्द ने आँखों ही आँखों में सोम के सम्मुख अपनी कल्पना की उड़ान का परिचय देते हुए कहा, "अब यह हिरन अपनी हिरनी से कह रहा होगा—चार आदमी आये हैं, हमारी जान की खैर नहीं ! और हिरनी ने मुँह बनाकर कहा होगा—तुम तो योंही डर जाते हो !"

एक सुन्दर पहाड़ी नदी के किनारे वे दोपहर के भोजन के लिए रुके ।

"यहाँ से पास ही आमाडोब गाँव है, आनन्द ! मैं तुम्हें वहाँ नहीं ले जाऊँगा ।"

"शायद तुम डरते हो सोम, कि मैं इसी गाँव में रहने का फैसला न कर लूँ ।"

"हमें तो करंजिया पहुँचकर ही दम लेना होगा, आनन्द !"

"कबीर चबूतरा छः मील रहता है," हफ़ीज़ ने बैलगाड़ी को तैयार करते हुए कहा, "फिर यह चढ़ाई का रास्ता है, शेर और भालू का डर भी है; चीते से तो खैर हम चार आदमी निबट भी सकते हैं ।"

"क्यों हमें डरा रहे हो, अरे हफ़ीज़ कलन्दर !" चुन्नू मियाँ ने जैसे डर को दूर भगाते हुए कहा, "अल्ला पाक ने साफ कहा है कि इन्सान को अपने रास्ते पर चलते हुए किसी से डरना नहीं चाहिए !"

"जंगल में रात गुज़ारना बहुत मुश्किल होता है, चुन्नू मियाँ !" हफ़ीज ने बैलों को पुचकारते हुए कहना आरम्भ किया, "एक बार मुझे जंगल में रात पड़ गई । यह सिद्ध बाबा की चट्टानों के पास की बात है, जो सड़क के दोनों तरफ यों खड़ी है जैसे दो शेर एक-दूसरे को देख रहे हों; इसी सड़क पर मिलेंगी सिद्ध बाबा की चट्टानें, बस थोड़ी देर बाद । मैंने दो चट्टानों के बीच डेरा डाल दिया, क्योंकि मैंने सुन रखा था कि आदमखोर शेर भी आ निकले तो वह भी सिद्ध बाबा की चट्टानों के बीच में पड़े हुए इन्सान को सूँघकर ही चला जाता है ।"

"चलता है, सब चलता है !" आनन्द ने सिगरेट का कश लगाते हुए कहा, "वृक्षों पर बन्दरों की उछल-कूद भी देखते जाओ !"

"भला हो शिकारियों का !" हफ़ीज ने अपनी ही रट लगाई, "हर एक शेर और चीता तो आदमखोर नहीं होता, लेकिन एक बार दरिन्दे के मुँह में आदमी का लहू लग जाता है तो वह आदमी पर बहुत बुरी तरह झपटता है। एक बार इस सड़क पर मचान लगाया गया; कोई गोरे साहब बहादुर शिकार खेलने आये थे। जोर का हाँका पड़ा; गुस्से में झपटकर एक शेरनी गार से बाहर आई और शिकारी की गोली का निशाना हो गई। शिकारी को शेरनी का पता न चल सका। शेरनी जख्मी होकर सड़क के किनारे आ गिरी थी। उसके दो बच्चे भी थे। माँ के पीछे-पीछे वे भी सड़क पर चले आये। पहले तो शेरनी के बच्चे झाड़ी में छिप गये। फिर वहाँ से निकलकर अपनी माँ के थन सूँघने लग गये। यह मेरी आँखों देखी बात है। शेरनी के बच्चे तो इन्सान के बच्चे मालूम हो रहे थे। मेरे जी में आया कि दोनों बच्चों को उठाकर ले चलूँ। फिर सोचा कि काहे को यह मुसीबत मोल लूँ। हाँ तो जब वह शिकारी शेरनी को मरी हुई समझकर उसके पास गया तो शेरनी उस पर झपट पड़ी। बेचारा बड़ी मुश्किल से बच पाया।"

सोम ने आँखों-ही-आँखों में आनन्द को यह बताने का यत्न किया कि हफ़ीज ख्वाह-म-ख्वाह उन्हें बना रहा है।

अब चतुर्दिक् बाँस के झुरमट नजर आ रहे थे। "जब भी कहीं शेर मारा जाता है, गोंड हमेशा उसके गल-मुच्छों को झुलस देते हैं।" हफ़ीज ने अपनी रट लगाते हुए कहा, "गोंडों का ख्याल है कि इससे यह डर नहीं रहता कि शेर की रूह उन पर हमला करेगी। एक बात और भी है। किसी आदमी को शेर ने घायल कर दिया हो तो उसे गोंड कभी नहीं छू सकता; गोंडों का ख्याल है कि ऐसा करने से शेर उस आदमी पर कभी-न-कभी जरूर हमला करता है और बदला लेता है। गलती से कोई गोंड शेर के घायल किये हुए आदमी

को छू ले तो उसे बिरादरी से निकाल देते हैं, बेचारे को दोबारा शुद्ध होकर गोंड बिरादरी में शामिल होना पड़ता है।"

"वे रहीं सिद्ध बाबा की चट्टानें!" सोम ने जैसे पुरानी स्मृतियों को बटोरते हुए कहा, "वे सामने बाँसों के उस झुरमुट के पार।"

जंगल मानो एक वयोवृद्ध मानव के समान बाँहें फैलाये स्वागत कर रहा था—आओ मेरे बेटो! मैं तो तुम्हारी ही प्रतीक्षा में खड़ा हूँ। मेरा अंग-अंग तुम्हारे लिए है; मैं सब देखता हूँ, सब समझता हूँ। बहुत शीघ्र तुम मेरी भाषा से परिचित हो जाओगे। आओ मेरे बेटो, मेरी बाँहों में आ जाओ।

सूर्य अस्त हो रहा था; चतुर्दिक् एक सुरमई-सा गुबार छा रहा था, जैसे ढोल पर एक खोल चढ़ा दिया गया हो। दाईं ओर गहरी खड्ड थी थी और बाईं ओर पहाड़ की ऊँची दीवार: नीचे भी जंगल, ऊपर भी जंगल।

"अभी कबीर चबूतरा डेढ़ मील रहता है," हफ़ीज़ ने कहा, "अब तो समझो पहुँच गये।"

इतने में एक भयंकर आवाज़ आई। सब स्तब्ध रह गये। दोनों बैलों के कदम भी रुक गये। सबके चेहरे का रंग उड़ गया।

"अल्ला पाक हमारे साथ है!" चुन्नू मियाँ ने कहा, "इन्सान को डरने की क्या ज़रूरत है?"

दूर से दो आँखें मशालों की तरह चमकती नज़र आईं।

"हर कोई ज़ोर से चिल्लाये!" हफ़ीज़ ने जैसे अपने अनुभव की बागडोर सँभाली। चारों व्यक्ति एक स्वर होकर हो-ओ-ओ, हो-ओ-ओ करने लगे। शेर अपने स्थान पर डटकर खड़ा रहा।

"शेर इधर नहीं आ सकता!" चुन्नू मियाँ ने पूरे विश्वास से कहा; उसने भी हो-ओ-ओ, हो-ओ-ओ में स्वर मिला दिया।

शेर गुर्रा रहा था।

"मृत्यु सामने खड़ी है, आनन्द ! मेरी तूलिका और मेरे रंग डिब्बे में ही पड़े रह जायँगे !" सोम के मुख पर विषाद की रेखाएँ उभरीं।

मशालों की तरह चमकती दोनों आँखें बराबर अपने स्थान पर जमी रहीं; मृत्यु ने जैसे अपने स्थान से पीछे न पलटने की ठान ली हो।

बैलगाड़ी की सवारियाँ भयभीत थीं : हो-ओ-ओ, हो-ओ-ओ का अस्त्र कुछ भी तो प्रभाव नहीं दिखा रहा था : एक लाभ यह अवश्य हुआ कि शेर ने आगे आने का साहस न किया। पर वह अपने स्थान पर डटा खड़ा था···फिर न जाने कैसे मशालों की तरह दोनों आँखें कहीं विलीन हो गईं।

बैलगाड़ी फिर अपनी मंजिल की ओर चल पड़ी।

"कबीर चबूतरा में कोई बस्ती तो है नहीं, चुन्नू मियाँ ! हम सीधे डाक बंगले में चलेंगे।"

"अब जहाँ भी तुम ले चलो, हफ़ीज़ कलन्दर !" चुन्नू मियाँ जैसे मृत्यु के मुँह से साफ़-साफ़ बच निकलने के लिए अपने भाग्य को सराह रहा हो, "अल्ला पाक कब चाहते हैं कि इन्सान को शेर खा जाय, और फिर उस इन्सान को जिसे अभी बहुत काम करना है दुनिया में !"

चतुर्दिक् रात्रि का अन्धकार था : बैलगाड़ी कबीर चबूतरा की ओर बढ़ी जा रही थी।

आनन्द और सोम बैलगाड़ी को एक ओर रुकवा कर कबीर चबूतरे का झरना देखने नीचे उतरे तो चुन्नू मियां भी उनके साथ चल पड़ा; प्रभातकालीन प्रकाश में हफ़ीज़ ने उन्हें सड़क से नीचे उतरते देखा और दिल ही दिल में सोचा कि कबीर जी यहां कहां आये होंगे तपस्या करने।

यहाँ बिलासपुर, मंडला और रीवा की सीमायें मिलती थीं; हफ़ीज़

पिछले छः सात साल से इस तिगड्डे को देखता आया था; वह इस पथ से भली प्रकार परिचित था। पास ही हाथीलोटान झील थी जिसके सम्बन्ध में प्रसिद्ध था कि किसी समय इस झील के किनारे हाथी आकर लोटते थे; अब तो सब हाथी सरगुजा की ओर भाग गये थे।

हफ़ीज ने दूर से तीनों साथियों को आते देखा तो पुकार कर कहा, "चुन्नू मियां, ज़रा मेरे लिये सामनेवाली उस झाड़ी से एक फूल ही तोड़ लाओ।"

जब वे गाड़ी में बैठे तो एक की बजाय उनके पास ढेरों फूल थे।

बैलगाड़ी कपोटी नाले के ऊपर से गुज़रती हुई आगे बढ़ गई। एक स्थान पर एकाएक हफ़ीज ने गाड़ी रोक दी।

"वह देखो टिटहरी उड़ी जा रही है, चुन्नू मियाँ!"

"तो हम क्या करें, हफीज कलन्दर?"

हफ़ीज ने पीछे मुड़कर सोम और आनन्द की ओर देखा; वह मुँह से कुछ न बोला; उसके चेहरे पर भय के चिह्न दिखाई दिये।

"गाड़ी को चलाते क्यों नहीं, हफ़ीज़?" आनन्द ने हफ़ीज की खामोशी से चिढ़कर कहा।

सोम ने सोचा कि शायद हफीज़ ने गाड़ी इसलिये रोक दी है कि हम प्रभातकालीन किरणों से चमकते हुए जंगल का दृश्य देख सकें; यह दृश्य बहुत सुन्दर था, जैसे जंगल का यही कोना समूचे जंगल की सुन्दरता का प्रतीक हो।

"गाड़ी को चलाते क्यों नहीं, हफ़ीज कलन्दर!"

हफ़ीज ने चुन्नू मियाँ को घूर कर देखा।

दूर से एक शेर कपोटी नाले के उस पार जाता हुआ दिखाई दिया; तीनों साथी एकदम सहम-से गये। लेकिन हफ़ीज मुस्करा रहा था।

हफ़ीज को मुस्कराते देखकर आनन्द को क्रोध आ गया। उसे शान्त करने के लिये हफ़ीज बोला, "मैं सब जानता था, बाबू साहब! मैं गाड़ी

न रोकता तो आज हमने जान से हाथ धो लिये होते। यह टिटहरी ज़मीन पर बैठी रहती है, बाबू साहब! शेर को गुज़रते देखकर टिटहरी चिल्लाती हुई शेर के आगे-आगे चलती है।"

"तो यह टिटहरी इन्सान को खबरदार करती है, हफ़ीज़ कलन्दर!"

"नहीं, चुन्नू मियां! तुम गलत समझे," सोम ने कहा, "अब शेर ठहरा जंगल का बादशाह! टिटहरी बादशाह के आगे-आगे उड़ती है और कहती है—बा अदब, बा मुलाहज़ा, होशियार!"

गाड़ी चल पड़ी। हफ़ीज़ ने हँसकर कहा, "टिटहरी खबर देती है कि बादशाह सलामत आ रहे हैं।"

बैलगाड़ी तेज़-तेज़ चली जा रही थी, क्योंकि अब उतराई का रास्ता था। इधर-उधर चट्टानें सिर उठाये खड़ी थीं। शाल के सफेद फूल सड़क पर बिछे हुए थे, जैसे यात्रियों को रुकने का निमन्त्रण दे रहे हों; अमलतास के पीले सुनहरी फूलों के साथ-साथ धवा, बेजा और अचार के फूल भी पीले सुनहरी थे, जैसे पीला सुनहरी रंग हाथ बढ़ाकर समूचे जंगल पर अपनी छाप लगा रहा हो। सेमल और पलाश की अपनी बहार थी। कहीं-कहीं कोई वृक्ष यों खड़े थे जैसे कोई वयोवृद्ध हथेली पर ठोड़ी टेके खड़ा हो।

सोम ने आनन्द का कन्धा झंझोड़कर कहा, "ऊँघ क्यों रहे हो, आनन्द! वह देखो सामने का दृश्य। मेरा तो जी चाहता है कि डिब्बा खोलकर रंग निकालूँ और अभी एक चित्र बनाने बैठ जाऊँ।"

आनन्द की आँखों में चमक आ गई; जैसे मस्तिष्क के वातायन खुल गये हों। वह पंख लगाकर सामने की उपत्यका पर उड़ना चाहता हो।

"सूर्य की किरणों का सोना देखो, सोम! गम्भीर छाया का काजल भी देखो! करंजिया तो कोई खास नाम नहीं, हम इसका नाम सोन काजल रखेंगे।"

"पहले करंजिया पहुँच तो लें, आनन्द!" सोम ने हँसकर कहा, "सचमुच तुम्हें बड़ी दूर की सूझी!"

६

करंजिया की मिट्टी काली है, एकदम काली। जैसे उसे याद हो कि अभी कल तक यहाँ भी जंगल-ही-जंगल था; जैसे उसे उन लोगों के चेहरे याद हों जिनके बलवान हाथों में मज़बूत कुल्हाड़े थे और देखते-ही-देखते जंगल को साफ़ करते चले गये; जैसे करंजिया की काली मिट्टी उन लोगों के नाम तक गिनवा सकती हो जो जंगल को साफ़ करने के पश्चात् यहाँ पहली बार हल चलाने लगे थे। अपने इस महान् कार्य पर वे लोग कितने प्रसन्न हुए थे; जैसे सभ्यता की इस करवट पर उन्हें पूरा विश्वास हो; जैसे सभ्यता के इस नये चेहरे पर भविष्य की उज्ज्वल छाप पूरी तरह झलक उठी हो। सचमुच वे लोग कितने प्रसन्न हुए थे जब जंगल कट गया और नीचे से काली मिट्टी निकल आई। किस प्रकार पहली बार काली मिट्टी में हल चलाने के पश्चात् धान बोया गया, मेघ घिर आये, खेतों में जल भर गया। फिर पौधे जमे और कोंपलें निकलीं, बालियाँ फूटीं। धान के दाने-दाने में दूध उत्पन्न हुआ, जैसे शिशु के लिए माँ के स्तनों में दूध भरता है। किस प्रकार धान की बालियाँ सुनहरी मुस्कान बखेरने लगीं, हँसिये तेज किये

गये और फिर धान काटा गया; नवान्न उत्सव के उल्लास में वे लोग ढोल और पायलों के ताल पर किस प्रकार नृत्य-परम्परा के प्रांगण में झूम उठे होंगे—करंजिया की काली मिट्टी को यह गाथा कभी नहीं भूल सकती।

करंजिया के खेतों पर जंगल की लम्बी छाया है; जंगल के पक्षी अब करंजिया के खेतों में बालियों पर टोंगे मारने आते हैं। समूची उपत्यका कुल्हाड़े और हल का सिक्का मानती चली गई। चतुर्दिक् पहाड़ों पर जंगल अपनी छटा बखेरता रहा। करंजिया से तो तीनों ओर जंगल इतना समीप है कि उसकी लम्बी छाया यहाँ के खेतों का कुशल-मंगल पूछने आती है; जैसे जंगल अपनी भाषा में आज भी पूछ रहा हो—कोई कष्ट तो नहीं है, ओ करंजिया की काली मिट्टी ? करंजिया की काली मिट्टी मुस्कराती है, मचलती है; जैसे वह कहना चाहती हो—मैं अब भी तुमसे दूर थोड़े ही हूँ, तुम चाहो तो आज भी बाँहें फैलाकर मुझ पर छा जाओ। अब मुझे मानव के हाथ प्रिय लगते हैं। मानव का हर्ष-उल्लास मुझे प्रिय लगता है; मानव भूखा न रहे, इसका मुझे सदा ध्यान रहता है। मानव ने परिश्रम किया, खेत तैयार किये; इस विद्या तक पहुँचने के लिए मानव को बहुत प्रतीक्षा करनी पड़ी होगी। मानव का पेट तो पहले तुम ही पालते रहे असंख्य वर्षों तक, फिर मानव ने सोचा कि अब तो उसे नई विद्या की आवश्यकता है। मानव तो आज भी तुम्हारा ऋणी है, उसके हँसी-मज़ाक में, उसकी कथाओं में, उसके गीतों में आज भी तुम्हारी स्मृति शेष है। जंगल से खेतों में आये मानव को बहुत दिन भी तो नहीं हुए; जी हाँ, अभी कल की बात है जब उसने मुझे कुल्हाड़े से साफ़ किया और फिर हल चलाकर बीज बोना आरम्भ किया··करंजिया की काली मिट्टी सब देखती है, सब जानती है। जंगल से उसका अन्तर बहुत अधिक भी तो नहीं। जंगल की छाया बराबर करंजिया की काली मिट्टी का अंचल थामे रहती है।

जब गोंड कुलवधुएँ और कुमारियाँ मटक-मटक कर खेतों की पगडंडियों पर चलती हैं, करंजिया की काली मिट्टी उन्हें देखती है, वे कैसी-कैसी चुहलें

करती हैं; जूड़े में फूल हँसता है, गले में मूँगों की माला; गदराई बाँहें, कजरारी आँखें; किसी-किसी युवती की आँखें कलोर गाय-सी, मुस्कान में ऋतुपर्वोत्सव की सूचना; कजरारी आँखों पर झुकी हुई लम्बी पलकें, जैसे किसी झील के किनारे वृक्ष झुक जायँ। वे सब मुझे प्रिय हैं : मैं उनके हर्ष-उल्लास में अपनी आवाज़ मिला देती हूँ।

राह चलते लोग करंजिया का बखान करते हैं—पड़ोसियों का बखान; ब्याह का बखान; खेतों और घरों का बखान। रोग और ऋण से कैसे मुक्त हों, मालगुज़ार के हथकंडों से कैसे छुटकारा मिले; बनियों की ठगविद्या से कैसे बचें; जीवन की डगर पर कैसे आगे बढ़ें—ऐसी-ऐसी अनेक बातें करंजिया वालों को प्रिय हैं।

मैं हूँ करंजिया की काली मिट्टी। करंजिया वालों के दुःख-दर्द में भी मैं वैसे ही सम्मिलित हूँ जैसे उनके हर्ष-उल्लास में। वे हँसते भी हैं तो इस प्रकार जैसे अपने आँसुओं को छिपाने का यत्न कर रहे हों। वे दबे-दबे-से रहते हैं—पिसे-पिसे-से।

करंजिया की काली मिट्टी करवट लेती है, आँखें मलती है। जैसे वह अभी-अभी नींद से जागी हो एक नवयौवना के समान! करंजिया की धरती के मुख पर एक बुढ़िया की-सी झुर्रियाँ कहाँ हैं? करंजिया की धरती नवयौवना ही तो है। अभी कल की बात है कि जंगल काटकर खेती के लिए धरती तैयार की गई। पर मालगुज़ार को तो मालगुज़ारी चाहिए, किसान जियें चाहे मरें। इस चिन्ता में करंजिया की काली मिट्टी क्षितिज की ओर देखने लगती है; तीन ओर जंगल है, क्षितिज तो एक ही ओर नज़र आता है।

करंजिया वाले अब जंगल से लकड़ी काटकर नहीं ला सकते। जंगल की मालिक है सरकार। यह सब कैसे सम्भव हुआ, करंजिया की काली मिट्टी सोच ही नहीं सकती। कल तक तो सारा जंगल इन्हीं लोगों का था जो जंगल में रहते थे। जंगल काटकर खेती शुरू की गई तो किस प्रकार सरकार कूदकर जंगल पर अधिकार जमाने चली आई, यह प्रश्न

करंजिया वालों को परेशान करने लगता है। सरकार जंगल की मालिक रहे, पर जंगल से लकड़ी तो लाने दे। जंगल-विभाग वाले कड़ी निगरानी रखते हैं और लकड़ी काटने वालों को पकड़ लेते हैं, मामला कचहरी में ले जाते हैं; वहाँ सज़ा सुना दी जाती है—बिना आज्ञा लकड़ी काटने वाला जुर्माना भरे या जेल में जाय। जंगल की मालिक तो सरकार बन गई, ज़मीन का मालिक मालगुज़ार कैसे बन गया, यह बात तो करंजिया वाले समझ ही नहीं सकते। खैर वे, मालगुज़ारी देने पर बाध्य हैं।

करंजिया वालों की धर-पकड़ के लिए थाना मौजूद है। लाल पगड़ी के भय से करंजिया वाले सहमे-सहमे रहते हैं। कोई खुशी से तो अपराध करना नहीं चाहता। ये लोग अपनी इज्जत पहचानते हैं।

करंजियावालों को अपने रीति-रिवाज प्रिय हैं। लाल पगड़ी जैसे चाहे, रहे। जंगल-विभाग वाले रेंजर और चौकीदार कितनी भी सख्ती बरतें, बस, उनके अपने मामलों में कोई दखल न दें। लाल पगड़ी वाले भले ही अपनी जगह रहें, जंगल-विभाग वाले भी रहें, पर वे करंजिया वालों को भी इन्सान समझें।

करंजिया में एक लोअर प्राइमरी स्कूल है, जहाँ बाहर से आये हुए दुकानदारों के बच्चे पढ़ते हैं। शराब के ठेकेदार के बच्चे भी इसी जगह शिक्षा आरम्भ करते हैं। लाल पगड़ी वालों के बच्चे भी इसी स्कूल की शोभा बढ़ाते हैं। जंगल-विभाग के सब कर्मचारियों के बच्चे भी सवेरा होते ही स्कूल जाने की तैयारी शुरू कर देते हैं। कम्पाउंडर के बच्चे भी इसी स्कूल के विद्यार्थी हैं।

करंजिया के हस्पताल में डॉक्टर तो बहुत वर्षों से टिक ही नहीं सका; ले-देकर एक कम्पाउंडर है जो अपनी समझ-बूझ के अनुसार काम चलाता है। महीने में बीस-बीस दिन तो ऐसे ही निकल जाते हैं, जब जाकर कोई बीमार आता है। सब के लिए वह एक बड़ी बोतल में पाउडर घोल कर एक ही दवा तैयार कर रखता है। ज्वर हो चाहे खांसी, नज़ला हो चाहे

जुकाम, चाहे सिर-दर्द; घाव पर लगाने के लिए उसके पास दो ही चीजें हैं—टिंचरायडीन और मरहम। घाव हो चाहे फोड़ा, इन्हीं दो चीजों में से दवा चुननी होगी। हस्पताल में वैसे खाली शीशियों की कमी नहीं। कम्पाउंडर दिन-भर बाजार में किसी दुकान पर बैठा गप-शप करता है, अब यह बीमार का काम है कि वह उसे उठा कर हस्पताल ले जाय। कम्पाउंडर मुस्करा कर बीमार की ओर देखता है, आँखों-ही-आँखों में उससे बख्शीश माँगता है।

करंजिया की काली मिट्टी हर एक अपरिचित चेहरे को देखकर बिदकती है और सन्देहपूर्ण दृष्टि से देखती है; किसी भी अपरिचित से करंजिया की काली मिट्टी खुलकर बात नहीं कर सकती। उसे अपने बचाव का सदा ध्यान रहता है। किसी अपरिचित के सम्मुख वह हँसती भी है तो झट सावधान हो जाती है, जैसे वह अपरिचित व्यक्ति के प्रत्येक प्रहार का उत्तर दे सकती हो और अपनी रक्षा के लिए इसे आवश्यक समझती हो।

करंजिया के बीचों-बीच एक सड़क चली गई है। यह सड़क पेंड्रा रोड से डिंडौरी जाती है—पचहत्तर मील लम्बी सड़क। पेंड्रा रोड से कबीर चबूतरा पच्चीसवें मील पर है; फिर उन्नीसवें मील पर है जगतपुर—जंगल-विभाग का बसाया हुआ गाँव। इस जगह जंगल समाप्त हो जाता है; फिर तेतीसवें मील से करंजिया की सीमा आ जाती है।

करंजिया के बारह टोले हैं। प्रत्येक टोले का अपना नाम है। मकान एक-दूसरे से सटे हुए नहीं, अलग-अलग हैं। बीच-बीच में खेत हैं। प्रत्येक टोला थोड़े-थोड़े अन्तर पर है; सभी टोलों में वृक्ष मिलेंगे—किस्म-किस्म के वृक्ष; कुछ टोले तो वृक्षों के नाम पर ही प्रसिद्ध हैं।

पूर्व में है जगतपुर, जहाँ से करंजिया आते समय सड़क सीधी पश्चिम की ओर आती है—एकदम नाक की सीध। जगतपुर से करंजिया आयें तो यहाँ वे सब टोले दाएँ हाथ को पड़ते हैं; बाएँ हाथ की जमीन पर जंगल विभाग के रेंज-क्वार्टर हैं, थाना और हस्पताल भी इसी हाथ पड़ता है,

और इसी हाथ पड़ती है करंजिया के अन्तिम छोर पर दुकानों की लम्बी कतार; यही है करंजिया का बाजार।

बाजार की अन्तिम दुकान का मालिक है लालाराम—शराब का ठेकेदार; हर साल उसी के नाम पर ठेके की बोली टूटती रहेगी। दुकानों की लम्बी कतार के सामने रविवार के दिन हाट-बाजार लगता है, जब चारों ओर के गाँवों के लोग अपनी-अपनी उपज लेकर बेचने चले आते हैं, स्त्रियाँ ही उनमें अधिक संख्या में होती हैं।

सड़क के बाएँ हाथ भी खेती की भूमि है, जिससे ऊपर जंगल आरम्भ हो जाता है; सड़क के दाएँ हाथ, जहाँ करंजिया के बारह-के-बारह टोले बसे हुए हैं, खेतों के बीचों-बीच कमंडल नदी बहती है। इस नदी से सटा हुआ टोला 'नदिया टोला' के नाम से प्रसिद्ध है। कमंडल नदी को कुछ लोग 'कनवा नाला' भी कहते हैं। यह नदी कबीर चबूतरा की 'हाथी लोटान' झील से निकलती है और करंजिया से चार मील उत्तर-पश्चिम में नर्मदा में जा मिलती है। दाएँ हाथ जहाँ करंजिया के टोले और खेत समान होते हैं, फिर जंगल आरम्भ हो जाता है।

करंजिया की सड़क तेतीसवें मील से आगे डिंडोरी की ओर चली गई है। करंजिया कोई डेढ़ हजार से ऊपर की बस्ती होगी। एक हजार तो गोंड ही होंगे, शेष आबादी मिली-जुली है—अहीर और पनका मिलेंगे तो माहरा और आगरिया भी; कुछ घर बैगों और चमारों के भी हैं। तेलियों और कलारों, ब्राह्मणों और क्षत्रियों, कुर्मियों और बनियों के घर भी तो हैं।

करंजिया का मालगुजार पहले भीमकुण्डी में रहता था, जो करंजिया के पास है। अब वह डिंडौरी में चला गया; बड़ी मुश्किल से करंजिया वालों को उसके दर्शन होते हैं; पर उसके कर्मचारी तो हर समय करंजिया में चक्कर काटते मिल जायँगे।

करंजिया का पटेल है मंडल, जो नदिया टोला में रहता है। मंडल पटेल—करंजिया का मुखिया—एक खाता-पीता आदमी है; उसके पास दस

हल की जमीन है—यही कोई सवा सौ एकड़ जमीन; दूसरों के काम आना उसे बहुत प्रिय है, करंजिया में ही नहीं, आसपास के गाँवों में भी, उसकी प्रशंसा करने वालों की कमी नहीं।

मंडल को देखते ही लगता है कि वह हमारे आँख झपकते ही करंजिया की काली मिट्टी से उठकर खड़ा हो गया है। वही रंग, करंजिया की मिट्टी-जैसा; वैसे वह कभी कांवर उठाकर नहीं चलता, पर किसी के लिए काँवर भी उठानी पड़े तो उसे संकोच नहीं। लंगोटी की बजाय धोती पहनता है, कुर्ते के ऊपर फ़तूही रखता है; सिर पर पगड़ी, जिसके दोनों ओर घुंघराले बाल झुके पड़ते हैं।

मंडल के मुँह पर शत्रु की भी बुराई नहीं आती; बात करता है तो मुँह से फूल झड़ते हैं। जब भी हँसता है खिलखिला कर हँसता है। न जाने कहाँ-कहाँ से कहानियाँ ढूँढ-ढूँढ कर लाता है। कोई-कोई कहानी तो अपने मस्तिष्क से बाहर निकालता है—जैसे पनिहारी कुएँ से पानी का डोल खींचती है।

अन्नदेवता की कहानी मंडल की सबसे प्रिय कहानी है :

तब अन्नदेवता ब्रह्मा के पास रहता था। एक दिन ब्रह्मा ने कहा—'ओ भले देवता! धरती पर क्यों नहीं चला जाता?'

देवता धरती पर खड़ा था, पर वह बहुत ऊँचा था। बारह आदमी एक-दूसरे के कन्धों पर खड़े होते, तब जाकर उसके सिर को छू सकते।

एक दिन ब्रह्मा ने सन्देश भेजा—'यह तो बहुत कठिन है, भले देवता! तुझे छोटा होना पड़ेगा। आदमी का आराम तो देखना होगा।'

अन्नदेवता आधा रह गया, पर ब्रह्मा को सन्तोष न हुआ; आदमी की कठिनाई अब भी पूरी तरह दूर न हुई थी। ब्रह्मा ने फिर सन्देश भेजा, और अन्नदेवता एक चौथाई रह गया। अब केवल तीन

आदमी एक-दूसरे के कन्धों पर खड़े होकर अन्नदेवता को छू सकते थे।

फिर आदमी बोला--'तुम अब भी ऊँचे हो, मेरे देवता!'

अन्नदेवता और भी छोटा हो गया। अब वह आदमी की छाती तक आने लगा। फिर जब वह कमर तक रह गया तो आदमी के आनन्द का पारावार न रहा।

अन्नदेवता के शरीर से बालियाँ फूट रही थीं मालूम होता था सोने का पौधा खड़ा है।

आदमी ने उसे झँझोड़ा और बालियाँ धरती पर आ गिरीं।

जब भी मंडल पटेल अन्नदेवता की कहानी सुनाता है, करंजिया का कोई मनचला युवक पूछ बैठता है, "यह कहाँ की बात है, काका?"

"अरे, इसी करंजिया की बात तो है!" मंडल हँसकर उत्तर देता है, "और कहाँ की बात होगी? करंजिया में ही सबसे पहले धान बोया गया था करंजिया में ही सबसे पहले गेहूँ की बालियों का सोना चमका था सूरज की किरणों में।"

"अरे रहने भी दो काका!" वह युवक पलटकर कहता है, "अरे मंडल काका, इतनी बड़ी गप्प तो हमें हज़म नहीं हो सकती!"

मंडल अपने घर के सामने खड़ा है। उसे करंजिया की काली मिट्टी प्रिय है। अरे, ऐसी मिट्टी और कहाँ होगी? कहाँ होगी सोना उगलने वाली काली मिट्टी, जिसे अन्नदेवता का वरदान प्राप्त है। घर में नया गेहूँ भरा पड़ा है, चना भी बहुत हुआ है। मसूर और मटर के तो क्या कहने! खूब फसल हुई है। तेल के लिए अलसी की फसल भी बुरी नहीं रही। गेहूँ भी तो सवाया हुआ है। वाह अन्नदेवता! यह सब तुम्हारी कृपा का फल है। तुम खुश रहो तो कोई भूखा नहीं मर सकता। पगड़ी उतारकर मंडल सिर के घुंघराले बालों को झटकता है जैसे उसे आज सब-कुछ नया-नया-सा मालूम हो रहा

हो। फिर से पगड़ी बाँधते हुए वह सोचता है कि यह सब अन्नदेवता का प्रताप है। उसकी नजर सीधी हो तो कोई आँख उठाकर नहीं देख सकता। ये लाल पगड़ी वाले भी हमारा कुछ नहीं बिगाड़ सकते, न जंगल-विभाग वाले हमें तंग कर सकते हैं, न कोई रोग सता सकता है; बस अन्नदेवता की नजर सीधी रहे और हम लोग भाईबन्दी और आपसदारी बनाये रखें तो बाहर से आये हुए बनिये भी हमें अधिक नहीं लूट सकते।

दूर से आती हुई बैलगाड़ी पर मंडल की दृष्टि पड़ती है। उसकी ओर वह ध्यान से देखने लगता है, कूदकर बैलगाड़ी की ओर लपकता है, जैसे वह गाड़ीवान को पहचान रहा हो।

"अरे, पटेल भैया! हम तो तुम्हारी तरफ ही आ रहे हैं!" हफ़ीज़ पुकार कर कहता है।

"अरे, तुम हो हफ़ीज भैया!" मंडल पास आकर कहता है, "हमारी तरफ आ रहे तो हमारे लाख-लाख भाग!"

"मेहमानों से मिलोगे तो खुश हो जाओगे!" हफ़ीज नीचे उतरकर मंडल के कन्धे पर हाथ रखता है और सवारियों को आवाज देता है, "अजी आनन्द बाबू साहब और सोम बाबू साहब और चुन्नू मियाँ! अब तो नीचे आ जाओ न! अब तो हम अपनी मंजिल पर आ पहुँचे।"

१०

"यहाँ से कमंडल नदी का दृश्य कितना सुन्दर नजर आता है, आनन्द !"

"वह रहा मंडल पटेल का घर, सोम !" आनन्द ने उगते सूर्य के प्रकाश में हाथ से संकेत किया, "पेंड्रा रोड से चलते समय हमने कब सोचा था कि यहाँ इतना सुन्दर स्थान रहने को मिल जायगा।"

टीकरा टोला के सबसे ऊँचे टीकरे पर यह बंगला बहुत सुन्दर था: एक ओर सामने से अर्द्ध-गोलाकार डीज़ाइन के चार कमरे थे और उनके सामने खुला बरामदा था; दूसरी ओर, ठीक सामने अर्द्ध-गोलाकार डीज़ाइन का हाल कमरा और खुला बरामदा था जिसमें लकड़ी की नीची दीवारें बनवा कर इसे पाँच कमरों में बाँट दिया गया था। दोनों बरामदे एक ही आकार के थे। दोनों सिरों पर, जहाँ दोनों बरामदे मिलते थे, मेहराबदार द्वार रखे गये थे—एक पूर्व की ओर, दूसरा पश्चिम की ओर। पूर्वी द्वार से कमंडल नदी का दृश्य देखकर सोम मन्त्रमुग्ध-सा खड़ा रह जाता।

दोनों अर्द्ध-गोलाकारों के बीच बड़ा सुन्दर आँगन था: एक शाल

वृक्ष इस आँगन की सुन्दरता में और भी वृद्धि कर रहा था। पश्चिमी सिरे वाले मेहराबदार द्वार में खड़े होकर सुहारन टोला दिखाई देता था; फॉरेस्ट रेंज-क्वार्टरों का दृश्य तो जैसे पुकार-पुकार कर कह रहा हो— हमारा जवाब नहीं ! लेकिन आनन्द को पूर्वी द्वार से नजर आने वाला दृश्य अधिक सुन्दर लगा : कमण्डल नदी एक साधारण-सी बरसाती नदी ही तो न थी; कबीर चबूतरा की हाथ लोटान झील से निकलने वाली नदी में तो बारह महीने पानी रहता था, इसीलिए तो करंजिया के पूर्वी सिरे के समीप, जहाँ यह सड़क को काटती थी, पक्का पुल बनाया गया था। खैर, यदि यह नदी इससे बड़ी होती तो और भी अच्छा होता; चलिए यह पतली जलधारा भी तो सुन्दर थी।

"यह बंगला तो बहुत दिनों से राजा बाबुओं की बाट जोह रहा था !" मंडल पटेल ने हँसकर आनन्द की ओर देखा।

"तुम क्या सोच रहे हो, छोटे राजा !" चुन्नू मियाँ ने चुटकी ली, "अभी से बम्बई तो याद नहीं आने लगी ? हमने तो बम्बई देखी नहीं, लेकिन सुनते हैं बम्बई बड़ा शहर है।"

"तो छोटे राजा बम्बई से आये हैं ?" मंडल ने चुन्नू मियाँ की ओर देखा।

"हाँ हाँ, बम्बई से आये हैं छोटे राजा, मंडल भैया !"

"और चुन्नू मियाँ, बड़े राजा भी बम्बई से आये हैं ?"

"बड़े राजा तो मोहेंजोदड़ो से आ रहे हैं, मंडल भैया !"

"यह नाम तो पहले नहीं सुना था, चुन्नू मियाँ ! बम्बई के पास ही होगा ?"

"अरे मंडल भैया, बम्बई दूसरी तरफ है, मोहेंजोदड़ो दूसरी तरफ। तुम्हें तो दुनिया के नकशे का कोई ज्ञान ही नहीं है, मंडल भैया !"

"तो हमें अपना ज्ञान सिखा दो न, चुन्नू मियाँ !"

"अरे, इसीलिए तो आये हैं हमारे राजा बाबू। कान खोलकर सुनो।

जंगल में आने का ख्याल पहले राजा बाबू के दिल में ही पैदा हुआ ।"

"बड़े राजा तो बड़े ही अच्छे हैं !" मंडल ने उत्सुकता से आनन्द की ओर देखा ।

"और छोटे राजा भी बहुत अच्छे हैं, मंडल भैया ! बस यह समझो कि हम और राजा बाबू मोहेंजोदड़ो से जंगल पहुँचने के लिए चले, उधर बम्बई से चल पड़े छोटे राजा । पेंड्रा रोड में मुलाकात हो गई । सोचा एक ही जगह जा रहे हैं तो मिलकर क्यों न चला जाय ।"

"मिलकर ही तो बड़े-बड़े काम होते हैं !" मंडल ने अपने अनुभव को जुटाते हुए आनन्द और सोम की ओर बड़ी उत्सुकता से देखा ।

आनन्द मंडल की उत्सुकता से बहुत प्रभावित हुआ : मेजबान को मेहमानों की प्रति इतनी उत्सुकता तो होनी ही चाहिए । मंडल की आँखों में कितनी चमक थी, जैसे जंगल में वृक्षों की शाखाओं के बीच सूर्य की किरणें दिप्तिमान हों । उसे लगा कि मंडल तो जंगल का ही प्रतिनिधि है । जंगल का प्रतिनिधि वह क्यों न होगा ? करंजिया में भी किसी समय जंगल रहा होगा । जंगल कट गया; खेती होने लगी । फिर भी जंगल तो बहुत समीप है और अभी तक अपनी बाँहें फैलाकर इन लोगों का स्पर्श कर सकता है । उसे लगा जैसे मंडल के मुँह से स्वयं जंगल बोल रहा है ।

उन्हें यहाँ आये अभी दस दिन भी तो नहीं हुए थे । लेकिन उन्हें यों अनुभव होने लगा जैसे कई महीनों से यहीं रहते आये हैं ।

सोम उठकर पूर्वी द्वार में जा खड़ा हुआ और कमंडल नदी कर दृश्य देखने लगा ।

"यह बंगला किसने बनवाया था, मंडल काका ?" आनन्द ने मंडल की ओर दोहरी उत्सुकता से देखते हुए कहा ।

"यह बंगला पादरियों ने बनवाया था, बड़े राजा !"

"वैसे एक तरह से देखा जाय तो यह बंगला आप लोगों की झोंपड़ियों का मजाक-सा उड़ा रहा है ।"

"यह न कहो, बड़े राजा !"

"तो मंडल काका, पादरी लोग यह बंगला बनवा कर इसे बन्द करके कहाँ चले गये थे ?"

"पादरी जब्बलपुर से आये थे, बड़े राजा; वापस जब्बलपुर चले गये ?"

"वापस क्यों चले गये ?"

"इसलिए कि करंजिया की पंचायत उन्हें नहीं चाहती थी, बड़े राजा !"

"इसकी भी पूरी कहानी है क्या ?"

"हाँ, बड़े राजा !"

"हम भी तो सुनें वह कहानी ।"

"आज से दस साल पहले जब यह बंगला बनकर तैयार हुआ तो करंजिया में लाल बुखार फैल गया ।"

"लाल बुखार ?"

"हाँ, बड़े राजा ! लाल बुखार के रूप में करंजिया के सिर पर मौत की परछाईं उतर आई : घर-घर लाशें पड़ी थीं । मरने वाले अधिक थे, मरे हुओं को उठाकर बाहर ले जाने वाले कम थे । बुरा हाल था, बड़े राजा !"

"बहुत दिन जोर रहा लाल बुखार का ?"

"हाँ, बड़े राजा ! फिर जब लाल बुखार का जोर कम हुआ तो हमारी पंचायत ने इस पर विचार किया । सबने यही सोचा कि लाल बुखार लाने वाले पादरी लोग हैं ।"

"तो पादरी लोगों ने आप लोगों की दवा-दारू तो की होगी ।"

"उनके हाथ की दवा लेने से लोगों ने इन्कार किया और पंचायत ने उलटा यह फैसला सुना दिया कि पादरी लोगों को करंजिया से भगा दिया जाय ।"

"तो उन्हें भगा दिया गया ?"

"हाँ, बड़े राजा !"

"तुमने भी पंचायत का साथ दिया, मंडल काका ?"

"अब जो भी समझें, बड़े राजा ! मैंने तो पादरियों का साथ देना चाहा था। पादरी बुरे आदमी नहीं थे। बेचारे चले गये। मेरे ऊपर तो बड़े पादरी की दया थी। बड़े पादरी ने मेरी लड़की को पढ़ाना शुरू कर दिया था।"

"तो उस बेचारी की पढ़ाई तो बीच ही में छूट गई होगी, मंडल काका !"

"बीच में तो नहीं छूटी रूपी की पढ़ाई, बड़े राजा ! जब वे यहाँ से गये रूपी को साथ ले गये जब्बलपुर, और इस मकान की चाबी मुझे दे गये और इसकी जिम्मेदारी मुझ पर डाल गये। मेरे पास चाबी न होती तो मैं यह मकान आप लोगों के लिए कैसे खोल देता ?"

"खैर, यह तो ठीक ही हुआ कि हमें रहने को इतना अच्छा बना-बनाया बंगला मिल गया। किराया हम ज़रूर देंगे। हाँ तो रूपी अभी तक जब्बलपुर में है ?"

"रूपी जब्बलपुर से लौट आई है पढ़-लिख कर।"

"चलो तुम्हें यह लाभ तो हुआ, मंडल काका ! पढ़ना-लिखना तो बहुत ही ज़रूरी है। पढ़ने-लिखने से दुनिया की खबरें मिलती हैं। दुनिया किधर जा रही है, क्या सोच रही है—यह सब पता चलता है अखबार पढ़ने से।"

"अखबार क्या होता है, बड़े राजा!" मंडल ने बड़ी उत्सुकता से आनन्द की ओर देखा।

"तो तुम इतना भी नहीं जानते, मंडल भैया !"

"तुम ही बता दो, चुन्नू मियाँ !"

चुन्नू मियाँ ने आनन्द के हाथ से अखबार लेकर मंडल के सामने रख

दिया और गम्भीर आवाज़ में कहा, "अरे मण्डल भैया, अख़बार में तो सारी दुनिया की ख़बरें छपती हैं। हमें तो राजा बाबू के पिताजी ने अख़बार पढ़ना सिखा दिया था : दीवान जी की क्या बात है। हमेशा यही पूछते—चुन्नू मियाँ, आज के अख़बार में तुम्हें कौनसी ख़बर सबसे अच्छी लगी ? मैं तो झेंप जाता कि दीवान जी के सामने क्या बताऊँ। दीवान जी पूछे बिना न मानते। मैं बता देता उल्ट-शुल्ट किसी छोटी-सी ख़बर के बारे में। बस साहब, दीवान जी बड़ी ख़बर पर उँगली रखकर समझाते कि वह ख़बर बड़ी क्यों है। अरे मंडल भैया, तुम्हें अब हमारे राजा बाबू अख़बार पढ़ना सिखा देंगे।"

मंडल के सामने जैसे एक नई ही दुनिया का दृश्य खुल गया। लेकिन फिर जैसे उसके सम्मुख सब-कुछ धुँधला-धुँधला-सा हो गया। "मैं अब पढ़-लिख नहीं सकता, चुन्नू मियाँ !"

"यह ग़लत बात है, मंडल काका !" आनन्द ने फिर से बातचीत की बागडोर सँभाली।

"तो मैं भी पढ़ सकता हूँ ?"

"ज़रूर।"

"फिर क्या होगा ?"

"फिर यह होगा कि तुम्हारे ऊपर कोई ज़ुल्म नहीं कर सकेगा ! अब तो तुम्हारा अँगूठा लगवा कर जो चाहे तुम्हें अपने शिकंजे में बाँध ले।"

"यह तो ठीक है, बड़े राजा।"

मंडल और चुन्नू मियाँ नीचे गाँव की ओर चले गये; आनन्द अख़बार पढ़ने लगा। उसने एक-दो बार नज़र उठाकर पूर्वी दरवाजे की ओर देखा जहाँ सोम खड़ा था। उसके जी में तो आया कि वह भी उठकर सोम के पास चला जाय और चुपके-से उसके पीछे जाकर खड़ा हो जाय और कमंडल नदी का दृश्य उसके साथ मिलकर पी जाय—दूध की घूँट के समान ! पर उसकी नज़र अख़बार पर तैरती चली गई। दूसरे विश्वयुद्ध की ख़बरें काफ़ी गरमा-

गरम थीं : यह भी खबर थी कि महात्मा गाँधी इस युद्ध के विरुद्ध हैं और वे हिटलर को एक लम्बी चिट्ठी लिखकर अहिंसा का महत्त्व समझाने की बात पर विचार कर रहे हैं; यह भी खबर थी कि जापान जोर पकड़ रहा है। उसने अखबार बन्द करके नीचे रख दिया और आँखें बन्द किये आराम कुरसी पर बैठा रहा। उसे ख्याल आया कि पादरी लोग उसके लिए कैसे वरदान सिद्ध हुए : यह सुन्दर बँगला, यह सुन्दर फर्नीचर, यह सब क्या हमारी बाट जोह रहा था? इतने में सोम भी आकर बगल वाली कुरसी पर बैठ गया और अखबार उठाकर पढ़ने लगा।

पश्चिमी द्वार की ओर उसकी आँख उठ गई तो उसने देखा कि दो आदमी उससे मिलने आ रहे हैं। एक थी स्त्री और एक पुरुष : स्त्री एकदम पतली-पतंग, पुरुष एकदम कुप्पा-सा, मुँह ऐसा जैसे गुब्बार फूला हुआ हो।

उन्हें देखते ही आनन्द उठकर खड़ा हो गया। परिचय हुआ। पता चला कि वे हैं मिस्टर और मिसिज़ कासिमी।

"मैं यहाँ का फारेस्ट-रेंजर हूँ!" कासिमी साहब ने अपना परिचय दिया।

"मेरे मायके हैदराबाद में हैं।" मिसिज़ कासिमी ने ज़ोर देकर कहा, "यहाँ जंगल में पड़ी हूँ : वैसे जंगल मुझे पसन्द है।"

"और इसीलिए हमारी बेगम एकदम सादा रहती हैं।" कासिमी साहब ने चुटकी ली, "कहती हैं मेक-अप में क्या रखा है? खैर, ठीक ही कहती हैं। हाँ तो सुनिये, हम लोग आपको दावत देने आये हैं। कल शाम हमारे हाँ खाना खाइए। हाँ तो आप भूलियेगा नहीं। कल खाने पर जमकर बातें होंगी। आज हम लोग ज़रा जल्दी में हैं।"

"हाँ तो इजाज़त!" मिसिज़ कासिमी ने उठते हुए कहा।

मिस्टर और मिसिज़ कासिमी पश्चिमी द्वार की तरफ चल पड़े। सोम और आनन्द उन्हें नीचे तक छोड़ने गये।

लौटते समय आनन्द ने सोम के कन्धे पर हाथ रखकर कहा, "देखा तुमने मिसिज कासिमी का अन्दाज। सूरत इतनी बुरी भी तो नहीं!"

"छोड़ो इन बातों में क्या रखा है, आनन्द!"

"तो तुम्हें वह पसन्द नहीं आई, सोम!"

"पेंड्रा रोड में तुम रंजना की प्रशंसा करते रहे। अब यहाँ आकर मिसिज कासिमी पर रीझने लगे। मेरी बात दूसरी है।"

"वह दूसरी बात क्या है, सोम?"

"भई मेरे दिल पर तो जो चित्र एक बार बनता है, जल्दी नहीं मिटता; मेरे चित्र के रंग सदा पक्के होते हैं।"

११

"यह लीजिए, मेहमान बाबू !"

"क्या ?"

"यह मेरे काका ने भेजी है।"

"क्या चीज भेजी है ? कौन काका ?"

"खुमियों की भाजी है, मेहमान बाबू !"

"खुमियों की भाजी ? ...लेकिन भेजी किसने है !"

"मेरे काका ने जो करंजिया के पटेल हैं, मेहमान बाबू !"

"तो तुम हो रूपी ?"

"जी !—"

खुमियों की भाजी वाला काँसी का कटोरा, जिसे काँसी की रकाबी से ढक रखा था, आनन्द के सामने वाले मेज पर रखकर रूपी पूर्वी द्वार की ओर भाग गई।

"अरे भई, सुनो तो !" आनन्द ने कुरसी पर बैठे-बैठे पीछे से पुकार कर कहा, "जरा चुन्नू मियाँ को तो भेज देना इधर; हमारा दिल नहीं लगता

उसके बिना !"

आनन्द के समीप ही सोम भी बैठा था; उसे जैसे कुछ भी खबर न हो कि कुछ ही क्षणों में नाटक की कौनसी झाँकी रंगमंच पर उभरी और फिर पर्दा भी गिर गया। उसके हाथ में एक आर्ट मैगज़ीन था जिसमें कला की नवीन प्रवृत्तियों के सम्बन्ध में एक अच्छा लेख प्रकाशित हुआ था; उसकी दृष्टि इस लेख के पहले पृष्ठ पर जमी हुई थी।

"करंजिया के गोंडों का सौन्दर्य देखा, सोम !"

सोम की दृष्टि ऊपर न उठी।

"आर्ट मैगज़ीन में ऐसी क्या बात है, सोम, जो जीवन से भी बढ़कर है ?"

"क्या बात है, आनन्द !" सोम ने बे-दिली से पूछा।

"अरे भई, मैं कहता हूँ कि जीवन का रस लेना सीखो। तुम हो कि जीवन की ओर से आँखें बन्द किये बैठे रहते हो। यही बात थी तो बम्बई से यहाँ आने की क्या जरूरत थी !"

सोम ने इसका कुछ उत्तर न दिया; उसकी दृष्टि आर्ट मैगज़ीन के पृष्ठ पर जमी रही।

शिवराम अहीर ने चाय की ट्रे मेज़ पर ला रखी; जाते हुए वह एक चिट्ठी जेब से निकालकर सोम के हाथ में थमाता गया।

"लो चाय तो बनाओ, सोम !" आनन्द ने मचलकर कहा, "चाय के साथ तो तुम्हारी अच्छी दोस्ती है।"

सोम ने झट आर्ट मैगज़ीन एक तरफ रख दिया; चाय तैयार करते हुए उसने कहा, "शिवराम चाय खूब बनाता है, आनन्द !"

"यह भी अच्छा हुआ सोम, कि हमें इतना अच्छा रसोइया मिल गया। वह ठीक ही तो कहता होगा; कहता है कि वह पेंड्रा रोड और डिंडौरी तक, बल्कि जब्बलपुर तक, घूम आया है इसी नौकरी के सिलसिले में।"

"आदमी तो घूमा-फिरा मालूम होता है।"

"कहता है कि वह अंग्रेजों की नौकरी भी कर चुका है।"

"आदमी तो तजरुबेकार मालूम होता है।"

चाय वाकई मजेदार थी; सोम ने आँखों-ही-आँखों में आनन्द को बताना चाहा कि अनुभव बड़ी चीज़ है।

"शिवराम चाय के 'फलेवर' को उभारना खूब जानता है, सोम!" आनन्द ने चाय का घूँट भरते हुए कहा, "मेरा तो ख़याल है कि चाय बनाने की भी अपनी कला है।"

सोम ने इसका कुछ उत्तर न दिया; चाय के पहले कप को पीने के बाद ही वह चिट्ठी खोलकर पढ़ने लगा, जो शिवराम उसके हाथ में थमा गया था।

"किसकी चिट्ठी है, सोम?"

"रंजना भाभी की।"

"किसके नाम आई है?"

"वैसे तो हम दोनों के नाम है, आनन्द! रंजना भाभी ने अन्याय तो नहीं किया।"

"तो पहले मुझे क्यों न दिखाई?"

"मैंने इसकी कोई आवश्यकता नहीं समझी।"

"क्यों?"

"तुम तो जिसे देखते हो उसी पर लट्टू होने लगते हो; यह चिट्ठी तुम्हारे किस काम आयेगी?"

"तो तुम्हारे भी किस काम आयेगी?" आनन्द ने चिट्ठी लेने के लिए हाथ बढ़ाया और चिट्ठी लेकर पढ़ने लगा।

"हमारी और बात है!" सोम ने कहा, "चिट्ठी तो क्या, मुझे तो रंजना भाभी की स्मृति से भी प्रेरणा मिलती है।"

आनन्द देर तक रंजना का पत्र पढ़ता रहा; उसने यह पूछने की भी आवश्यकता न समझी कि किसके हाथ रंजना भाभी ने यह पत्र भेजा है।

सोम ने दोबारा आर्ट-मैगज़ीन उठा लिया और उसकी दृष्टि फिर उस लेख पर टिक गई।

"रंजना भाभी को कला से कितना लगाव है, सोम! लिखती हैं—'जंगल में जाकर रहने वालों ने मुझे तो क्या याद रखा होगा! मुझे तो अपना कर्तव्य निभाना है। पेंड्रा रोड क्लब की ओर से हम एक कला-प्रदर्शनी करने जा रहे हैं। सोम! तुमने करंजिया में जो नये चित्र बनाये हों उन्हें जल्दी भेज दो!' अब तुम क्या उत्तर दोगे, सोम!"

"पर आनन्द, मैंने तो अभी तक एक भी चित्र नहीं बनाया।"

"और तुमने देखा, सोम! रंजना भाभी को तुम्हारे चित्रों की कितनी चिन्ता है। लिखती हैं—'सोम, तुम्हारी तूलिका कैसी चल रही है? अब तो तुम्हारे रंग ऊँची आवाज़ में बोल रहे होंगे। रंगों के पीछे जब अनुभव बोलता है, तभी रंग मजा देते हैं, नहीं तो हमारे साथ उनका कोई सम्बन्ध नहीं जुड़ पाता। इसलिए कलाकार को बड़ी सचाई से तूलिका चलानी चाहिए; रंगों का सहयोग तो सचाई से ही प्राप्त किया जा सकता है। कलाकार रंगों को खिलौने न समझ बैठे!' रंजना भाभी के विचार तो बहुत सुन्दर हैं।"

"अच्छा तुम बताओ, आनन्द, मैं कैसा चित्र बनाऊँ? अब रंजना भाभी को कुछ तो भेजना होगा।"

"हाँ सोम, तुम जंगल के वासियों का हर्ष-विषाद यों अंकित करो जैसे सूर्य भगवान् अपने रथ पर सवार होकर निकलते हैं और दिन-भर की यात्रा के पश्चात् पश्चिमान्त लालिमा में खो जाते हैं।"

शिवराम अहीर फिर से गरम चाय ले आया। आनन्द ने चिट्ठी सोम के हाथ में थमा दी और चाय बनाने लगा।

"आनन्द, अपने वाला भाग तो तुमने पढ़ा ही नहीं!"

"वह कौनसा भाग है, सोम! लाओ, मैं भी तो देखूँ।"

सोम ने चिट्ठी आनन्द के हाथ में देते हुए कहा, "यहाँ से पढ़ो,

आनन्द !"

आनन्द चाय छोड़कर देर तक चिट्ठी पढ़ता रहा और एकाएक बोला, "देखो सोम, जो मैं सोचता था वही हुआ; मेरे वाली चिट्ठी रंजना भाभी ने लिखी तो है अलग, पर इसमें भी तुम्हारा नाम ही अधिक है। लिखती हैं—'आनन्द, अब सोम को तुम ही प्रेरणा दे सकते हो। तुम्हारी प्रेरणा के बिना सोम कुछ भी नहीं कर सकता।' फिर लिखती हैं—'जंगल का इतिहास सोम के चित्रों में यों उभरना चाहिए जैसे हम दही जमाते हैं।'

साँझ हो आई थी। वे देर तक बातें करते रहे—बनियों की बातें, जो गोंडों को ठगने में ही अपनी बुद्धि की इति-श्री समझते थे; जंगल की बातें, जिसके साथ मानव का प्राचीन इतिहास जुड़ा हुआ था; जंगल के अंचल से दूर रहने वालों की आकांक्षाओं की बातें, जिनकी पूर्ति कठिन थी; नगरों के संघर्षमय जीवन की बातें; भूख और बेकारी की बातें; दूसरे विश्व-युद्ध की बातें, जो खत्म होने के बजाय उलटा और भड़क रहा था; और घूम-फिर कर तान रंजना भाभी पर टूटी :

"पत्र लिखते समय रंजना भाभी कलाकार बन जाती है, आनन्द !" सोम ने जोर देकर कहा, "बात यों है कि वह अपने को पिंजरे की मैना समझती है; जब पिंजरे की मैना कलम लेकर लिखने बैठती है तो उसकी कलम तूलिका की तरह चलती है, आनन्द !"

दोपहर का भोजन मजेदार था; शिवराम की प्रशंसा का स्पष्ट कारण यही था; और अब रात की मजेदार दावत के बाद गैस-लैम्प के प्रकाश में बंगले का आँगन शीशे की तरह चमक रहा था।

इतने में चुन्नू मियाँ और मंडल पटेल आ पहुँचे; उनके पीछे हफ़ीज भी आ गया। अब पता चला कि रंजना भाभी की चिट्ठी हफ़ीज ही लाया था।

"किसे लेकर आये हो, हफ़ीज !" आनन्द ने पूछा।

"थानेदार अब्दुल मतीन के अब्बा जान को लेकर आया था, आनन्द

बाबू साहब !"

"कोई बात सुनाओ, मंडल काका !" सोम ने कहा।

"क्या बात सुनाऊँ, बड़े राजा ? अच्छा तो बुझौवल सुनिए : साजा रूख अवाक् चिरई, हाले रूख तो गाये चिरई ![1] इस बुझौवल का जवाब बताओ।"

"खाने में है कि पीने में, मंडल काका ?"

"न खाने में न पीने में, बड़े राजा !"

"ओढ़ने में तो नहीं, मंडल काका ?"

"ओढ़ने में भी नहीं, बड़े राजा !"

"हम बतायें ?" हफ़ीज ने हाथ उठाकर पूछा, जैसे स्कूल का विद्यार्थी पूछता है।

"तुम चुप रहो, हफ़ीज !"

"तो और कौन बतायेगा यहाँ, मंडल भैया ?" चुन्नू मियाँ ने आश्चर्य से देखा।

"थोड़ी मदद तो करो, मंडल काका !"

"यह वह चीज़ है जिसे करंजिया की सड़क खूब जानती है, छोटे राजा !"

"और कौन जानता है इसे, मंडल काका ?"

"खेतों की पगडण्डियाँ।"

"ऐसी कौनसी चीज़ हो सकती है ?"

"सोचकर बताओ, छोटे राजा !"

आनन्द ने हार मान ली; सोम भी इस बुझौवल का उत्तर न दे सका। चुन्नू मियाँ ने हारकर भी हार न मानने के अन्दाज़ में कहा, "यह चीज़ हमारे अल्ला पाक की बनाई हुई है या इन्सान की ?"

---

१. साज का एक वृक्ष है जिस पर एक चिड़िया बैठी है; वृक्ष हिलता है तो चिड़िया गाती है।

"यह इन्सान की बनाई हुई चीज़ है।"

"इन्सान की बनाई हुई चीज़?" आनन्द ने आश्चर्यपूर्वक कहा, "इन्सान की बनाई हुई ऐसी कौनसी चीज हो सकती है?"

"तो अब मैं बताऊँ, बड़े राजा?"

"अच्छा बताओ।"

"मेरी बुझौवल का उत्तर है पायल!"

"पायल?"

"हाँ, बड़े राजा! मेरी बुझौवल का उत्तर है पायल!"

"वाह वाह!" आनन्द ने मन्त्रमुग्ध-सा होकर कहा, "देखा इस गोंड-पहेली का रंग, सोम! यह बुझौवल नहीं, पूरा चित्र है। किसी गोंड-छोरी के टखने से लिपटी हुई पायल को गूँगी चिड़िया से उपमा दी गई है; जब यह छोरी लोक-नाच में थिरकती है तो गूँगी चिड़िया बोलती है! कितना बढ़िया चित्र है, सोम!"

सबकी निगाहें मंडल की ओर उठ गईं, जिसकी बुझौवल एक प्रकार की चित्रलिपि में अंकित हुई थी।

"हमारी यह बुझौवल क्या बताती है, बड़े राजा? समझने का यत्न करो।"

"क्या बताती है यह बुझौवल, मंडल काका?"

"यही कि गोंडों के जीवन में नाच रचा हुआ है, पायल की झंकार घुली हुई है!"

"अब यह तो यहाँ का कोई लोक-नाच देखकर ही कह सकते हैं, मंडल काका!"

"इसे दिखाने का भी प्रबन्ध करेंगे; इसका भी समय आयेगा।"

सबकी आँखों में हर्ष था; साथ ही इस बात का गर्व भी था कि मंडल-जैसा अनुभवी पथ-प्रदर्शक मिल गया।

मंडल की फ़रमाइश पर चुन्नू मियाँ ने तरह-तरह के इन्सानों के हँसी

के नमूने पेश किये। जैसे उसके व्यक्तित्व का यह रंग आज तक आनन्द के लिए एकदम छिपा हुआ था। एक हँसी वह थी जो लम्बे कहकहों के पंख लगाकर उड़ती थी: एक हँसी ऐसी जैसे धीरे-धीरे कुहनियाँ उठाकर कहीं कुहनियों के नीचे से हँसी की फुलझड़ी-सी छोड़ी जा रही थी। एक वह हँसी थी जिसमें गले की कला से भी अधिक नाक से साँस लेने की कला का रंग उभरता था। आनन्द ने सोचा—अब इसका भी क्या इलाज कि बुड्ढे आदमी की हँसी भी बुड्ढी होने लगती है!

फिर हफ़ीज़ ने अपनी कलन्दरी का परिचय देना आरम्भ किया; वह जंगल के हरएक पक्षी और पशु की आवाज़ें निकाल कर दिखाता चला गया।

इतने में चुन्नू मियाँ ने फॉरेस्ट रेंजर कासिमी साहब की नकल उतारी: घर से बाहर रेंजर साहब हर किसी पर रोब गाँठते हैं, घर में भीगी बिल्ली बने रहते हैं।

मंडल ने थानेदार अब्दुल मतीन की नक़ल उतारी: थाने के सिपाहियों पर वह रोब कसता है; अफ़सरों के बूटों के तसमें खोलने और कसने के लिए तैयार रहता है।

हफ़ीज़ ने आगे आकर करंजिया के लोयर प्राइमरी स्कूल के हैडमास्टर रामबिहारी लाल की नक़ल उतारी: एक महीने तक मास्टर जी की ऐनक गुम रहती है, बैठे कुरसी पर ऊँघते रहते हैं; कोई लड़का कुछ पूछने आता है तो वह डाँट पिलाते हैं कि रहे भगवान् का नाम।

मंडल ने शराब के ठेकेदार लालाराम की नक़ल उतारी जो ऊपर से देशभक्त बनता है और कहता है कि शराब का ठेका लेने की मबूजरी के बावजूद वह गाँधीजी का भक्त है; वह ब्याज पर रुपया देने की साहूकारी भी करता है और समय आने पर पाँच देकर पचास की रकम पर अंगूठा लगवाने से नहीं चूकता!

फिर मंडल ने करंजिया के कम्पाउंडर सैयद नूर अली की नक़ल उतारी: सब बीमारियों का एक ही इलाज जानते हैं सैयद साहब, वही एक

शीशी, वही एक दवा; घाव या फोड़े-फुन्सी के लिए वही टिंचरायडीन, वही एक मरहम !

सोम भी हँस-हँस कर लोट-पोट होता रहा; आनन्द के सम्मुख प्राचीन नाट्य-शास्त्रकार की सूक्ति घूम गई जिसमें कहा गया था—'नाट्य-कला धर्म में प्रवृत्त प्राणियों को धर्म, कामोपसेवियों को काम, दुर्दान्तों को निग्रह, विनीतों को विनयबुद्धि, क्लीवों को साहस, वीरों को उत्साह, निर्बोधों को बुद्धि, विद्वानों को विद्या, धनी प्राणियों को विलास, दुःख-पीड़ितों को धैर्य, अर्थोप-जीवियों को अर्थ के उपाय, उद्विग्नचित्तों को ढाढ़स, दुःखियों, श्रमपीड़ितों, शोकार्त्तों तथा तपस्वियों को विश्राम प्रदान करेगी।'

नक़लें सब-की-सब समाप्त हो चुकी थीं; अधिक हँसने-हँसाने की प्रति-क्रिया के परिणामस्वरूप हर कोई एकदम मौन हो गया।

"क्या सोच रहे हो, राजा बाबू ?"

"कुछ नहीं, बड़े बाबा !"

चुन्नू मियाँ अपने प्रश्न पर लज्जित-सा हो गया। उसने दोबारा पूछा, "चुप क्यों हो गये, राजा बाबू ?"

"मैं सोच रहा हूँ बड़े बाबा, कि इन्सान कितना छिपा रहता है !"

"यही तो दुनिया का चक्कर है, राजा बाबू !" चुन्नू मियाँ ने गंजे सिर पर हाथ फेरते हुए दोनों हाथों में दाढ़ी पकड़कर कहा, "कितना ही कोई छिपाये; असलियत तो ज़ाहिर होकर रहती है; असलियत को तो अल्ला-पाक भी नहीं छिपा सकते !"

रात काफी चली गई थी। हफ़ीज़ और चुन्नू मियाँ उठकर मंडल के साथ चल दिये।

"अब हमें भी सोना चाहिए, आनन्द ! मेरी आँखों पर तो नींद की भारी-भरकम चट्टान गिरती जा रही है।"

"सोना भी जरूरी है, सोम ! लेकिन यह तो बताओ कि हम वह काम कब आरम्भ करेंगे जिसके लिए हम यहाँ आये हैं ?"

१२

वह रात करंजिया की मनोरंजक रात थी, जब करंजिया को पहली बार संसार की कहानी सुनने को मिली। इससे पहले लोग या तो पंचायत में जमा होते थे, जहाँ बिरादरी के फैसले होते थे, या फिर नाच में जमा होते थे। आनन्द ने फॉरेस्ट-रेंज-क्वार्टरों के खुले अहाते में अपने भाषण का प्रबन्ध कराया। फॉरेस्ट रेंजर कासिमी साहब ने अपने और अपनी बेगम नसीम कासिमी के हस्ताक्षरों से करंजिया के थानेदार, हैडमास्टर और कम्पाउंडर के अतिरिक्त शराब के ठेकेदार और अन्य दुकानदारों को विशेष रूप से निमन्त्रण भिजवाया। मंडल पटेल ने अलग दो-तीन दिन पहले से करंजिया के बारह के बारह टोलों में मुनादी करा दी थी—'जादू की लालटेन पर दुनिया की तसवीरें दिखाई जायँगी!'

फॉरेस्ट-रेंज-क्वार्टरों के खुले अहाते में स्त्री-पुरुषों के बैठने का प्रबन्ध करने में किसी प्रकार की दिक्कत न हुई, क्योंकि गोंड, बैगा, आगरिया और अहीर तो जमीन पर बैठना ही पसन्द करते थे।

कासिमी साहब की खुशी का ठिकाना न रहा जब उन्होंने देखा कि पूरा

करंजिया ही नहीं चला आया, बल्कि आस-पास के गाँवों से भी लोग 'जादू की लालटैन' पर दुनिया की तसवीरें देखने के लिए जमा हो चुके हैं। बेगम कासिमी अपने पति की बग़ल वाली कुरसी पर बैठी बार-बार मचलती निगाहों से कभी हजूम की ओर देखने लगती और कभी आनन्द की ओर जो कासिमी साहब के दाईं ओर बैठा था।

सबसे पहले आनन्द ने ड्राई बैट्री की सहायता से लैन्टर्न स्लाइडों के साथ मोहेंजोदड़ो के खण्डहरों के दृश्य दिखाने शुरू किये और मुँह पर भोंपू लगा कर कहा :

"ये उस नगर की तसवीरें हैं जिसके बारे में अठारह वर्ष पहले किसी को कुछ ज्ञान न था। यह नगर आज से पाँच हजार वर्ष पहले सिन्ध में बसा, और जब आज से अठारह वर्ष पहले इस नगर की खुदाई आरम्भ हुई मैं अभी बच्चा था। मेरे पिताजी, जो अब मोहेंजोदड़ो म्यूजियम के क्यूरेटर हैं, विशेष रूप से सरकार की ओर से वहाँ भेजे गये थे कि वे इस नगर की खुदाई करायें। ये हमारे चुन्नू मियाँ उस समय मुझे गोद में उठाये खुदाई वाली जगह पर खड़े रहते थे।"

फिर आनन्द ने चुन्नू मियाँ को मैजक लैन्टर्न के समीप बुलाते हुए कहा, "इधर आकर जनता को दर्शन दो चुन्नू मियाँ!"

चुन्नू मियाँ ने अपनी जगह से उठकर कहा, "अल्ला पाक को यही मंजूर था कि यह पुराना शहर लोगों के सामने आ जाय!"

"ये हैं हमारे चुन्नू मियाँ, जिनकी गोद में मेरा बचपन बीता और जो उस समय मौका पर मौजूद थे जब इस नगर की खुदाई हो रही थी!" आनन्द ने चुन्नू मियाँ के चेहरे पर बैट्री से प्रकाश डालते हुए कहा।

इसके पश्चात् मोहेंजोदड़ो के खिलौनों में बैलगाड़ी का नमूना, नर्तकी, घड़े, कंघे, सीप के चमचे, सोने-चाँदी के गहने, ताँबे के हथियार, अनाज के नमूने—स्लाइडों में सब बड़े इतमीनान से दिखाते हुए आनन्द ने कहा :

"ये मोहेंजोदड़ो की पाँच हजार वर्ष पुरानी सभ्यता की वस्तुएँ हैं

जिन्हें इन्सान ने कुदाल से ज़मीन खोदकर बाहर निकाल लिया !"

लोगों ने तालियाँ बजाईं। आनन्द ने ऊँची आवाज़ में कहा :

"अब ज़रा आप लोग अपनी अवस्था का अनुमान लगायें कि आपको क्या-क्या सुविधाएँ प्राप्त हैं। मेरा विचार है कि आप स्वयं भी अपने कष्ट नहीं गिनवा सकते। यहाँ एक बहुत बड़ा हस्तपाल बनना चाहिए, जहाँ हर तरह का इलाज कराया जा सके। यहाँ एक बहुत बड़ा स्कूल खुलना चाहिए जहाँ हर तरह की विद्या सिखाई जा सके। संसार बहुत प्रगति कर चुका है। अब ज़रा संसार की तसवीरें देखिए।"

भारत के नगरों के अतिरिक्त आनन्द ने संसार के विभिन्न नगरों की कुछ चुनी हुई स्लाइडें दिखाईं और ज़ोर देकर कहा :

"देखा आपने संसार कहाँ-से-कहाँ जा पहुँचा है और अब ज़रा आप लोग करंजिया की अवस्था का अनुमान कीजिए। शायद करंजिया की सब से बड़ी आवश्यकता है—पेंड्रा रोड से डिंडौरी तक पक्की सड़क। डिंडौरी से गोरखपुर तक तो खैर पहले से ही पक्की सड़क मौजूद है। मेरा मतलब है, पेंड्रा रोड से यहाँ तक तेंतीस मील और यहाँ से गोरखपुर तक तेरह मील का टुकड़ा—यह छयालीस मील लम्बी पक्की सड़क तो जल्दी से-जल्दी बन जानी चाहिए। अब तक तो यह हाल है कि यह सड़क बरसात के दिनों में बिलकुल टूट जाती है और जून से नवम्बर तक एकदम बन्द रहती है। लेकिन अगर यह पक्की सड़क हो तो बरसात में भी बराबर इसका लाभ पहुँच सकता है। थानेदार अब्दुल मतीन साहब मुझे माफ फ़रमायें अगर मैं कहूँ कि यहाँ थाने की उतनी ज़रूरत नहीं जितनी पक्की सड़क की। (तालियाँ) फॉरेस्ट रेंजर जनाब क़ासिमी साहब मुझे माफ़ फरमायें अगर मैं कहूँ कि यहाँ जंगल-विभाग के दफ़तर की भी उतनी जरूरत नहीं जितनी एक बड़े स्कूल की।"

लोगों ने खूब तालियाँ बजाईं।

लोयर प्राइमरी स्कूल के हैडमास्टर ने खड़े होकर कहा :

"क्या मैं पूछ सकता हूँ कि आनन्द साहब जो फ़रमा रहे हैं वह कहाँ तक ठीक है ? आज तक एक भी गोंड, बैगा या आगरिया लड़का हमारे स्कूल में पढ़ने के लिए नहीं आया। आख़िर इससे क्या सिद्ध होता है ?"

आनन्द ने ऊँची आवाज़ में कहा :

"इससे यही सिद्ध होता है कि आपने भी अपना कर्तव्य पूरा नहीं किया, हैडमास्टर साहब !"

हैडमास्टर ने दोबारा उठकर कहा :

"आपका मतलब है हम बेकार बैठे रहे हैं ? आनन्द साहब, सच तो यह है कि करंजिया के लोग शिक्षा का लाभ समझते ही नहीं !"

आनन्द ने कहा :

"तो आप इन्हें समझाइए। क्या आप समझते हैं कि करंजिया वालों की अक्ल में आपकी बात आ ही नहीं सकती ! गुस्ताख़ी माफ़, हैडमास्टर साहब ! मेरा मतलब किसी की बुराई करना नहीं है। लेकिन यह बात कि आज तक एक भी गोंड या बैगा या आगरिया ने करंजिया के स्कूल में अपना लड़का पढ़ने के लिए नहीं भेजा, जहाँ करंजिया वालों के नाम पर काला धब्बा है, वहाँ करंजिया के स्कूल पर भी बदनामी का टीका है।

हैडमास्टर ने क्षमा-याचना करते हुए कहा :

"तो आनन्द साहब, माफ़ फ़रमाइए। हम कैसे इन लोगों के बच्चों को अपने स्कूल में लायें ? क्या हम जबर्दस्ती उठाकर लायें। सरकार ने तो ऐसा कोई कानून नहीं बनाया !"

आनन्द ने कहना आरम्भ किया :

"भाइयो और बहनो ! यह बात करंजिया वालों के लिए बहुत नेकनामी की नहीं है। आज मेरी बात कान खोलकर सुन लो। हम यहाँ किसी के रस्म-रिवाज में बिलकुल दख़ल नहीं देंगे। इसके लिए आप लोगों को पूरी स्वतन्त्रता है। लेकिन आप लोग भी प्रगति करें, यह हम जरूर चाहते हैं। आपकी प्रगति के साथ ही हमारी प्रगति बँधी हुई है। आपकी

सभ्यता आज जीवित है। क्या आप चाहते हैं कि आपकी सभ्यता करंजिया की काली मिट्टी के नीचे दब जाय और फिर कोई आदमी आज से पाँच हजार वर्ष बाद आपकी सभ्यता के खण्डहर खोदकर जमीन के नीचे से निकाले ?"

लोगों ने तालियाँ बजाईं।

आनन्द ने फिर कहना आरम्भ किया :

"भाइयो और बहनो ! यह बहुत खुशी की बात नहीं है ! अगर करंजिया की सभ्यता करंजिया की काली मिट्टी के नीचे दब भी जाय तो पाँच हजार वर्ष बाद उसे खोदकर आखिर कोई कितनी वस्तुएँ बाहर निकाल सकेगा ? आप लोगों के बाँस और फूस के झोंपड़े तो जमीन के नीचे गलकर मिट्टी हो चुके होंगे। करंजिया के बारह-के-बारह टोले मिट्टी में मिलकर मिट्टी हो जायँगे। करंजिया के बारह-के-बारह टोलों को आपस में मिलाने वाली कच्ची सड़कें या गलियाँ भी बिलकुल मिट जायँगी। शायद कुछ बरतन या कंघे या ऐसी कुछ और चीजें और चाँदी या पीतल के गहने निकाले जा सकें; करमा नाचने वालियों की पायलें भी शायद निकाली जा सकें। लेकिन उससे क्या लाभ होगा ? आखिर सभ्यता को कब्र से बाहर निकालने से भी क्या लाभ ? हाँ तो मैं कहता हूँ कि हम एक कार्यक्रम बनायें। वह कार्यक्रम यह है कि संसार की प्रगति में करंजिया भी कदम मिलाकर चले; इसके लिए स्कूल बहुत कुछ कर सकता है।"

हैडमास्टर ने अपनी कुरसी से उठकर ऊँची आवाज में कहा :

"अजी आनन्द साहब, आप हमारे स्कूल में इन लोगों के बच्चों को भिजवाइए कल से ही।"

आनन्द ने कहना आरम्भ किया :

"यह कुछ असम्भव नहीं। आखिर करंजिया वालों के बच्चे अखबार पढ़ना कैसे सीखेंगे अगर वे स्कूल में शिक्षा नहीं पायेंगे। अखबार पढ़ना तो जरूरी है, बहुत जरूरी है। क्योंकि इससे पता चलता है कि देश में क्या

हो रहा है, दूसरे देशों में क्या हो रहा है। और पढ़े-लिखे लोग ही संसार के आन्दोलनों को बदल भी सकते हैं। उदाहरण के रूप में यह समझिए कि यदि संसार के एक भाग में उतनी उन्नति नहीं हुई जितनी संसार के दूसरे भागों में हो चुकी है तो उन्नत भागों के लोग संसार के उन देशों के लिए जोर लगा सकते हैं जो अभी उन्नत नहीं हो सके। लेकिन भाइयो और बहनो, आप लोग स्वयं अपने बारे में नहीं सोचेंगे, स्वयं आप लोग शताब्दियों की नींद से जागकर नहीं उठ बैठेंगे तो काम नहीं होगा। बल्कि मेरा तो ख्याल है कि पाँच हजार वर्ष पुराना मोहेंजोदड़ो जमीन के नीचे दबा रहा और आज इस पुरानी सभ्यता के खण्डहर ढूँढ निकाले गये। आपका पाँच हजार वर्ष पुराना करंजिया ज़मीन के ऊपर ही सोया रहा। आज उसे जगाने के लिए हम लोग यहाँ पहुँचे हैं। अब यह पाँच हज़ार वर्ष पुरानी नींद खत्म कीजिए और चारों तरफ़ आँखें खोलकर देखिए। मैंने सुना है कि आप लोगों के नृत्य बहुत ही सुन्दर होते हैं। लोक-परम्परा का लाख-लाख धन्यवाद है कि आपके नृत्य अभी तक जीवित हैं। मैंने सुना है कि आप लोगों के गीत भी अद्वितीय हैं। लाख-लाख धन्यवाद है कि आपके गीत भी जीवित हैं। इससे शिक्षा की कमी बहुत हद तक पूरी होती रही है। लेकिन अब समय आ गया है कि आप लोग विचार करें और अपने सम्बन्ध में फैसला करें। आप लोग आराम से अपने-अपने घरों को जा सकते हैं। मेरी बात समझ में आये तो अपने बच्चों को पढ़ने के लिए करंजिया के स्कूल में भेजिए। मैं हैडमास्टर साहब से कहूँगा कि वे आपके बच्चों का खास तौर पर ख्याल रखें। बल्कि मैं तो कहूँगा कि करंजिया वालों की लड़कियाँ भी शिक्षा के क्षेत्र में आगे आयें और अपनी बहन रूपी के पदचिह्नों पर चलें।"

अन्त में आनन्द ने दो-एक स्लाइडें दिखाईं जिसमें बैलगाड़ी और रेलगाड़ी साथ-साथ दिखाई गई थीं।

चित्र की ओर संकेत करते हुए आनन्द ने कहा :

"पहियों का अन्तर मुलाहज़ा हो। भाइयो और बहनो, हम कोशिश करेंगे कि बहुत शीघ्र ही एक नया स्कूल भी खोलें—एक ऐसा स्कूल जो करंजिया की सच्ची सेवा कर सके, जो करंजिया वालों को संसार की प्रगति के साथ कदम मिलाकर चलने की शक्ति दे सके।"

लोगों ने तालियाँ बजाईं।

पास से एक लम्बा और संगीतमय-सा कहकहा भी हवा की लहरों पर उभरा, जैसे पानी की लहरों से मुरग़ाबी पंख फैलाकर उड़ जाती है। यह एक युवती का कहकहा था जो सरकती हुई आनन्द के समीप चली आई थी। लेकिन इस युवती की मुखाकृति तो अन्धेरे में नज़र न आ सकती थी।

बेगम कासिमी ने बड़े ठाठ की दावत दी; आनन्द को लगा कि पहले की तीन-चार दावतों पर यह दावत भारी रही। हैदराबादी नवाबी ठाठ तो आज ही देखने को मिला; पहले की दावतें तो जैसे टालने के लिए थीं।

"आज तो आपने कमाल कर दिया, आनन्द साहब!" खाने के बाद बेगम कासिमी ने आनन्द के प्याले में काफी उँडेलते हुए कहा।

"शुक्रिया!"

"वाक़ई मैंने इतनी अच्छी तक़रीर पहली बार सुनी।"

"यह आपकी ज़र्रा-नवाज़ी है, मिसिज़ कासिमी!"

"यकीन कीजिए, आनन्द साहब! हालांकि हमारा हैदराबाद बहुत बड़ा शहर है, लेकिन मैं कहती हूँ हमारे हैदराबाद-भर में ऐसा आदमी नहीं मिलेगा जो बेइल्म लोगों के सामने इतनी अच्छी तक़रीर कर सके।"

"कहो, तुम इनके नये स्कूल के लिए क्या खिदमत सरअंजाम दोगी?" कासिमी साहब ने बेगम की ओर अर्थपूर्ण दृष्टि से देखते हुए कहा।

"आनन्द साहब मुझे माफ़ फ़रमायेंगे। नया स्कूल खोलने की बात मेरी समझ में नहीं आई। शायद करंजिया वाले नये स्कूल का ख्याल पसन्द न करें।"

"तुम तो हर बात में 'शायद' ही कहोगी।" कासिमी साहब ने चुटकी ली।

"सोम साहब, आप क्यों खामोश हैं?" बेगम कासिमी ने बात का रुख बदलना चाहा।

"मैं तो सोचता हूँ कि आप गिरे हुए को उठते नहीं देखना चाहतीं।"

"खैर, अपना-अपना ख्याल है!" बेगम कासिमी ने बलपूर्वक कहा, "मैं तो अब भी यही कहूँगी कि शायद करंजिया वाले नये स्कूल के लिए अपने लड़कों को न भेजें—लड़कियों को तो खैर ये लोग क्या भेजेंगे?"

"यह स्कूल जरूर खुलना चाहिए!" कासिमी ने आनन्द के कार्यक्रम में विश्वास प्रकट किया।

बेगम कासिमी ने चुन्नू मियाँ को अपने साथ सहमत समझकर कहा, "मैं ठीक कहती हूँ न, बड़े बाबा!"

चुन्नू मियाँ ने सिर हिलाया।

"इन करंजिया वालों को तो कभी अक्ल आ ही नहीं सकती!" बेगम कासिमी ने अपनी बात पर दृढ़ रहते हुए कहा।

"अब तो करंजिया वालों को अक्ल आ रही है, बीबी जी!" चुन्नू मियाँ ने गंजे सिर पर हाथ फेरते हुए कहा, "अक्ल न आ रही होती तो ये लोग इतनी शान्ति से राजा बाबू का उपदेश कैसे सुनते?"

"हम तुम्हें भी अपने स्कूल में मास्टर बना देंगे, बड़े बाबा!" सोम ने हसकर कहा, "मंजूर है न?"

"मास्टर बनने से हम कब इन्कार करते हैं, छोटे राजा? मैं तो बच्चों को हमेशा यही बताऊँगा कि अक्ल बड़ी चीज़ है!"

"हाँ, बड़े बाबा! यह तो ठीक है; वह किसी ने कहा है न—अक्ल

बड़ी या भैंस ?"

सब खिलखिला कर हँस पड़े। लेकिन चुन्नू मियाँ ने अपनी बात जारी रखते हुए कहा, "अक्ल बड़ी चीज़ है : अक्ल भी ऐसी जो ज़मीन पर उगे, जो धान और गेहूँ की तरह उगे, और छोटे राजा, अक्ल कहीं दूर से तो नहीं आती—न दोज़ख से, न जन्नत से, न विलायत से !"

"यह तो मान लिया बड़े बाबा कि दोज़ख और जन्नत से अक्ल नहीं आती !" बेगम कासिमी ने चुटकी ली, "पर विलायत से तो जहाज़ों पर चढ़-चढ़ कर आती है अक्ल !"

इस पर आनन्द के तो हँसते-हँसते पेट में बल पड़ गये। "इतना भी मत हँसो आनन्द, कि बाद में रोना पड़े !" कासिमी साहब ने व्यंग्य कसा, "और बेगम, अब तो कॉफ़ी आनी चाहिए गरम-गरम !"

बेगम के आवाज़ देते ही नौकर कॉफ़ी लेकर आ गया।

"और तो और, यह लोअर प्राइमरी स्कूल का हैडमास्टर रामबिहारी लाल क्यों बोल रहा था बार-बार ?" बेगम कासिमी ने कॉफ़ी का प्याला आनन्द के हाथ में थमाते हुए कहा।

"आनन्द साहब का स्कूल खुलेगा तो देखना बेगम, कि रामबिहारी लाल को कितनी आग लगती है !"

"आग लगे चाहे बुझे, रेंजर साहब !" चुन्नू मियाँ ने गम्भीर होकर कहा, "हैडमास्टर खुश हो चाहे नाराज़, गोंडों की तरक्की तो होकर रहेगी; अल्ला पाक चाहते हैं कि करंजिया का ढोल बजे, करंजिया का सितारा चमके।"

१३

आनन्द का प्रयत्न बहुत सफल रहा। पूरे चालीस लड़के और दस लड़कियाँ करंजिया के लोअर प्राइमरी स्कूल में भर्ती करा दी गईं। टीकरा टोला वाले बंगले से सटे हुए स्थान पर कुछ नई झोंपड़ियाँ बनाकर 'कला-भारती' की स्थापना की गई। तीस लड़के और बारह लड़कियाँ कला-भारती में ले ली गईं।

मंडल ने तो सब-के-सब लड़के-लड़कियों को आनन्द के सम्मुख लाकर खड़ा कर दिया था, अर्थात् पूरे-के-पूरे सत्तर लड़के और बाईस लड़कियाँ। गोंड, बैगा, आगरिया, पणका, माहरा और अहीर—सभी पर आनन्द की बातों ने जादू का-सा प्रभाव डाला। इसके अतिरिक्त मंडल के बार-बार मुनादी कराने से भी कुछ कम प्रभाव नहीं पड़ा था।

कला-भारती में सोम की इच्छानुसार कला पर ही सब से अधिक जोर देने की बात तय हुई; उसकी राय से बढ़ई और लोहार के काम के लिए भी विशेष ट्रेनिंग का कार्यक्रम बनाया गया। साथ-साथ सूत कातने और कपड़ा बुनने के काम को भी स्थान दिया गया। पढ़ाई-लिखाई का भार स्वयं आनन्द

ने सँभाला।

बढ़ई और लोहार का काम सिखाने वाले दो अध्यापक जबलपुर से मँगवा लिये गये; आनन्द की दृष्टि शिक्षा को जीवन के लिए अधिक-से-अधिक उपयोगी बनाने की ओर थी।

बढ़ईगिरी का अध्यापक रामरतन लम्बे कद का युवक था; उसकी आँखें किसी कदर लमचोई-सी थीं; भँवें कुछ-कुछ भूरी-सी। वह बहुत शीघ्र कला-भारती के विद्यार्थियों से घुल-मिल गया। कला-भारती के उज्ज्वल भविष्य का उसे हमेशा ध्यान रहता।

"कहिए, रामरतन जी, कैसा काम चल रहा है?" आनन्द पूछता।

"काम ठीक चल रहा है, आनन्द जी! कला-भारती को तो मैं अपनी ही संस्था समझता हूँ।"

"विद्यार्थी ठीक काम कर रहे हैं न?"

"कुछ तो बहुत प्रतिभावान् हैं!"

"प्रतिभावान् क्यों न होंगे? जंगल कटने के पश्चात् जब करंजिया की काली मिट्टी पर खेती आरम्भ की गई होगी तो यह कितनी उपजाऊ सिद्ध हुई होगी! अब इन लोगों के बच्चों के मस्तिष्कों पर भी तो पहली बार हल चलाया जा रहा है।"

रामरतन रन्दे से यों काम लेता जैसे यह भी किसी कलाकार की तूलिका हो और वह इससे चित्र अंकित करने जा रहा हो। "आरी से लकड़ी चीरते समय यह मत समझो लड़को, कि यह निर्जीव वस्तु है," वह ज़ोर देकर कहता, "यह समझो कि आरी भी जीवित वस्तु है, तभी ठीक काम कर सकोगे।"

रामरतन कुर्ते और पाजामे में रहता; सिर पर टोपी तक न पहनता। "आवश्यकताएँ जितनी कम होंगी उतना ही अच्छा है!" वह बड़े गर्व से कहता।

लोहार के काम के लिए सरदारीलाल की सेवाएँ प्राप्त की गईं। यह

एकदम काला-कलूटा-सा अध्यापक न जाने किस युक्ति से यह कहने का दुःसाहस करता, "अजी, बन्दे की रगों में आर्य-रक्त बहता है !"

उसे निक्कर पहनना पसन्द था, पैरों में लम्बी जुराबों की कोई शर्त न थी; निक्कर खाकी जीन की ही हो, इसके बारे में उसने कोई विशेष नियम नहीं बना रखा था।

"लोहार का कार्य तो विश्वकर्मा का कार्य है," वह बार-बार कला-भारती के विद्यार्थियों को बताता।

कभी वह विद्यार्थियों के सम्मुख भाषण देना आवश्यक समझता, "मेरे मस्तिष्क में तो हमेशा खटखट होती है, विद्यार्थियो ! लकड़ी का काम भी कोई काम है। लकड़ी के काम में लोहे का रन्दा, लोहे की आरी, लोहे का बरमा, लोहे का तेशा—कितना काम लोहे से चलाया जाता है ! लेकिन लोहे के काम में लकड़ी इतना काम कहाँ देती है ? लोहे के काम के लिए लोहे की प्रकृति देख ली जाती है; लोहे की पहचान तो आवश्यक है। लोहा तो इन्सान का बहुत बड़ा मित्र है; आज संसार का बहुत-सा काम लोहे से चलता है।"

कताई-बुनाई के इंचार्ज थे ब्रह्मचारी अचिन्तराम, जिनकी आयु साठ वर्ष से तो क्या कम होगी; सिर पर लम्बे सफेद बाल; लम्बी सफ़ेद दाढ़ी; आँखों में अनुभव की गहराई, जिन्हें देखते ही हमेशा दो गहरी झीलों का ध्यान आ जाता। ब्रह्मचारी जी प्रत्येक तीर्थ की यात्रा कर चुके थे। बहुत वर्ष पहले वे पुलिस में सिपाही के रूप में भर्ती हुए, उन्नति करते-करते दारोग़ा बन गये। फिर एक दिन उनके मन में तीर्थ-यात्रा का विचार आया और करंजिया के थाने से त्यागपत्र दे दिया। वे ब्राह्मण थे। पहले सत्याग्रह के दिनों में उन्होंने यह नौकरी छोड़ी थी; जेल में तो कभी नहीं गये थे, लेकिन महात्मा गांधी के सिद्धान्तों पर चलना उन्हें बहुत प्रिय था। प्रतिदिन चरखा कातने का प्रण तो वे अनेक वर्षों से पूरा करते आ रहे थे; तीर्थ-यात्रा के दिनों में भी उन्होंने कभी चरखे को तिलांजलि नहीं दी थी।

ब्रह्मचारी जी धन कमाने की दृष्टि से कला-भारती में सम्मिलित नहीं हुए थे। सेवा की भावना ही इसके लिए उनकी सबसे बड़ी प्रेरणा थी। आनन्द ने बहुत अनुरोध किया कि वे अपने जीवन-यापन के लिए प्रति मास वेतन नहीं तो थोड़ा 'पत्रम्-पुष्पम्' तो अवश्य स्वीकार करें। करंजिया में पुरखाओं से चली आई ब्रह्मचारी जी की थोड़ी-सी जमीन थी, जिससे इतना अन्न तो आ ही जाता था कि मजे से रोटी निकल आये, इसलिए उन्होंने पत्रम्-पुष्पम् के रूप में लेना स्वीकार न किया।

"कला-भारती के भविष्य के सम्बन्ध में आपका क्या विचार है, ब्रह्मचारी जी?" आनन्द पूछता।

"बहुत शुभ!" ब्रह्मचारी जी मुस्कराकर कहते, "बहुत ही शुभ!"

"इससे करंजिया का भला होगा?"

"अवश्य होगा, आनन्द जी!"

"किसी के कानों तक हमारे कार्य का समाचार पहुँचेगा?"

"इस पर तो देवतागण आकाश से पुष्पवर्षा करेंगे, आनन्द जी!"

वयोवृद्ध ब्रह्मचारी जी पर आनन्द को बहुत गर्व था।

बंगले के एक ओर के अर्द्ध-गोलाकार वाले बड़े कमरे के एक भाग में, जिसे लकड़ी की नीची दीवारों से कई भागों में बाँटा गया था, सोम चित्र-कला की कक्षा लेता था।

आनन्द को लगता जैसे वही प्रत्येक कक्षा का अध्यापक है, क्योंकि कोई ऐसी कक्षा न थी जिसकी वह स्वयं देख-रेख करने की चेष्टा न करता।

१४

आनन्द पूर्वी द्वार में खड़े होकर नदिया टोला और कमंडल नदी का दृश्य देखने लगता। जब वह पीछे मुड़कर देखता कि चुन्नू मियाँ पश्चिमी द्वार में खड़ा उस तरफ़ का दृश्य देख रहा है तो उसे विचार आता कि चुन्नू मियाँ को कासिमी साहब का घर अधिक पसन्द है। उसे याद आता कि बेगम कासिमी की तो चुन्नू मियाँ बार-बार प्रशंसा करने लगता है और कहता है—ऐसी नेकबख्त औरत तो चराग़ लेकर ढूँढे से न मिलेगी!

पूर्वी द्वार में खड़े होकर उषा का दृश्य देखने की लालसा को वह दबाकर न रख सकता। यों लगता जैसे उषा नूतन सन्देश लाई है: रंगों का नूतन सन्देश, जो उसी तरह उड़ना चाहते हैं जैसे जलधारा से मुरग़ाबी फुर से उड़ जाती है। कई बार उसे ध्यान आता कि करंजिया कितना भी सुन्दर स्थान क्यों न हो, गाय की तरह एक खूँटे से बँधकर उसने अच्छा नहीं किया। फिर वह सोचता कि खानाबदोशों के साथ सम्मिलित होकर एक स्थान से दूसरे स्थान तक घूमते-फिरते रहना भी उसके लिए कहाँ

सम्भव था! उस बादशाह की कहानी उसकी आँखों में फिर जाती जो अपनी बादशाहत का बोझ उतारकर एक दिन चुपके से खानाबदोशों के एक खेमें में आ गया था; आया तो था यह सोचकर कि एक वर्ष बाद इस जीवन का रस लेकर लौट जायगा, लेकिन उसने फैसला किया कि अब वह उस खानाबदोश युवती को छोड़कर नहीं जायगा जिसका स्नेह उसे बादशाहत तक छोड़ने की प्रेरणा दे पाया था। उषा से सम्बन्धित वैदिक कल्पना उसके मन को छू जाती, वैदिक कवि ने सर्वप्रथम उषा का गान गाया था: उसे लगता जैसे आज भी वह गान उतना ही महत्त्वपूर्ण है।

सूर्य अपने रथ पर सवार होकर निकलता है—यह कल्पना-चित्र कितना जीवनप्रद था। सूर्य तो हर रोज़ इसी शान से उदय होता है; करंजिया के लिए भी सूर्य यही सन्देश लाता है—तुम भी जागो कि दुनिया जाग उठी!

पश्चिमी द्वार की ओर देखते ही उसे बेगम कासिमी का ध्यान आ जाता; उस 'पतली पतंग' स्त्री के भारी-भरकम पति का ध्यान आते ही उसकी हँसी छूटने लगती; यह भी क्या खूब जोड़ा है। बात-बात में हैदराबाद का उल्लेख करने की आदत उसे नापसन्द थी। उसने तय कर लिया था कि यदि उसमें ज़रा-भी साहस है तो उसे बेगम कासिमी के मुँह पर अपनी बात कह देनी चाहिए। फिर उसने सोचा कि इन्सान शुरू उमर में जो-कुछ बन जाता है बाद में उससे इधर-उधर होना बहुत ही कठिन हो जाता है। उस समय वह अपनी प्रवृत्तियों का भी विश्लेषण करता; सोम के चरित्र पर भी बड़े ध्यान से सोचता। अपने अनेक सहपाठियों की याद आती; न जाने वे किन-किन प्रवृत्तियों की गलियों में चक्कर काट रहे होंगे; प्रवृत्तियाँ भी कितनी बलवान् होती हैं। प्रवृत्तियों के पीछे तो मानव का शताब्दियों का इतिहास निहित रहता है, जैसे ये प्रवृत्तियाँ भी पगडंडियाँ हों जिन पर मानव का इतिहास अग्रसर होता है।

आनन्द की कल्पना में कई बार हफ़ीज़ का चेहरा उभरता; उसकी मीठी-मीठी बातें उसके मन पर अंकित हो गई थीं। उसे ध्यान आता कि वह तो

अब बैलगाड़ी चलाने का काम छोड़कर मोटर-ड्राइवरी का काम सीख रहा होगा। पिछली बार हफ़ीज़ यहाँ बैलगाड़ी लेकर आया था तो उसने जाते वक्त कहा था—'अब मैं बैलगाड़ी से छुट्टी लेकर मोटर-ड्राइवर बनना चाहता हूँ, आनन्द बाबू साहब! कुलदीप साहब को मेरी मदद करने के बारे में लिख दें तो मेरा काम बन जायगा।' उसने हफ़ीज़ को एक सिफ़ारिशी चिट्ठी दी थी। कुलदीप के नाम न होकर यह चिट्ठी रंजना भाभी के नाम थी। उसने ज़ोरदार शब्दों में सिफ़ारिश की थी। इसके उत्तर में रंजना ने लिखा था—'हमने हफ़ीज़ के लिए प्रबन्ध कर दिया है।' उसकी कल्पना में रंजना मुस्कराती और कहती—हम आनन्द की सिफ़ारिश को अनसुनी भी कैसे कर सकते थे?

पूर्वी द्वार में खड़े-खड़े उसकी कल्पना में उस लड़की का क़हक़हा भी गूँज उठता जो अंधेरे में सरककर उसके समीप चली आई थी—वही फॉरेस्ट रेंज के खुले अहाते में उस दिन उसका भाषण समाप्त होने पर। कितना लम्बा और संगीतमय क़हक़हा था। काश, प्रकाश होता और मैं उस लड़की को देख सकता!

१५

"तुम नहीं चलोगे, सोम ?"

"मैं तो आज अपने अधूरे चित्र का काम भुगताना चाहता हूँ।"

"अच्छा, तुम चित्र बनाओ," आनन्द ने अनिच्छा से कहा, "हम चलते हैं।"

वह अकेला ही चल पड़ा। रविवार का दिन था। कला-भारती में आज छुट्टी थी। उसने सोचा था कि आज करंजिया के बारह-के-बारह टोलों को समीप से देखे।

प्रकृति के सौंदर्य के लिए उसके हृदय में बहुत स्थान था, पर जीवन का निकटतम सम्पर्क भी उसे कुछ कम प्रिय न था। उसकी कल्पना में अनेक व्यक्तियों के चेहरे यों उभरते जैसे फूल फिर से खिल उठें। इन्हीं चेहरों में रेशमा का चेहरा भी तो था। एक क्षण के लिए उसे यों लगा जैसे रेशमा ऊँची आवाज़ से कह रही है—मैं भी आ रही हूँ; इकट्ठे ही घूमने चलेंगे! ··· लेकिन यहाँ कहाँ थी रेशमा? उससे भेंट हुए तो कई वर्ष बीत गये।

अमृतसर के समीपवर्ती उस गाँव में, जहाँ उसकी ननिहाल थी, वह रेशमा से मिलने के लिए ही तो लाहौर से चलकर यों जा पहुँचता था मानो यह भी उसकी शिक्षा का एक आवश्यक अंग था।

करंजिया के एक-एक टोले का दृश्य यों खुलता गया जैसे वह किसी पुस्तक का पृष्ठ हो। बाजार टोला में उसकी भेंट एक खोंचेवाले से हुई; जैसे बचपन के दिन सजीव हो उठे, झट उसकी कल्पना में वह दृश्य उभरा जिसमें एक बालक खोंचे वाले की ओर हाथ बढ़ा रहा था। उसे याद आया कि किस प्रकार एक बार उसने डोकरी में अपने एक सहपाठी से आना उधार लेकर खोंचे वाले से सिन्धी हलवे का छोटा-सा टुकड़ा लेकर खाया था; पर करंजिया के बाजार टोला का यह खोंचे वाला तो आवाज़ दे रहा था—कचालू ले लो, कचालू! चटपटे मसाले वाले!

बाजार टोला में ब्रह्मचारी अचिन्तराम मिल गये और हँसकर बोले, "मेरा बस चले तो करंजिया के बाजार से इस चाट बेचने वाले को उठवा दूँ; लड़के-लड़कियों की आदत बिगाड़ने में सबसे बड़ा हाथ चाट वालों का ही होता है, आनन्द बाबू!"

"ठीक है, आचिन्तराम जी!" आनन्द ने तेज-तेज डग भरते हुए कहा।

"राम राम, राजाबाबू!" शराब के ठेकेदार लालाराम ने दुकान से निकलकर कहा, "हमारे योग्य सेवा!"

"कृपा बनी रहे, लालाराम जी!"

"गाँधी जी की खबर सुनाइए, आनन्द जी!"

"गाँधी जी जेल जाने की सोच रहे हैं!"

"हमें साथ चलने को कहेंगे तो हम भी हाज़र हैं!"

"पर यह शराब का ठेका कौन चलायेगा?"

"यह तो पेट का धन्धा है, आनन्द जी! देशभक्ति दूसरी चीज़ है। गाँधी जी की आज्ञा मानने से ही तो हमारी मुक्ति होने वाली है।"

"कैसी मुक्ति? अभी से संसार से छुट्टी लेने की सोच रहे हो,

लालाराम जी ?"

उधर से थानेदार अब्दुल मतीन आ निकला। उसने पूछा, "कला-भारती कैसी चल रही है, आनन्द जी ?"

"अभी तो नई संस्था है, अब्दुल मतीन साहब !"

"हम भी ख़िदमत के लिए हाज़िर हैं !"

"अजी आपकी नवाज़िश है, अब्दुल मतीन साहब ! इतनी मेहरबानी कीजिए कि हमारे ब्रह्मचारी अचिन्तराम को पकड़कर हवालात में मत भेज दीजिए !"

"ब्रह्मचारी जी ने हमारा क्या बिगाड़ा है, आनन्द जी ?"

"वे देशभक्त जो ठहरे ! और अंगरेज़ी सरकार देशभक्तों को पसन्द नहीं करती।"

"अजी, आनन्द साहब, आप भी किस ज़माने की बात कर रहे हैं ! देश का ख्याल तो हमें भी रहता है, भले ही हम थाने में मुलाज़मत करते हैं। गांधी जी की आवाज़ तो हम तक भी पहुँची है। ब्रह्मचारी जी की गिरफ्तारी की नौबत आयेगी तो उससे पहले हम इस्तीफ़ा दे चुके होंगे !"

"ख़ैर, यह नौबत तो आने की नहीं।" आनन्द हँसी की फुलझड़ी-सी छोड़ता हुआ एक तरफ़ को हो लिया, "आज छुट्टी है। सोचा ज़रा करंजिया के टोलों को समीप से देखा जाय !"

"तो मैं भी साथ चलूँ ?"

"चलिए।"

थानेदार सचमुच चल पड़ेगा, ऐसी आशा तो न थी। आनन्द को अपने ऊपर झुँझलाहट-सी हुई। अजब मुसीबत है। अब एक थानेदार की आँख से तो वह करंजिया को देखने से रहा। लेकिन अब्दुल मतीन था कि हर बात थानेदार की हैसियत से कर रहा था।

"गोंडों के बारे में आपकी क्या राय है ?" आनन्द ने पूछ लिया।

"अजी मैं तो इन लोगों को बहुत ही नामाकूल इन्सान समझता हूँ,"

थानेदार अब्दुल मतीन ने हँसकर कहा, "वह एक कहानी भी तो है।"

"कौनसी कहानी ?"

"कहते हैं देवताओं ने कुल दुनिया को दावत पर बुलाया। गोंड भी मौका पर मौजूद थे। कहीं से एक चूहा आ निकला। गोंड उस चूहे का पीछा करने लगे। चूहे का पीछा करते वे छोटी खाई तक जा पहुँचे।"

"छोटी खोई कहाँ है ?"

"इसी मंडला जिले का एक गाँव समझिए। हाँ तो जब गोंड चूहे को ठिकाने लगाकर पीछे लौटकर आये तो उन्होंने देखा कि देवताओं की दावत ख़त्म हो चुकी है। बस साहब, बचे-खुचे खाने को उठाकर गोंडों ने उसमें पानी मिला लिया और बोले : यह है 'पेज'—हमारा मनभाता भोजन। हाँ तो साहब, रात के बचे हुए भात में पानी मिलाकर रख छोड़ते हैं और अगले सवेरे यही पेज गोंडों के जलपान के काम आती है। अब आप ही बताइए यह भी कोई जलपानों में जलपान है। लाहौल वला कुव्वत !"

तीन-चार टोलों में थानेदार अब्दुल मतीन ने साथ दिया। फिर वे एक काम याद आने पर पीछे लौट गये तो आनन्द ने सुख का साँस लिया।

एक बार फिर मानो उसकी कल्पना के कला-भवन से आवाज़ आई—ज़रा रुकिए, मैं भी आ रही हूँ !

रेशमा का चित्र उसकी आँखों में घूम गया। वह सोचने लगा कि रेशमा में ऐसी क्या बात थी जो उसे सबसे ज़्यादा पसन्द थी; रेशमा बहुत बड़ी सुन्दरी तो न थी, लेकिन उसकी आवाज़ कितनी मोहनी थी, कितनी पतली; बोलती तो यों लगता कि बाँसुरी में से गुज़र कर आवाज़ ने गीत की लय सीख ली है।

सिगरेट सुलगाकर कश लगाते हुए आनन्द ने सोचा कि जैसे मोहें-जोदड़ो पीछे रह गया ऐसे ही ननिहाल भी पीछे रह गया; पर ननिहाल का ख़्याल दबाना सहज न था। माँ की याद भी तो बराबर आती और माँ बस उसकी कल्पना की खिड़की से हाथ बढ़ाकर एक ही बात कहती—पिता के

अधूरे काम को पूरा करना पुत्र का कर्तव्य है !···रेशमा की याद भी तो दबाये न दबती थी। उसकी नानी के घर के आँगन में लसूड़े का पेड़ था; बड़े-बड़े लसूड़े लगते थे। यह पेड़ वहाँ न होता तो शायद रेशमा से उसका परिचय भी न हुआ होता। गुड़िया से खेलने की उमर को तो वह उन दिनों बहुत पीछे छोड़ आई थी; पर साथ ही यह भी सत्य था कि वह स्वयं किसी गुड़िया से कम न थी—मलमल की पीली 'चुन्नी' पहनने वाली गुड़िया ! शुरू-शुरू में तो उसने रेशमा की पहेलियों में खूब रस लिया था : थड़े ते थड़ा, लाल कबूतर खड़ा ![1] इसका उत्तर था दीया। ऐनी कु कड़ी, ओहदे ढिड्ड विच्च लकीर ![2] इसका उत्तर था गेहूँ का दाना। ऐनी कु कुड़ी, लै पराँदा तुरी ![3] इसका उत्तर था सूई-धागा। ऐनी कु कुड़ी, ओहदे रता रता दन्द ![4] इसका उत्तर था दान्ती। ऐसी-ऐसी अनेक पहेलियाँ पूछा करती थी रेशमा; इनकी एक विशेषता थी लड़की की बार-बार चर्चा। वह जरा भी तो न लजाती, क्योंकि इतना तो वह भी समझती थी कि आनन्द उसी को मिलने के लिए अपने ननिहाल आता है। उसे याद आया कि उन दिनों उसने कभी सिगरेट को छूआ तक न था, कभी सोचा भी न था कि सिगरेट का धुँआ यों मुँह से छोड़ा करेगा; यह शौक तो कुलदीप ने लगाया। उस दिन मोहेंजोदड़ो के गैस्ट हाउस में कुलदीप के हाथ से सिगरेट लेकर उसने पहली बार इसे मुँह लगाया था; अब तो यह जीवन का पूरी तरह साथ देगा। पर क्या यह अच्छी चीज़ है ? वह चाहे तो इस बीमारी से छुट्टी भी पा सकता है। उसे लगा जैसे कोई कह रहा हो—तुम सिगरेट पियोगे तो मैं तुम्हारे पास नहीं आऊँगी !···तो क्या रेशमा अभी तक मुझे स्मरण करती है ? उस 'गुड़िया' के सिर पर मलमल की पीली

१. चबूतरे पर चबूतरा, उस पर खड़ा है लाल कबूतर।
२. इतनी-सी लड़की है, उसके पेट में है लकीर।
३. इतनी-सी लड़की है, चुटीला लेकर चल पड़ी।
४. इतनी-सी लड़की है, उसके ज़रा-ज़रा से हैं दाँत।

चुन्नी कितनी सुन्दर प्रतीत होती थी!

पीछे हटो, रेशमा!—जैसे रेशमा के ख्याल को मस्तिष्क से झटकते हुए उसने सोचा कि गोंड सौंदर्य भी तो अपनी जगह कुछ कम आकर्षक नहीं। पीछे रह गया मोहेंजोदड़ो, पीछे रह गया ननिहाल; यह तो करंजिया है।

एकाएक वह लम्बा संगीतमय क़हक़हा उसकी स्मृति को छू गया—फॉरेस्ट-रेंज-क्वार्टरों में उसके भाषण के अन्त में यह किसका क़हक़हा था जो हवा की लहरों पर उभरा; प्रकाश होता तो वह क़हक़हा लगाने वाली को जी भर कर देख लेता!

खेतों और घरों में उसने अनेक गोंड-लड़कियों को देखा और हर बार वह यही सोच कर रह गया कि इन्हीं लड़कियों में होगी वह लड़की, जिसने उस दिन लम्बा संगीतमय क़हक़हा लगाया था।

चलते-चलते वह नदिया टोला जा पहुँचा। अब मंडल का झोंपड़ा भी दूर न था। मंडल से मिले बिना तो जैसा वह नदिया टोला में आया जैसा न आया।

"आओ, बड़े राजा!" मंडल ने झोंपड़े के बरामदे से लपक कर आनन्द का अभिवादन किया।

आनन्द के हाथ में बम्बई से प्रकाशित होने वाली वह पत्रिका थी जिसमें उसका लेख प्रकाशित हुआ था।

"इन्हें पहचानते हो, मंडल काका?" आनन्द ने पत्रिका खोलकर चित्र दिखाते हुए कहा।

"कौन हैं?" मंडल ने उत्सुकता से पूछा।

"ये हैं भीमसेन!"

"भीमसेन तो सबसे अधिक बलवान है, राजा बाबू!" मंडल ने आनन्द के लिए बरामदे में चटाई डालते हुए कहा, "भीमसेन न होता तो गोंडों को महुए की शराब का भी पता न चलता।"

"वह कैसे, मंडल काका !"

"वह ऐसे बड़े राजा, कि एक बार भीमसेन भगवान् से मिलने गया। भीमसेन थककर चूर हो रहा था। बोला—भगवान्, मुझे कुछ खाने को दो। ख़ैर, यह कहानी तो फिर भी सुनाई जा सकती है। यह बताओ कि आप चाय तो लेंगे।"

"चाय का तो समय नहीं है यह।"

"फिर भी।"

"कुछ लेना ही है तो ले लूँगा।"

मंडल ने आवाज़ दी :

"रूपी !"

अगले ही क्षण एक लड़की दरवाज़े में से झाँकती नज़र आई; आनन्द ने उसे पहचान लिया।

"इन्हें प्रणाम करो, बेटा !" पिता ने पुत्री को समझाया। "चाय बनाकर लाओ, रूपी ! आनन्द बाबू पहली बार हमारे घर आये हैं !"

"बहुत अच्छा !" रूपी उन्हीं पैरों पीछे लौट गई।

"हाँ तो मैं कह रहा था," मंडल ने फिर से भीमसेन की कहानी का अंचल थाम कर कहा, "जब भीमसेन ने कहा कि वह भूखा है, भगवान् ने पच्चीस बोरे चावल दिया, बारह बोरे मसूर की दाल। अब इतने से तो इतने बड़े भीमसेन का पेट कैसे भरता ? भगवान् ने बारह बोरे चावल और दिया। भीमसेन उसे भी खा गया और बोला, 'पीने को तो कुछ नहीं दिया, काका !' भगवान् ने कहा, 'तुम शराब ढूँढ लाओ !' ढूँढते-ढूँढते भीमसेन महुए के वृक्ष के नीचे जा पहुँचा। वृक्ष खोखला था वर्षा का जल महुए के खोखले सुराख में फूलों में मिलकर कुछ-कुछ नशीला हो गया था; हरियल और कबूतर, तोते और काग और मैना—सभी पक्षी महुए के फूलों में मिलकर तैयार हुए नशीले पानी को झूम-झूम कर पी रहे हैं। भीमसेन भी

वृक्ष पर चढ़ गया; सुराख में हाथ डुबोकर उसने मुँह से लगाया तो उसने चिल्लाकर कहा, 'अरे अरे! यही तो शराब है।' कहते हैं उसने अन्दर से खोखली बारह बड़ी-बड़ी लौकी महुए की शराब से भर लीं और भगवान् के पास ले गया। भगवान् ने थोड़ी-सी शराब अपने सेवक काग को भी दी और भीमसेन के साथ बैठकर पीने लगा। भीमसेन तो नशे में इतना झूम उठा कि उठकर धरती की परिक्रमा करने लगा। अब यह कहानी तो इतनी-सी है, बड़े राजा!"

आनन्द ने आँखों-ही-आँखों में उस गोंड-लोक-कथा की प्रशंसा करते हुए कहा, "गोंड-जीवन में तो इस चीज का प्रमुख स्थान है न, मंडल काका! शिशु का जन्म होता है तो इसका प्रयोग करते हैं; सगाई होती है तो यही प्रस्ताव-चिह्न समझिए; विवाह हो चाहे मृत्यु—इसके बिना तो काम नहीं चलता। जब वर्षा आरम्भ होती है, काका, जब कोई भूत अपने घर में आता है, प्रत्येक फ़सल पर, प्रत्येक बलि चढ़ाते समय मृतक संस्कार पर, बल्कि साधारण अवसरों पर भी देवताओं के सम्मान में आप लोग इसे अवश्य चढ़ाते हैं, काका!"

"हाँ बड़े राजा, इसके बिना तो हम लोगों का काम नहीं चलता; न हमारा, न हमारे देवताओं का। इसीलिए महुआ पवित्र माना जाता है; इसे काटना मना है।"

रूपी चाय ले आई; काँसी की दो बड़ी-बड़ी कटोरियाँ, एक आनन्द के सामने ला रखी, एक अपने काका के सामने।

"अब चीनी के प्याले तो हम लोगों के झोंपड़े में नहीं हैं, राजाबाबू!" मंडल ने चुटकी ली।

रूपी दरवाज़े में खड़ी थी। उसके चीनी के प्यालों का नाम सुनकर क़हक़हा लगाया—लम्बा और संगीतमय क़हक़हा; आनन्द ने आश्चर्य और सौन्दर्यानुभूति की मिली-जुली दृष्टि से रूपी की ओर देखा।

उसे विश्वास हो गया कि उस रात फॉरेस्ट रेंज के अहाते में उसका

भाषण समाप्त होने पर रूपी ने ही क़हक़हा लगाया था।

"क्या सोच रहे हैं, मेहमान बाबू!"

"सोच रहा हूँ कि करंजिया वालों को भी खूब हँसना आता है!"

रूपी उसी तरह दरवाज़े में खड़ी रही; उसकी मुख-मुद्रा यों प्रतीत होती थी जैसे यह महुए की शराब की मटकी अभी छलक पड़ेगी।

"पहले तो रूपी बिटिया बड़ी गम्भीर थी, बड़े राजा!" मंडल ने हसकर कहा, "यह सब तो जबलपुर का प्रभाव है; जबलपुर से रूपी क़हक़हे लगाना भी सीख आई है।"

१६

"कहाँ चली, रूपी बिटिया !"

"कला-भारती तक जा रही हूँ, काका !"

"तो अपनी माँ को भी दिखा लाओ आनन्द बाबू की कला-भारती।"

"अच्छा, काका !"

मंडल ने आवाज़ दी, "अरे रूपी की माँ ! जाओ रूपी के साथ तुम भी देख आओ बड़े राजा की कला-भारती।"

माँ-बेटी झोंपड़े से निकली ही थीं कि उधर से झूलन आता मिल गया।

"कहाँ चलीं, काकी ?"

"यही जरा आनन्द बाबू की कला-भारती देखने जा रहे हैं।"

"मैं भी चलूँ, काकी !"

"हम अभी लौट कर आ जायँगे," रूपी ने पग बढ़ाते हुए कहा।

"हाँ, हाँ बेटा !" रूपी की माँ ने झूलन का मन रखते हुए पीछे पलट कर कहा, "तुम अपने काका के पास जाकर बैठो।"

झूलन रूपी का लामसेना था—उसका मँगेतर; पंचायत फैसला कर चुकी थी। गोंड-प्रथा के अनुसार यदि कोई युवक कन्या के पिता को दुलहन का मोल न चुका सकता तो उसे पंचायत की आज्ञा से लामसेना बनकर कन्या के पिता के घर में कुछ वर्षों के लिए स्वयं को गिरवी रख देना होता था। कन्या के पिता के घर में लामसेना का आदर कभी-कभी तो इतना अधिक होता था कि उसी की राय से ही सब कार्य होने लगते थे।

कला-भारती में पहुँचकर रूपी ने माँ को समझाते हुए कहा, "अम्मा, पादरियों ने यह मकान न बनवाया होता तो हमारे मेहमान बाबू को इतना सुख कहाँ मिलता।"

चुन्नू मियाँ ने आगे बढ़कर कहा, "आओ, बेटी! मैं राजा बाबू को बुलाता हूँ, तुम इधर बैठो।"

रूपी की आँखें मेज़ पर पड़ी एक सचित्र पत्रिका को देखकर उल्लास से चमकने लगीं। उसने वह पत्रिका उठा ली, पत्रिका खोलकर उसने वह पृष्ठ देखा जिस पर आनन्द का 'गोंड जीवन में भीमसेन का स्थान' शीर्षक सुन्दर लेख प्रकाशित हुआ था। उसने ध्यान से देखा कि भीमसेन के चित्र सोम बाबू की तूलिका द्वारा अंकित हैं।

उसने इस पत्रिका में छपा हुआ एक चित्र माँ को दिखाते हुए कहा, "देखो माँ, यह रहा हमारा भीमसेन! देखो किस तरह काँवर उठाये जा रहा है।"

माँ ने चित्र देखा और बोली, "जय भीमसेन!"

रूपी चुपचाप लेख पढ़ती रही; बीच-बीच में जैसे वह पुलकित होकर बाहर की ओर देखती। उसे प्रतिपल आनन्द की प्रतीक्षा थी।

इस लेख में आनन्द ने यह बताया था कि पाँच पाण्डवों में से किस प्रकार गोंड लोक-कथाओं में भीमसेन को अलग कर लिया गया था; सोम ने इस लेख के चित्र प्रस्तुत करते हुए अपनी तूलिका को लोक-कला के पथ पर चलाने का प्रयत्न किया था। मोटी-मोटी रेखाएँ; एकदम प्राणवान्!

काँवर उठाये चला जा रहा था भीमसेन, हू-ब-हू एक गोंड के समान। सृष्टि के आरम्भ में भगवान् सागर के बीच विराजमान थे; भगवान् ने अपने शरीर से मैल उतारकर एक काग बनाया, भगवान् की आज्ञा से यह काग सागर पर उड़ता रहा, उसने एक केकड़े का पता चलाया जिसने अपने पंजों में धरती का बीज छिपा रखा था; काग ने धरती का यह बीज केकड़े के पंजे से नोचकर भगवान् के सम्मुख ला रखा; भगवान् की आज्ञा से इसे सागर में बो दिया गया; शीघ्र ही धरती के दर्शन हुए, पर यह बड़ी लपलपी-सी थी, तनिक-सा भार आने से एक ओर को डोल जाती थी। भगवान् ने भीमसेन को बुलाया जो काँवर उठाये चला जा रहा था; भगवान् की आज्ञा से भीमसेन अपनी काँवर सहित धरती पर खड़ा हो गया और उस दिन से धरती का सन्तुलन ठीक हो गया। यह कथा आनन्द के लेख में विशेष रूप से उद्धृत की गई थी। उसने उस कथा का भी तो उल्लेख किया था जिसमें बताया गया था कि एक बार भीमसेन काँवर उठाये चला जा रहा था। काँवर के दोनों पलड़ों में जंगली फल थे। सहसा भीमसेन को खबर मिली कि एक समीपवर्ती गाँव में आग लग गई; वह काँवर को वहीं छोड़कर आग बुझाने दौड़ा। अब लोग करंजिया के समीप ही इस उपत्यका के बीच खड़ी दो पहाड़ियों की ओर संकेत करके कहते थे कि भीमसेन की काँवर के फलों से भरे दोनों पलड़ों ने ही इन पहाड़ियों का रूप धारण कर लिया था। सोम ने अपनी तूलिका से इस कहानी की कल्पना को भी सजीव करने का प्रयत्न किया था। इस लेख में भीमसेन से सम्बन्धित वह गाथा भी तो दी गई थी जिसमें कहा गया था—यह बहुत पहले की कथा है जब देवता धरती पर रहते थे। देवता चाहते थे कि बेनगंगा का विवाह हिरि नदी के साथ अवश्य हो। भीमसेन इसके पक्ष में न था। एक दिन भीमसेन क्रोध में आकर बड़ी-बड़ी पहाड़ियों को जड़ से उखेड़कर बेनगंगा में फेंकने लगा जिससे उसका पथ अवरुद्ध हो जाय। सवेरे से पहले-पहले उसे बेनगंगा को आगे बढ़ने से रोक देना चाहिए; देवताओं के साथ

उसने यही शर्त बदी थी। भोर समीप थी। भीमसेन दो पहाड़ियों को अपने डण्डे के दोनों सिरों पर काँवर के पलड़ों के समान बाँधकर चल पड़ा। लेकिन, इससे पूर्व कि वह इन पहाड़ियों को वेनगंगा में फेंककर उसका रास्ता एकदम रोक दे, भोर हो गई। भीमसेन ने सोचा कि इसमें अवश्य देवताओं की कोई शरारत है। क्रोध में आकर उसने पहाड़ियों को वहीं फेंक दिया और अपना डण्डा भी हवा में दे मारा। यह प्रसिद्ध था कि भीमसेन का डण्डा अभी तक हवा में उड़ रहा है। सोम ने इस लेख के लिए भीमसेन के डण्डा फेंकने का चित्र भी प्रस्तुत किया था। आनन्द ने अपने लेख के अन्तिम भाग में लिखा था—'भीमसेन, जो एक साधारण गोंड की तरह काँवर उठा कर चलता है, जनता की शक्ति का प्रतीक है—मानव की महान् परम्पराओं का मूर्तिमान रूप! मानव की उन शक्तियों का प्रतिनिधि जिनकी सहायता से मानव ने प्रकृति से लोहा लिया; देवताओं का मुकाबला करने का ख्याल भी उसे ही आया। भीमसेन तो आज भी गोंडों की भूमि पर घर-घर जन्म लेता है और जीवन-भर काँवर उठाकर चलता है। भीमसेन की कल्पना गोंड-संस्कृति में अद्वितीय स्थान रखती है।'

आनन्द ने दूर से रूपी को गरदन झुकाये कुछ पढ़ने में लीन देखा। पास आकर बोला, "क्या पढ़ रही हो, रूपी?"

"आपका ही तो लेख है!" रूपी ने कुरसी से उठकर कहा।

"नमस्ते, काकी!" आनन्द ने माँ की ओर देखते हुए कहा।

"जीते रहो, बेटा!"

"चलो, काकी, अब आप लोगों को अपनी कला-भारती दिखाऊँ।"

१७

कला-भारती का कार्य चल निकला था। ब्रह्मचारी जी शुरू जून से ही छुट्टी पर थे। वे बीस दिन के लिए वर्धा गये थे, पर डेढ़ महीने से उनका कुछ पता न था; उनके सम्बन्ध में करंजिया में तरह-तरह की अफवाहें फैल रही थीं।

सोम सोचता था कि शायद अब ब्रह्मचारी जी लौटकर न आयें, क्योंकि वे वेतन पर काम करने वाले अध्यापक तो थे नहीं; पर आनन्द का विचार था कि उन्हें देर भले ही हो जाय, वे आयेंगे अवश्य। यहाँ से वर्धा जाते समय ब्रह्मचारी जी ने वचन दिया था कि वे सेवाग्राम जाकर गांधीजी से मिलेंगे और उन्हें कला-भारती के सम्बन्ध में बतायेंगे। ब्रह्मचारी जी ने कहा था कि वे बम्बई भी जायँगे और बम्बई-निवासियों के सम्मुख कला-भारती की चर्चा अवश्य करेंगे; फिर उन्होंने वचन दिया था कि बम्बई से लौटते हुए नागपुर में उतरकर सड़क-विभाग के उच्च अधिकारियों से मिलेंगे और उन पर यह जोर डालेंगे कि पेंड्रा रोड से डिंडौरी तक पक्की सड़क बनाने के लिए रुपया नहीं दिया जा सकता तो अगले वर्ष के बजट में करंजिया से डिंडौरी

तक अवश्य पक्की सड़क बनाने के लिए रुपया दिया जाय जिससे जबलपुर से करंजिया तक लारी चलने लगे और करंजिया का सम्बन्ध बाहर वालों के साथ पूरी तरह जुड़ जाय।

सोलह अगस्त भी गुज़र गया, ब्रह्मचारी जी का कुछ पता न था। एक दिन बढ़ईगिरी के अध्यापक रामरतन ने आनन्द के पास आकर कहा, "देखिये आनन्द जी, सैयद नूरअली कह रहे थे कि ब्रह्मचारी जी बम्बई में पकड़े गये।"

"यह तो असम्भव है, रामरतन जी!"

उधर सरदारीलाल पहले तो दो-एक दिन रामरतन से सहमत न हुआ; फिर उसने इस खबर पर विश्वास कर लिया कि ब्रह्मचारी जी बम्बई में पकड़े गये। करंजिया के बाज़ार में पहुँचने तक इस खबर में और भी नमक-मिर्च लग गया।

एक दिन सायंकाल के समय लालाराम की दुकान के सामने सोम और आनन्द एक गोष्ठी में सम्मिलित हुए तो लालाराम ने उपस्थित मित्रों को चकित करते हुए कहा, "अजी कल की बात है, अमरकंटक के पुजारी ब्रह्मानन्द, जो डिंडौरी जा रहे थे, मुझे देखकर अपने घोड़े से उतर पड़े। बोले, 'ब्रह्मचारी जी के सम्बन्ध में कुछ सुना, लालारामजी?' मैंने कहा, 'हमने तो कुछ नहीं सुना, ब्रह्मानन्द जी!' वे बोले, 'अजी क्या बतायें, परसों बम्बई के सेठ दिलीपचन्द मेघाणी अमरकंटक में नर्मदा मैया के दर्शन करने आये हुए थे। हमने कहा—सेठजी, बम्बई में करंजिया-निवासी ब्रह्मचारी अचिन्तराम को तो देखा होगा। बोले—वही ब्रह्मचारी जी जिनके लम्बे सफेद बाल हैं और लम्बी सफेद दाढ़ी? अजी लालाराम जी, वे तो पकड़ लिये गये बम्बई में। अजी, यह हमारी आँखों देखी बात है। 'हिन्दुस्तान छोड़ो' आन्दोलन के सिलसिले में जब आठ अगस्त की रात को बम्बई के ग्वालिया टैंक वाले कांग्रेस पंडाल में गांधी जी की का भाषण हो रहा था तो अँग्रेज वहाँ आ निकला। वे ब्रह्मचारी जी मेरे समीप ही बैठे थे; उन्होंने उठकर अँग्रेज से कहा—हिन्दुस्तान को छोड़कर चले जाओ! अँग्रेज

बोला—तुम कौन हो हमको इधर से जाने को बोलने वाला? ब्रह्मचारी जी बोले—मैं हूँ करंजिया का ब्रह्मचारी, अमरकंटक की नर्मदा मैया का भक्त। अँग्रेज बोला—हम करंजिया को नहीं जानना माँगटा। ब्रह्मचारी जी बोले—अरे अँग्रेज, होश की दवा कर! अरे हमारे करंजिया में तो आनन्दजी भी वही बात कह रहे हैं जो यहाँ गांधी जी कह रहे हैं। अँग्रेज यह सुनकर आग-बबूला हो गया। बस लालाराम जी, अँग्रेज ने हमारे देखते-देखते ब्रह्मचारी जी को हथकड़ी पहनाकर हवालात में भिजवा दिया।'...हाँ तो ब्रह्मानन्द जी तो यह समाचार सुनाकर घोड़े पर चढ़कर चले गये। और मैं खुश हुआ कि आखिर हमारे ब्रह्मचारी जी की देशभक्ति रंग लाई।"

लालाराम ने विश्वासपूर्ण दृष्टि से श्रोताओं की ओर देखा।

"बेचारे ब्रह्मचारी जी जेल की दवा खा रहे होंगे!" कम्पाउंडर सैयद नूर अली ने कहा, "करंजिया का मामला होता तो अब्दुल मतीन साहब देख लेते; अब यह ठहरा बम्बई का मामला!"

"मैं बम्बई के थानेदार को लिखकर पूछता हूँ!" अब्दुल मतीन ने जोर देकर कहा, "हम ब्रह्मचारी जी को छुड़ा लायेंगे।"

"आजकल अँग्रेज पहले से सख्त हो गया है! शायद ब्रह्मचारी जी को जुर्माना भी हुआ हो।" हैडमास्टर रामबिहारी लाल ने उदास होकर कहा, "बेचारे ब्रह्मचारी जी की जमीन न नीलाम हो जाय, क्योंकि अँग्रेज की आँखों में तो किसी की सम्पत्ति छिपी हुई नहीं है।"

"माना कि देशभक्त होना कोई जुर्म नहीं है," थानेदार अब्दुल-मतीन ने वकालत की, "लेकिन तोड़-फोड़ की छुट्टी तो अँग्रेज भी कैसे दे सकता है! फिर अब यह तो जंग का जमाना है। गांधी जी की तो अँग्रेज भी बहुत इज़्ज़त करता है। जेल में उन्हें हर तरह का आराम पहुँचाया जाता है। लेकिन तार काटने, पटरियाँ उखाड़ने और पुल तोड़ने की छुट्टी देकर अँग्रेज अपने पैरों पर कुल्हाड़ा तो नहीं चला सकता।"

"गांधी जी को पकड़कर अँग्रेज ने अच्छा नहीं किया," चुन्नू मियाँ ने

छज्जेदार दाढ़ी पर हाथ फेरते हुए कहा, "और हमारे ब्रह्मचारी जी तो बहुत ही मासूम इन्सान हैं।"

"शायद ब्रह्मचारी जी माफी माँगकर चले आयें।" सैयद नूर अली ने बात का रुख मोड़ना चाहा।

"माफ़ी तो हर्गिज नहीं माँगेंगे ब्रह्मचारी जी!" अब्दुल मतीन ने बढ़ावा दिया, "ब्रह्मचारी जी की खोपड़ी कुछ कम सख्त नहीं है।"

"गांधी जी जैसा देशभक्त तो सौ साल बाद पैदा होता है," लालाराम ने अपनी ही बात पर जोर दिया, "हमारे ब्रह्मचारी जी भी तो गांधी जी के सेवक हैं उन्होंने इस गोंड-भूमि की लाज रख ली!"

"शहीदों का खून रंग लाता है।" चुन्नू मियाँ ने मन्त्रमुग्ध-सा होकर कहा।

"पुराने वक्तों की सरकार होती तो वाकई गांधी जी को ज़िन्दा न छोड़ती!" अब्दुल मतीन ने अँग्रेज की वकालत की, "अँग्रेज तो फिर भी नरमी बरतता है! खैर छोड़िए, सवाल तो यह है कि ब्रह्मचारी जी की कैसे मदद की जाय। शायद अँग्रेज ब्रह्मचारी जी को मासूम पाकर छोड़ देगा।"

"यह काम तो आप ही कर सकते हैं, थानेदार साहब!" लालाराम ने चुटकी ली, "आख़िर आप भी तो उसी मशीनरी के पुर्जे हैं जिसने हमारे ब्रह्मचारी जी को पकड़ा।"

"न जाने गांधी जी को यह क्या मजाक सूझा," सैयद नूर अली ने हँसकर कहा, "अब कोई पूछे कि अँग्रेज को यह कहने से कि हिन्दुस्तान को छोड़ दो, वह कैसे हिन्दुस्तान को छोड़कर चला जायगा?"

आनन्द अब तक ख़ामोश था। उसने जेब से चिट्ठी निकालकर लालाराम के सामने रखते हुए कहा, "ज़रा यह चिट्ठी तो पढ़कर सुनाइये सब मित्रों को, लालारामजी!"

यह ब्रह्मचारी जी की चिट्ठी थी। उस पर बारह अगस्त की तारीख लिखी थी।

१८

मार्ग जल से भर गये। पेंड्रा रोड से डिंडौरी जाने वाली सड़क पर कमर तक धँसे बिना कहीं बाहर जाना सम्भव न था। कीचड़ से बचने का एक ही उपाय था घोड़े की सवारी; अड़ियल घोड़े बुरी तरह दुलत्तियाँ झाड़ते तथा कीचड़ में होली खेलते। कला-भारती के विद्यार्थियों की संख्या वर्षा के कारण कम होती गई।

कला-भारती में आने वालों के चेहरों पर शिक्षा के प्रति अनुराग झलक उठता। इसका श्रेय कला-भारती के स्नेहपूर्ण वातावरण को था। विद्यार्थियों तथा अध्यापकों के बीच प्रतिदिन स्नेह-भावना बढ़ती रही।

कुछ विद्यार्थी ऐसे भी थे जो चाहते थे कि उनके लिए कला-भारती में ही रहने का प्रबन्ध किया जाय। यदि ये विद्यार्थी दूर के गाँवों के होते तो शायद उनके लिए यह व्यवस्था आवश्यक हो जाती, पर बाहर के गाँवों से आने वाले विद्यार्थियों ने तो वर्षा आरम्भ होने से पहले ही आना छोड़ दिया था।

"करंजिया की काली मिट्टी झट दलदल में बदलने के लिए तैयार

रहती है, सोम !" आनन्द झुँझलाकर कहता ।

"पर यह काली मिट्टी कितनी उपजाऊ है, आनन्द !" सोम काली मिट्टी का पक्ष लेना आवश्यक समझता ।

"पक्की सड़क का होना इसलिए और भी जरूरी है सोम, कि कच्ची सड़क पर दलदल हो जाती है ।"

"इससे भी कहाँ तक बात बनेगी ?"

"क्यों ?"

"घरों के बीच के रास्ते तो पक्के बनने से रहे; और खेतों के बीच की पगडंडियों पर भी सीमेंट का फर्श कौन लगाने आयेगा, आनन्द ?"

इस पर ज़ोर का क़हक़हा पड़ता; कला-भारती में आने वाले प्रत्येक विद्यार्थी के प्रति आनन्द और सोम का मन गर्व से भर जाता । विद्यालय तक पहुँचना एक साधना से कम न था । सड़क का यह हाल था कि यहाँ भी उतनी ही दलदल थी जितनी खेतों में । जो विद्यार्थी इस दलदल की परवाह न करते हुए विद्यालय में पहुँचते, उनके पैर धुलाने के लिए कुएँ से पानी मँगवाकर दो-तीन टब पानी से भरे जाते और चुन्नू मियाँ उनके हाथ-पैर धुलाने में बहुत दिलचस्पी लेता था ।

सोम प्रसन्न था, क्योंकि कला-भारती के विद्यार्थी चित्र-कला में बहुत रस ले रहे थे । उसने प्रत्येक विद्यार्थी को खुली छुट्टी दे रखी थी; काग़ज पर हर कोई वही चीज़ उतारता जो सचमुच उसके हृदय को छू जाती । बालकों के चित्रों में सोम को एक नया क्षितिज उभरता नजर आता । प्रत्येक लड़की जंगल का चित्र बनाने की शौकीन थी; जंगल का चित्र अंकित करने के लिए एक ही वृक्ष से काम चला लिया जाता । कभी तो वृक्ष की एक ही टहनी से जंगल की कल्पना प्रस्तुत की जाती । पक्षियों, पशुओं और जंगल के हिंसक जन्तुओं के चित्र बनाना भी प्रत्येक लड़की को प्रिय था । लड़के जो चित्र अंकित करते, उनमें फॉरेस्ट रेंजर, थानेदार, लाल पगड़ी, कम्पाउंडर, शराब का ठेकेदार और लोअर प्राइमरी स्कूल का हैडमास्टर—ये सभी आ

जाते; हर किसी का चेहरा उसके काम-धन्धे तथा स्वभाव को सामने रखते हुए अंकित किया जाता; और लड़के अपने चित्रों में लड़की को अवश्य प्रस्तुत करते और यह लड़की बड़ी नटखट होती।

"गोंड विद्यार्थियों के चित्रों के सम्बन्ध में तुम्हारा क्या विचार है आनन्द?" एक दिन सोम ने आनन्द को अपनी कक्षा के कुछ चित्र दिखाते हुए पूछा।

"ये तो बहुत ही अच्छे हैं, सोम!"

आनन्द की आँखें गोंड विद्यार्थियों की ओर उठ गईं, जो अपने-अपने चित्र पर यों झुके बैठे थे, जैसे वे ही भावी युग के चित्रकार हों।

"इन चित्रों की जड़ें कहाँ धँस रही हैं?" सोम ने आनन्द की आँखों में झाँकते हुए कहा।

"करंजिया की मिट्टी में!"

"कुछ लोगों को तो ये चित्र पसन्द नहीं आते।"

"लेकिन मुझे तो बड़े-बड़े कलाकारों की कला भी बच्चों की कला के सामने नाक रगड़ती नज़र आती है।"

"मैं भी सोचता हूँ कि अब तक जो-कुछ सीखा है उसमें मेरा अपनापन कहीं नहीं उभरा। अब तो मैं अपनी कला को इसी पथ पर चलाने की सोच रहा हूँ।"

"जब ये चित्र बाहर जायँगे, बाहर वालों को पता चलेगा कि आदिवासी भी इन्सान हैं। और वे अच्छी तरह महसूस करेंगे कि आदिवासियों के बारे में उन्हें ज्यादा-से-ज्यादा पता चले। क्योंकि बन्द पोखर का जल तो सड़ जाता है; पुराना पानी निकलता रहे, नया पानी आता रहे।"

सोम ने आनन्द की ओर गर्वपूर्ण दृष्टि से देखा; फिर उसकी दृष्टि लड़के-लड़कियों की ओर उठ गई जिनके हाथों में तूलिकाएँ रंगों से मिलने जा रही थीं। वह मन्त्रमुग्ध-सा हो उठा और आनन्द के कन्धे पर हाथ रखकर बोला:

"कलाकार के लिए सबसे बड़ी चीज़ है सचाई। मैं तो गोंड बालकों द्वारा अंकित इन चित्रों पर मुग्ध हो उठता हूँ। यों लगता है कि ये चित्र इन लड़के-लड़कियों ने नहीं बनाये, करंजिया की काली मिट्टी ने अपने हाथों में तूलिका पकड़कर ये चित्र अंकित किये हैं। एक-एक रेखा कितनी सजीव है; एक-एक रंग जैसे हमें कुछ बताने जा रहा हो; इन चित्रों के रंग झट-से हमारे साथ मित्रता गाँठ लेते हैं: मैं कहता हूँ यही वह स्थल है जहाँ बच्चों की चित्रकला महान्-से-महान् कला के सम्मुख खड़े होने का साहस करती है।"

१६

रूपी आई तो सोम ने उसे दीवान पर बैठने का संकेत किया। मंडल सोम की बग़ल में आ बैठा। दीवान पर रूपी यों बैठी थी जैसे गोंडों की कोई परम्परा मूर्तिमान् हो उठी हो।

सोम को वह बात याद आ गई जो आनन्द ने अगले ही दिन कही थी: 'गोंडों में आज एक रूपी जन्म लेती है तो कल कोई फुलमत्त रूपी से भी पहले की किसी रूपी का चित्र उभारती है; यों प्रत्येक पीढ़ी में ये लोग पुरानी पीढ़ियों की स्मृति ताजा करते रहते हैं!' आनन्द की विचारधारा उसकी कल्पना को गुदगुदाती रही।

"चेहरा उधर को घुमाओ।" सोम ने अपनी जगह पर बैठे-बैठे कहा।

रूपी ने चेहरा घुमाया; सोम को उसका 'प्रोफील' बहुत सुन्दर प्रतीत हुआ। पैलट पर रंग मिलाते हुए सोम ने ध्यान से रूपी की ओर देखा और कहा, "नहीं रूपी, यों नहीं।"

रूपी फिर घूम गई। उसके जूड़े पर लाल फूल मुस्करा रहा था।

"खाली जूड़े का चित्र बनाओगे?" मंडल ने हँसकर पूछा।

"देखते जाओ, मंडल काका।"

आज कला-भारती में छुट्टी थी; आनन्द और चुन्नू मियाँ कल शाम से ही अमरकंटक चले गये थे।

प्रभातकालीन सूर्य का प्रकाश सोम के कमरे में गहरे नीले पर्दों से छन-कर आ रहा था। सामने दीवार पर सोम का एक चित्र लगा हुआ था जिसमें करमा नृत्य की एक झाँकी अंकित की गई थी। इसी चित्र के सम्बन्ध में बम्बई के एक आर्ट मैगजीन के सम्पादक ने लिखा था—'मानव का गौरव इस चित्र पर गर्व कर सकता है; करमा नृत्य का यह चित्र रेखाओं के वेग और प्रवाह के साथ जीवन की एक नई भाषा प्रस्तुत करता है...' सोम की दृष्टि एक बार उस चित्र की ओर घूम गई। उस चित्र में रूपी भी थी; इसी चित्र को देखकर तो रूपी ने सोम से अपना बड़ा चित्र बनाने को कहा था।

"चेहरा इधर को घुमाओ, रूपी!" सोम ने चित्रपट को ठीक करते हुए कहा।

रूपी आज बहुत बन-ठनकर आई थी, जैसे कमल की सुगन्धि ने पंखड़ियों से निकलकर एक युवती का रूप धारण कर लिया हो। सोम ने सोचा कि इस मूर्ति को ढालने के लिए प्रकृति ने अष्ट धातुओं को बड़ी बारीकी से मिलाया होगा। इस श्यामवर्ण युवती के मुख पर एक स्वर्णिम आभा झलक उठती, जो इस बात की सूचक थी कि अष्ट धातुओं में स्वर्ण की मात्रा बहुत कम न होगी।

खरगोश की खाल के टुकड़े जोड़कर अंगिया बनाई गई थी, जिस पर गिलहरी की खाल की गोट लगी थी; पीली धारियों वाली मलगजी साड़ी पहने यह गोंड युवती यों बैठी थी मानो छुट्टी मिलते ही फुर से उड़ जायगी, जैसे कमंडल नदी के जल से मुरगाबी उड़ जाती थी।

सोम की तूलिका जल्दी-जल्दी चल रही थी; मंडल का ध्यान आक-र्षित करते हुए उसने कहा, "कोई रंग घोड़े के समान दुलकी चलता हुआ

आगे बढ़ता है तो कोई रंग पोइया चलता है।"

"आपके रंग कौन-सी चाल चल रहे हैं?" रूपी ने चुटकी ली।

"यह तुम अभी देख लोगी, रूपी!" सोम ने पैलट पर रंग समेटते हुए कहा, "बस यह चित्र समाप्त हो ले, मेरे रंगों की चाल तुम्हारे सामने आ जायगी।"

रूपी मुस्कराई। "जबलपुर में हमारी एक अध्यापिका कहा करती थी कि चित्र बनाने में सारा काम आँख का है।"

"आँख न हो तो कोई काम ही न हो," मंडल ने विश्वासपूर्वक कहा।

"आँख की शक्ति तो बहुत बड़ी शक्ति है, मंडल काका!" सोम ने तूलिका चलाते हुए कहा, "हिसाब लगाने वालों ने हिसाब लगाकर बताया है कि इन्सान की सौ में छियासी हिस्से शक्ति तो आँख के द्वारा बाहर निकल जाती है।"

"बाहर निकल जाती है या अन्दर आती है, छोटे राजा?"

"अरे सुनो तो, मंडल काका, कान के द्वारा बाक़ी सोलह हिस्सों में से चौदह हिस्से शक्ति बाहर निकल जाती है।"

"तो अन्धे और बहरे अपनी शक्ति को बचाकर रखते हैं, छोटे राजा?"

"नहीं काका, बस समझा करो।"

"क्या समझा रहे हो मंडल काका को?" आनन्द ने भीतर आकर कहा, हम भी तो सुनें।"

"तो देख आये अमरकटंक?"

"तुम चलते सोम बाबू, तो मज़ा रहता।" चुन्नू मियाँ ने पीछे से आकर कहा, "मुझे तो हर बार अमरकटंक नया मालूम होता है।"

"आनन्द ने मन्त्रमुग्ध-सा होकर रूपी का चित्र देखा और फिर उछल कर कहा, "रूपी, आओ, तुम भी तो देखो अपना चित्र।"

"अभी रुको, रूपी!" सोम ने कहा, "जूड़े के फूल पर तो अभी रंग

लगाना बाकी है।"

रूपी थोड़ा झेंप-सी गई।

जूड़े के फूल का रंग उभारते हुए सोम की तूलिका यों चल रही थी जैसे राजहंस पानी की लहरों पर तैरता है; सोम कहना चाहता था कि यह क्षण शुभ है, समय की असीम जलधारा में एक क्षण एक लहर के बराबर भी तो न था, इसे तो अधिक-से-अधिक एक जलबिन्दु ही कहा जा सकता था। उसकी तूलिका की नोक पर लाल रंग यों थिरक रहा था जैसे करमा नाचने वाले नृत्यवेला का आह्वान सुनते ही थिरक उठते हैं, यह रंग किसी रागिनी का अनुसरण कर रहा था, जैसे यह भी किसी 'आरकेस्ट्रा' का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्वर हो।

सोम की तूलिका रुक गई।

"रूपी, देख लो तुम भी।" सोम ने अपनी जगह से उठते हुए कहा।

रूपी उठकर चित्र के सामने खड़ी हो गई।

"कैसा है यह चित्र?" आनन्द ने पूछा।

"बहुत बुरा तो नहीं।"

"ठीक-ठीक बताओ, रूपी?" आनन्द ने हँसकर कहा, "आखिर तुम्हें इस चित्र में क्या दोष नज़र आया?"

"दोष तो कोई नहीं," रूपी ने गम्भीर होकर कहा, "यह तो ऐसे ही है जैसे किसी शहरी लड़की ने गोंड वस्त्र पहनकर चित्र बनवाया हो!"

यह सुनते ही आनन्द और सोम के मन में रंजना भाभी का वह फोटो घूम गया जो उसने गोंड वेष में खिंचवाया था।

सोम मन मसोस कर रह गया।

सोम ने निराशा से अपनी तूलिका की ओर देखते हुए कहा:

"यदि मैं मूर्तिकार होता तो नदिया टोला में तुम्हारे घर के समीप उस नीली चट्टान को काट-काट कर तुम्हारी मूर्ति खड़ी कर देता, रूपी!"

हे महान् उषा ! पूर्व ऋषियों ने भले ही तुम्हारा आह्वान सहायता और सुरक्षा के लिए किया हो, अब हमारी प्रार्थना पर ध्यान देकर हमें वैभव और दिव्य प्रकाश दो।

इस समय जब कि तुमने भानु के द्वारा स्वर्ग के द्वार खोल दिये हैं, हे उषा, हमें सुन्दर, निर्विघ्न गृह प्रदान करो, विपुल धान्य और गोधन प्रदान करो।

हम पर विपुल विविध रूपों वाला वैभव बरसाओ, धान्य और सर्वविजयी ऐश्वर्य बरसाओ; ओ उदार उषा ! हमें दक्षिणा दो।

हे उषा ! अपने शुभ अश्वों के साथ द्युलोक से नीचे उतरो; तुम्हारे लाल गले वाले अश्व सोम-यज्ञ करने वालों के घर तक ले आयें।

हे स्वर्ग की पुत्री उषा ! सुगठित सुसज्जित रथ पर चढ़कर आज उस जन की सहायता के लिए आओ जो तुम्हें अपनी अंजलि चढ़ा रहा है।

हे गौरवर्ण उषा ! पक्षी, द्विपद, चतुष्पद सब तुम्हारे ही समय-संकेत पर स्वर्ग के छोरों से चल पड़ते हैं। हे उषा ! वस्तुतः तुम विश्व का कोना-कोना उज्ज्वल बना देती हो; हे उषा ! वैभव-आकांक्षी कण्व प्रार्थना द्वारा तुम्हारा आवाहन करते हैं।

आनन्द ने वैदिक काव्य के इस अनुवाद का पाठ इतनी सुन्दरता से किया कि सोम और रूपी मन्त्रमुग्ध हुए बिना न रह सके।

"अनुवाद में मूल कविता का-सा संगीत और लालित्य तो नहीं हो सकता," आनन्द ने वैदिक काव्य की पुष्टि करते हुए कहा, "यहाँ मुझे यह स्पष्ट कर देना होगा कि जब मैं कहता कि हम मोहेंजोदड़ो जैसे गड़े मुर्दे न उखेड़ते रहें और जीवन की ओर ध्यान दें, वहाँ मैं यह कहने की धृष्टता नहीं कर सकता कि पुरातन काव्य से भी हम अपना सम्बन्ध तोड़ लें।"

"आप कहें भी तो हम मानते कब हैं ?" रूपी ने चुटकी ली।

"काव्य हो चाहे कला," सोम ने अपना दृष्टिकोण प्रस्तुत किया,

कविता नई हो चाहे पुरानी, यदि वह प्राणवान है तो उसकी प्रेरणा हमारे लिए कभी समाप्त नहीं हो सकती।"

"हमारी एक मुसीबत और भी तो है," आनन्द ने अपनी ही बात पर जोर दिया, "अब जहाँ तक वैदिक काव्य का सम्बन्ध है, हमारी पीढ़ी के लिए हमारी भाषाओं में अभी इसके वैसे अनुवाद प्रस्तुत नहीं किये गये जो हमारी समझ में आ सकें। मैंने वेद के ऐसे भाष्य भी देखे हैं जिनमें मूल मन्त्र के अनुवाद और व्याख्या को इस प्रकार मिलाकर और लम्बा करते-करते इतना गड़बड़ा दिया जाता है कि पाठक के सम्मुख मूल मन्त्र का वास्तविक छवि-चित्रण नहीं आ पाता। इस दिशा में कुछ यूरोपीय विद्वानों का परिश्रम अभिनन्दनीय है। अब उषा-काव्य के मेरे इस अनुवाद को ही लीजिए मैंने इसे बंबई के शिक्षा-विभाग द्वारा सन् १६३८ में प्रकाशित पीटर पीटरसन के 'सेकंड सिलेक्शन आफ् हिमज़् फ्रॉम दि ऋग्वेद'[१] की सहायता से तैयार किया; भला हो उस साहित्यानुरागी मित्र का जिन्होंने मेरे लिए इस अनुवाद का मार्ग खोज निकाला, नहीं तो संस्कृत के एक पुरानी शैली के विद्वान् ने तो इन मन्त्रों का हिन्दी अनुवाद तैयार करते हुए मुझे मूल भाषा के शब्दों के तीन-तीन चार-चार अर्थ बताकर कुछ इतना उलझा दिया था कि मुझे भय है कि वैदिक उषा-काव्य का सौंदर्य मेरी आंखों से ओझल रहता।"

"और अब इस अनुवाद के लिए हम आपके ऋणी हैं।" रूपी ने आनन्द का सौजन्य स्वीकार किया।

"एक विद्वान् ने तो यहाँ तक कहा है," आनन्द ने अपनी स्मृति पर जोर डालते हुए कहा, "कदाचित् यह एज़रा पौंड का विचार है, कि हर पचास वर्ष बाद हमें पुरातन विश्व काव्य के नये अनुवाद की आवश्यकता पड़ती है, क्योंकि इस बीच में भाषा का रूप बदल जाता है; जब तक अनुवाद की भाषा हमारे युग के अनुरूप न हो; इसकी भाव-छवि

१ ऋग्वेद के मन्त्रों का द्वितीय संकलन।

हमारे लिए प्रानवान नहीं हो सकती !"

"क्या यहाँ के किसी गीत में उषा की छवि का उल्लेख आया है, रूपी ?" सोम ने फिर से गरम चाय आने पर उत्सुकता से कहा।

"मुझे तो ऐसा कोई गीत याद नहीं।" रूपी ने विनम्रता से कहा।

"पूछताछ करने से अवश्य मिलेगा कोई ऐसा गीत।" सोम ने ज़ोर देकर कहा।

फिर झूलन आ गया और बोला, "चलोगी, रूपी ? बहुत देर हो गई। अम्मा नाराज़ होंगी।"

"चलो, बाबा !" रूपी उठकर आनन्द और सोम से आँखों-ही-आँखों में क्षमा-याचना करते हुए पूर्वी द्वार से निकल कर झूलन के आगे-आगे चलने लगी।

आनन्द को रेशमा की स्मृति आ गई, जिसके मुख से उसने सर्वप्रथम अपनी नानी के गाँव में वह गीत सुना था—'रूप कुआरी दा, दिन चढ़दे दी लाली !' और फिर उसे ख्याल आया कि उषा तो नित-नूतन है, उषा तो कभी पुरानी नहीं होती, उषा तो सदैव प्रगति का सन्देश लाती है; वैदिक-कवियों ने जिस उषा को देखा था उस उषा की छवि आज के मानव के सम्मुख भी दबती नहीं; एक उषा के पीछे शत्-शत्, सहस्र-सहस्र उषाओं की छवि अंकित रहती है—जैसे रेशमा की छवि पर अब रूपी की छवि उभर रही है !

२१

ईश्वर मुझसे पूछेगा—
जब दुनिया में
चौखूँटों में
भड़क रही थी आग
इन्कलाब की ज्वालाएँ तेज़ी से भभक उठी थीं
जब हिंसा का राज हो गया
क्यों न तुमने पाठ किया उस महामन्त्र का, शान्ति-मन्त्र का
क्यों न किया उजाला अँधियारे में ?
जब असत्य की लहरें फैल रही थीं
क्यों न लिया सत्य का नाम ?
दूर-दूर के मित्रों का विश्वास
मैंने आज खो दिया
तो भी उनकी मित्रता औ' प्रेम की खातिर
मैं अपने भीतर की यह आवाज़ दबाकर

कैसे रख सकता हूँ ?
भीतर की आवाज़
मुझसे बार-बार कहती है—
तुझे अकेले बिना सहारे डटकर रहना पड़े अगर
तो भी दुनिया के आगे आज
डटकर खड़ा रहे तो है तेरा छुटकारा
पुत्र, स्त्री सम्पत सारी
और तुम्हारा सिर भी
सबका दो बलिदान
जिसके लिए जी रहे अब तक,
जिसके लिए एक दिन, बन्दे !
करना होगा मृत्यु का आलिंगन
होंठों पर हो वही पुकार—
मर जाओ, मिट जाओ, बन्दे, हँसते-हँसते !

साँझ हो आई थी। आज वर्षा न हुई थी; ठण्डी हवा चल रही थी। लालाराम की दुकान के सामने गोष्टी में मित्रों के सम्मुख ब्रह्मचारी अचिन्त-राम बहुत प्रसन्न नजर आते थे। कोई एक वर्ष के पश्चात् ब्रह्मचारी जी करंजिया में लौट आये थे; सब लोग चकित थे कि ब्रह्मचारी जी कब से कवि बन गये।

"ब्रह्मचारी जी की कविता के भाव तो बहुत ही अच्छे हैं !" सोम ने जोर देकर कहा।

ब्रह्मचारी जी की कोशिश वाकई बहुत अच्छी है।" फॉरेस्ट-रेंजर कासिमी साहब ने झूमकर कहा।

"अब तो ब्रह्मचारी जी कवि बन गये !" लालाराम ने चुटकी ली।

"अजी शायरी छोड़िए, ब्रह्मचारी जी !" अब्दुल मतीन ने हँसकर कहा, "शायरी इतना आसान खेल नहीं ! शायरी में तो शब्दों को पकड़-

पकड़ कर लाना पड़ता है !"

"ऐसे ही जैसे पुलिस का सिपाही चोरों और उचक्कों को पकड़कर लाता है ?" सोम ने व्यंग्य कसा।

थानेदार ने कुछ उत्तर न दिया।

"आज मालूम हुआ कि ब्रह्मचारी जी कितने बड़े देशभक्त हैं !" लालाराम ने चकित होकर कहा।

"कविता की खूबी मैं केवल ज़बान की चाशनी तक ही नहीं समझता।" कासिमी साहब ने ज़ोर देकर कहा, "कविता में कोई नई बात हो, यह तो बहुत ज़रूरी है, बल्कि यही कविता की कामयाबी की पहली शर्त है। इस लिहाज से ब्रह्मचारी जी की कविता अच्छी है और मैं उनकी सचाई का कायल हूँ।"

"वाकई !" लालाराम ने उछलकर कहा।

"मुझे तो इस कविता का स्तर बहुत ऊँचा नजर आता है !" आनन्द ने एक आलोचक के लहजे में कहा, "जरा सोचिए तो सही कि कवि किस स्थान पर खड़े होकर हमें सम्बोधित करता है।"

"जैसे कोई व्यक्ति जीवन के अन्तिम छोर पर जा पहुँचा हो," सोम ने कहा, "कविता में आरम्भ से अन्त तक बहुत बड़ी पकड़ है, जैसे कोई पहुँचा हुआ इन्सान बोल रहा हो।"

"मेरा तो विचार है कि हर व्यक्ति, यदि वह सचमुच अपने भीतर की आवाज़ सुन सके, ऐसी ऊँची बात कह सकता है, जैसी कि इस कविता में कही गई है," रामबिहारी लाल ने गोष्ठी को अपने साथ सहमत करने के उद्देश्य से कहा, "मुझे तो यों लगता है जैसे कोई गीता पढ़ रहा हो !"

"खैर, इतनी ऊँची तो नहीं हो सकती, मेरी कविता !" ब्रह्मचारी जी की आवाज़ में संकोच था।

"इस कविता में कवि उसी अन्दाज़ में बोलता है जिसमें एक पैग़म्बर बोलता है !" चुन्नू मियाँ ने अपनी छुज्जेदार दाढ़ी पर हाथ रखकर कहा,

"अल्ला पाक ने इन्सान को बनाया और इन्सानों में कैसे-कैसे शायर हो गये। कई शायर तो पैग़म्बरों से भी बढ़ जाते हैं; हमारे ब्रह्मचारी जी भी तो उन्हीं में से हैं।"

"मुझे तो ईसा के 'सरमन आन दि माउंट'[1] की याद आ गई!" सोम ने सौजन्यपूर्वक कहा, "हू-ब-हू वही शैली है। मुझे तो सारी बाइबल में ईसा का 'सरमन आन दि माउंट' ही पसन्द है। बाइबल से मुझे कोई ख़ास लगाव न था, लेकिन जब मैं बम्बई के आर्ट्स स्कूल में पढ़ता था तो मुझे अपने चित्र बेचकर अपना खर्च चलाना पड़ा। वहाँ मेरे ग्राहक अधिकतर ईसाई थे। बम्बई में मेरे ग्राहकों में एक थी मिस सोफ़िया वारेरकर; उसके साथ तो एक बार मैं गिरजे में भी हो आया था; उसके ड्राइंग-रूम में बैठकर मुझे पहली बार उसके मुख से 'सरमन आन दि माउंट' सुनने को मिला। सोफ़िया की मधुर संगीतमय वाणी आज भी मेरे कानों में प्रतिध्वनित हो उठती है। हाँ तो ईसा की जो शैली 'सरमन आन दि माउंट' में है, हू-ब-हू वही शैली इस कविता में ब्रह्मचारी जी की लेखनी को छू गई है, वही बात, वही लहजा; लगभग दो हजार वर्ष पूर्व जो बात ईसा के मुख से निकली, वही बात करंजिया-निवासी ब्रह्मचारी जी के मुख से निकली; आखिर करंजिया से पहाड़ बहुत दूर भी तो नहीं है।"

"मुझे तो लगा जैसे यह भगवान् बुद्ध की वाणी हो!" आनन्द ने मन्त्रमुग्ध होकर कहा, "अच्छी कविता उस घोड़े के समान होती है जो कोचवान की चाबुक की अपेक्षा किये बिना चलता है।"

थानेदार और कम्पाउंडर को कोई कार्य याद आ गया, वे आज्ञा लेकर चले गये।

"अजी ब्रह्मचारी जी, बम्बई की खबर तो सुनाइए," लालाराम ने ज़ोर देकर कहा, "गांधीजी को गिरफ्तार हुए तो एक वर्ष से ऊपर होने को आया, फिर भी जो-कुछ अपनी आँखों से देखा हो, हमें भी बताइए।"

---

१. गिरि-प्रवचन

"इसे मैं अपना सौभाग्य समझता हूँ," ब्रह्मचारी जी ने कहना आरम्भ किया, "कि मैं उस समय बम्बई में था जब 'हिन्दुस्तान छोड़ो' प्रस्ताव के सिलसिले में गांधी जी को गिरफ्तार किया गया। बम्बई के ग्वालिया टैंक वाले कांग्रेस-पंडाल में सात और आठ अगस्त को लाखों लोग उपस्थित थे। आठ अगस्त को 'हिन्दुस्तान छोड़ो' प्रस्ताव पर साढ़े तीन घंटे तक गांधी जी का भाषण हुआ।"

"हाँ तो उस भाषण की कोई बात हमें भी तो सुनाइए!" लालाराम ने अनुरोध किया।

"उस भाषण की बात पीछे होगी," ब्रह्मचारी जी ने कुरसी से उठकर कहा, "पहले मेरी कविता का शेष अंश सुनिये :

मैं तो हूँ सेनानी !
प्रेम के बिना दूसरा शस्त्र नहीं है
मेरे पास
इस धरती पर रहने वाला
हर इन्सान
आज हुआ आज़ाद
आज़ादी की ख़ातिर मर-मिट जाने को
सदा रहे तैयार हर इन्सान
इसी घड़ी से
इसी समय से
इस धरती पर रहने वाला हर इन्सान
एक समान
धरती माता की सन्तान
सबसे पहले आज़ादी है
आज रहे न कोई बुज़दिल
बुज़दिल को कब जीने का अधिकार ?

आई आज़ादी पहने सिर पर जनता का ताज !
या तो करेंगे
या तो मरेंगे
भारत को आज़ाद करेंगे
या बस इसी यत्न में हम सब मर जायँगे मिट जायँगे
गूँगी चट्टानों को फिर से देंगे नई ज़बान
ओ धरती के नमक, अरे अन्नदाता !
दे बलिदान !
आई नई रवानी तेरे दरयाओं में
धरती गाये नूतन गान—नूतन गान !

हाँ तो सज्जनो, क्षमा कीजिएगा, अब यह तो सत्य नहीं है कि यह मेरी कविता है।"

"तो यह किसकी कविता है, ब्रह्मचारी जी ?" आनन्द के पैरों के नीचे से जैसे ज़मीन निकल गई।

"सज्जनो, वैसे यह तुकबन्दी मेरी ही है !" ब्रह्मचारी जी ने अपने स्थान से खड़े होकर कहा, "फिर भी मैं यह नहीं कह सकता कि यह मेरी कविता है।"

"तुकबन्दी आपकी और कविता किसी और की !" सोम ने झुँझलाकर कहा, "हमें कहाँ घसीटा जा रहा है।"

"यही गांधीजी का सन्देश है।" ब्रह्मचारी जी ने कहा, "वह तुक-बन्दी मेरी है, पर ये विचार बापू जी के हैं, जो उन्होंने आठ अगस्त की रात को अपने साढ़े तीन घंटे तक होने वाले भाषण में देशवासियों के सामने रखे।"

"यह तो आपने बताया ही नहीं कि गांधी जी से आपकी भेंट हुई भी या नहीं।" लालाराम ने कहा।

ब्रह्मचारी जी ने कहना शुरू किया :

"वैसे तो मैं गांधी जी से कई बार मिला, लेकिन वे 'हिन्दुस्तान छोड़ो' प्रस्ताव के कार्य में अत्यन्त व्यस्त थे। हाँ तो आठ अगस्त की रात को साढ़े तीन घंटे तक मैंने उनका भाषण सुना। इस भाषण के अन्त में गांधी जी ने राजा-महाराजाओं, हाईकोर्ट के जजों, सिपाहियों, प्रोफेसरों और विद्यार्थियों, सभी सम्प्रदायों और धर्मों से पृथक्-पृथक् और हिन्दुस्थान की सारी जनता से आजादी के लिए सब-कुछ न्योछावर करने का अनुरोध किया। हाँ तो एक दुबला-पतला इन्सान अपने भीतर कितनी आग छिपाये बैठा है, यह मैंने इक्कीस वर्ष पूर्व अहमदाबाद कांग्रेस में देखा था, जब गांधी जी ने आजादी की टेर सुनाई, उस समय यह एक पचास वर्ष के बुड्ढे की टेर थी। और पिछले वर्ष बम्बई में मैंने सत्तर वर्ष के बुड्ढे की टेर सुनी; अबके तो गांधी जी ने अँग्रेज से स्पष्ट कह दिया कि हिन्दुस्तान को छोड़कर चले जाओ और देशवासियों से कहा—करो या मरो।"

फिर ब्रह्मचारी जी ने जेब से एक कागज निकालकर कहा, "देखिये लालाराम जी, यह है गांधीजी जा सन्देश! करंजिया-निवासियों के लिए।"

"तो लालटेन के पास जाकर पढ़कर सुनाइए न!" लालाराम ने अनुरोध किया।

"सज्जनो! गांधीजी अपने सन्देश में लिखते हैं—यह आप लोगों का बड़ा सौभाग्य है कि करंजिया में आदिवासियों के लिए काम हो रहा है। मैंने सोचा था कि हरिजनों का काम समाप्त करके आदिवासियों का काम हाथ में लूँ। करंजियावालों ने यह काम पहले ही हाथ में लिया, यह खुशी की बात है।"

गोष्ठी के बहुत से व्यक्तियों ने लालटेन के प्रकाश में बारी-बारी गांधीजी का सन्देश अपनी आँखों से पढ़ा।

टीकरा टोला का समलू किसी समय इस बस्ती का खाता-पीता किसान था, पर अब तो शराब की लत उसे बुरी तरह बरबाद कर चुकी थी। आनन्द ने बातों-ही-बातों में कई बार उसे समझाया कि यदि गोंड पंचायत किसी तरह लोगों की शराब छुड़ा सके तो उनकी प्रगति बहुत शीघ्र हो सकती है। उसने सदा यह बात स्वीकार की और वचन दिया कि और कोई पिये न पिये, वह तो अब इसे मुँह नहीं लगायेगा, लेकिन उसकी यह आदत छूटने में न आई।

एक दिन आनन्द साँझ के समय फॉरेस्ट रेंज क्वार्टरों की ओर से कला-भारती की ओर आ रहा था। उसने समलू के घर के सामने आकर देखा कि अन्दर से आवाज़ आ रही है और समलू शराब के नशे में घर के बाहर खड़ा है।

"तू फिर आ गया पीकर ? आज तो मैं तुझे भीतर नहीं घुसने दूँगी।"

"अरी दरवाजा खोल दे!" समलू ने दरवाज़ा थपथपाते हुए कहा, "मुझे भीतर आने दे, फुलमत की माँ!"

"आज तो मैं तुझे बिलकुल दरवाजा नहीं खोलूँगी।" भीतर से फिर आवाज़ आई।

समलू जोर-जोर से दरवाजा खटखटाता रहा; उसकी पत्नी लहरी ने दरवाजा न खोला।

आनन्द ने समलू के पास जाकर कहा, "तुम रोज-रोज कसम खाते हो, समलू! रोज-रोज अपनी कसम तोड़ क्यों देते हो?"

समलू ने नशे की चुस्की में कहा, "ज्यादा तो नहीं पी थी, आनन्द बाबू!"

लहरी ने फिर भी दरवाजा न खोला। आस-पास के दो-तीन घरों के लोग भी समलू के घर के सामने जमा हो गये। उधर से मंडल भी वहाँ आ पहुँचा। समलू जोर-जोर से अपने घर का दरवाजा खटखटाता रहा।

"क्यों, क्या बात है?" मंडल ने भीड़ को चीरते हुए समलू का कन्धा थपथपाया।

दरवाजा अभी तक नहीं खुला था; भीड़ में से किसी ने भी तो लहरी को आवाज़ देकर दरवाजा खोलने को नहीं कहा।

"तो आप लोग इन्हें समझाते क्यों नहीं?" आनन्द ने मंडल के समीप जाकर कहा।

"किस-किस को समझायें, बड़े राजा?" मंडल ने बड़ी निराशा का साँस लेते हुए कहा, "यहाँ तो ऐसे झगड़े होते ही रहते हैं।"

"अरी फुलमत की माँ, अरी अब तो आनन्द बाबू साहब भी आ गये; अरी अब तो खोल दे, दरवाज़ा खोल दे।" समलू चिल्लाता रहा।

"यही झगड़े आप लोगों की उन्नति में बाधक हैं," आनन्द ने गम्भीर होकर कहा, "समलू को तो मैं दूसरों से अच्छा ही समझता रहा।"

"किसको सबसे अच्छा समझते रहे, आनन्द जी?" दूर से आते हुए लालाराम ने कहा, "मैं तो आपसे ही मिलने आ रहा था और आप कला-भारती से नीचे ही मिल गये।"

"आप भी देख लीजिए लालाराम जी, अपनी उस घुट्टी का रंग!" आनन्द ने व्यंग्य कसा, "समलू शराब में गिरा जा रहा है और लहरी दरवाज़ा नहीं खोलती।"

"अच्छा तो यह बात है!" लालाराम ने आश्चर्यपूर्वक कहा, "मेरे आगे-आगे ही तो आया है समलू; मैं जरा एक आसामी से बात करने लगा। हाँ तो समलू आज हमारी दुकान में आया और कहने लगा—लाला जी, मेरे पास पैसे नहीं हैं और आज मेरी ज़बान सूख रही है, लाला जी! मुझे तरस आ गया और मैंने हुक्म दिया कि इसकी जबान गीली करा दी जाय।"

"और पैसों का क्या हुआ, लालाराम जी?" आनन्द ने फिर व्यंग्य कसा।

"पैसे मैंने इसके नाम लिख लिये।"

"पूरे पैसों से तो कुछ ज्यादा ही कलम चली होगी आपकी, लालाराम जी!"

"ऐसा तो होता ही है!" मंडल ने आनन्द की ओर प्रसन्नता से देखकर कहा, "आप भी लालाराम की नवज पहचानते हैं, बड़े राजा! अगर लालाराम शराब का ठेका न ले तो करंजिया में शराब इतनी न बिके। करंजिया का पहला ठेकेदार कभी किसी को उधार शराब नहीं देता था।"

भीड़ में से किसी ने कहा, "लालाराम ने तो उधार की छबील लगा रखी है।"

"अब आप लोग शान्ति चाहते हैं," आनन्द ने सब लोगों को सम्बोधन करते हुए कहा, "और फिर आप लोग गान्धी जी के वचनों पर चलना चाहते हैं। हमारे लालाराम जी तो बात-बात में गान्धीजी का नाम लेते हैं। मैं पूछता हूँ कि शराब बेचकर या पीकर कोई कैसे गान्धीजी का भक्त बना रह सकता है?"

"मैं आज से शराब का ठेका छोड़ता हूँ!" लालाराम ने लज्जित होकर कहा, "आज से मैं करंजिया की उन्नति के लिए कुछ उठा न रखूँगा।"

"इस शुभ संकल्प के लिए बधाई स्वीकार कीजिए, लालाराम जी!" आनन्द ने जैसे शिष्य को दीक्षा देते हुए कहा।

"तो लालाराम जी की छबील बिल्कुल बन्द हो जायगी!" भीड़ में से किसी ने कहा।

लहरी दरवाजे के भीतर से भीड़ में हो रही चर्चा सुन रही थी; उसने दरवाजा खोल दिया।

पंचायत में दूसरे दिन फैसला हो गया कि करंजिया में शराब नहीं बिकने देंगे। बारह के बारह टोले पंचायत में जमा हुए और हर किसी ने शराब को मुँह न लगाने का वचन दिया। मंडल ने तो यहाँ तक कह दिया, "भाइयो! अब हम कभी भीमसेन की कहानी सुनाते हुए उसे महुए की शराब की खोज लगाने वाले के रूप में प्रदर्शित नहीं करेंगे।"

लालाराम ने शराब का ठेका वापस कर दिया तो रामस्वरूप ने ठेके की बोली देकर शराब का ठेका अपने नाम करा लिया।

पर अब शराब का ग्राहक मिलना कठिन था।

"चलो यह भी अच्छा हुआ सोम, कि करंजियावालों ने शराब से मुँह मोड़ लिया!" आनन्द करंजिया की प्रगति पर प्रसन्न होकर कह उठता।

२३

रूपी कोई चीज चबा रही थी। नदिया टोला में अपने झोंपड़े के बरामदे में बाँस के डंडे पर बैठी वर्षा के रंग-ढंग देख रही थी। तीन दिन तो यह हाल था कि जब देखो पानी बरस रहा है; ऐसे में नहाना तो जरूरी नहीं था। जबलपुर के स्कूल में तो उसे दिन में दो बार नहीं तो एक बार अवश्य नहाने की आदत पड़ गई थी, पर जब से वह जबलपुर से आई थी, उसने अपनी आदत करंजिया के साँचे में ढाल ली थी। जैसे जंगल काटने के पश्चात् जमीन को फिर अपनी दशा पर छोड़ दिया जाय और वहाँ जंगल देवारा सिर उठाने लगे। बस यही दशा रूपी की थी। जबलपुर में तो स्कूल की दूसरी लड़कियों के समान रहने पर मजबूर थी; अब यहाँ तो उसे वही करंजिया वाला वेश अच्छा लगता था। वैसी ही साड़ी, जैसी उसकी माँ पहनती आई थी; वैसी ही अंगिया, वैसे ही रंग; हू-ब-हू वही अन्दाज। अब सब लड़कियाँ तो बराबर हैं; सबमें एक वह भी है। जबलपुर से दसवीं पास कर आई तो क्या वह अन्य लड़कियों से अलग हो गई? वैसे ही झोंपड़े के बरामदे में बाँस के डंडे पर बैठकर झूमने

लगती। कोई उसे रोकने वाला नहीं था। यह तो मन-मर्जी की बात थी। किसी दिन बालों में कंघी नहीं की, यह भी मन-मर्जी की बात थी। लड़कियों के झुरमुट में वह खो जाना चाहती और कभी-कभी तो अनिच्छा से कमंडल नदी की ओर देखने लगती। कभी उसका जी चाहता कि कोई उसके पीछे दौड़े। उस दिन वह मल-मलकर नहाती, दर्पण में चेहरा देखकर कंघी करती, कसकर जूड़ा बाँधती और जूड़े में फूल लगाती। बाँहें फैलाती जैसे उड़ जाने को उत्सुक हो। माँ उसे निष्कपट और अबोध समझती थी, पर माँ को क्या मालूम था कि रूपी की काली-काली आँखें भी सब देखती हैं, सब समझती हैं। अब माँ किसी बात को लाख 'छिः' कहकर हँसी में उड़ाना चाहे। अब वह माँ की एक नहीं सुनेगी। इसमें तो किसी गहरी सहेली की बात ही मानी जा सकती थी। गहरी सहेलियाँ तो बिलकुल नहीं झिझकती थीं, कुहनी मारकर आगे बढ़ जातीं; सब देखते रह जाते। सब समझते थे; इसमें अधिक लुका-छिपी की तो ऐसी क्या बात हो सकती थी। सभी सहेलियाँ रूपी से यही कहतीं—अरी तुम तो राजगोंड हो, तुम्हारा पिता ठहरा करंजिया का पटेल; अरी तुम तो किसी बड़ी मार पर बैठी हो। अब वह बड़ी मार क्या थी, यह तो वह स्वयं भी न जानती थी। झूलन पाँच वर्ष से उनके घर में लामसेना बनकर काम करता था। वही तो उसका मँगेतर था; करंजिया की परम्परा का यही तकाजा था। कोई लड़का कन्या-पक्ष वालों को कन्या का मोल न चुका सकता तो कन्या के घर में कुछ वर्ष तक काम करता और यों अपनी दुलहन का मोल चुका देता। कोई कुछ भी कहे, झूलन इतना बुरा भी नहीं था; उसे अपनी रूपी का कितना ध्यान रहता था। अब यदि रूपी को अपने जूड़े के लिए सफेद फूल चाहिए तो झूलन ढेर-के-ढेर सफेद फूल लेकर चला आता है; लाल फूल की फरमाइश कर दी जाय तो लाल फूल लाकर घर भर देता है; पर क्या फूल ही सब कुछ हैं ? झूलन के हँसी-मज़ाक तो उसे एकदम नापसन्द थे। मज़ाक करते समय झूलन यह भूल जाता है कि रूपी पर अभी उसका कोई अधिकार नहीं। बन्दर की तरह उछलने लगता है;

कभी तो भालू बनकर झपटता है। अब उसे भालू तो नहीं चाहिए; उसे तो इन्सान चाहिए। झूलन को तो जैसे इन सब बातों की खबर ही नहीं। उल्टा उसकी पढ़ाई पर भी चिढ़ता है; कहता है—रूपी, तुम तो कोई पादरियों की मेम हो : वह उसका मुँह बन्द भी तो नहीं कर सकती। फिर कहता है—रूपी ! तुम तो मुझे छोड़कर जबलपुर भाग जाओगी उन्हीं पादरियों के पास, लेकिन रूपी, मैं भी हूँ। अब तुम्हारे पादरी तुम्हें मुझसे नहीं छीन सकते। मैं तो उनकी रपट लिखवा दूँगा थाने में; सामने से उन्होंने बुरा-भला कहा तो एक जमाऊँगा भारी सा सट्ठ उनके सिर पर !···अब वह झूलन की इन्हीं बातों से बिदककर घबरा जाती थी। खैर, अब तो झूलन की मसें भीग रहीं थीं; ऊपर को उठा हुआ निचला होंठ जैसे किसी को बुला रहा हो। सब से पहले वह इसी होंठ को नोच डालेगी; जरा झूलन उसे हाथ लगाकर तो देखे। कोई खेल तो नहीं कि पंचायत की स्वीकृति लेकर वह उस पर अधिकार जमा ले। वह भी मुँह में जबान रखती है।

टाँग-पर-टाँग रखे रूपी झुकी हुई बैठी थी। वे गड्ढे नजर न आ सकते थे जो हँसते समय दोनों ओर गालों में पड़ते थे, न वह द्विअर्थक-सी थिरकन नजर आ सकती थी, जो उसकी आँखों के कोनों में सिमट आती थी, जो गहरी सहेलियों के बीच में उसकी बलायें लेती थी। झूलन लाख चाव-चोंचले करे, वह अब उसकी एक न सुनेगी। उसकी सहेलियाँ कई बार उसे बता चुकीं थीं कि लामसेना के मुँह आना सहज नहीं होता, और रूपी, यह उतना सहज तो बिल्कुल नहीं जितना कद्दू के बीज चबाना। 'थू' की आवाज के साथ उसने कद्दू का बीज थूक दिया, जैसे झूलन को अपने मन से उतार दिया हो।

आकाश पर गहरे बादल छाये हुए थे। मालूम होता था कि अब बरसना आरम्भ होगा तो पाँच दिन थमने का नाम न लेगा। कद्दू का बीज जेब से निकालकर उसने दोबारा मुँह में डाल लिया : मैं कोई काठ की पुतली तो हूँ नहीं कि झूलन मुझे उठाकर भाग निकले; छिः ! झूलन का यह साहस नहीं हो सकता। छिः ! झूलन पर जंगल का बाघ झपटेगा। झूलन

के विरुद्ध घृणा के साथ-साथ उसके हृदय में बार-बार यह इच्छा भी सजग हो रही थी कि कोई उसके पास आ कर बैठ जाय और गुनगुनाये कोई पुराना गीत, कोई नया गीत। करंजिया की बोली में तो गीत के बोल ही सबसे अधिक घुले हुए थे। गीत के चार बोल तो बड़ी-से-बड़ी बात कह देते थे। विभिन्न पगडंडियों से होते हुए ये सब गीत एक ही स्थान पर पहुँचते थे ठट्ठ के ठट्ठ गीत, नये पुराने सभी एक ही बात कहते थे घुमा-फिरा कर। उसे एक आकर्षण-सा अनुभव हो रहा था। यह कैसा आकर्षण था? यह कैसी उठान थी? वह किसी को देखना चाहती थी। उसके शरीर का प्रत्येक अंग एक परिवर्तन-सा अनुभव कर रहा था। यह कैसा सरगम बज उठा था? यह कैसी रागीनी थी जो उसे अपने पीछे चलने का संकेत कर रही थी? गीतों के बोल, जो वह बचपन से सुनती आ रही थी, उसकी कल्पना में गड्ड-मड्ड हो रहे थे, एक नया रूप ले रहे थे, उसे एक नई भाषा दे रहे थे, अपनी गहराइयों से परिचित करा रहे थे:

'ध्यान से देख; प्रेम-नदी टेढ़ी-तिरछी बहती है, पहले हौले-हौले, फिर तेज़-तेज़।'

'इस पथ से आओ, उस पथ से जाओ। बालम का रूप जी में बसा रहे, बालम का स्नेह तुम्हारे नयनों में झलक उठे, झिलमिल-झिलमिल।'

'मैं देख रही हूँ, सूर्य यही कोई बाँस-भर ऊँचा उठ पाया है पर्वत पर! सूर्य की रश्मियों में कौन चला आ रहा है, उसे मेरा पता किसने दिया?'

'मैं कमंडल नदी के उस पार से आ रहा हूँ, जंगल से होकर; बाघ, चीते और भालू के सामने से होकर। तेरी पलकों में अपनी छवि निहारने के लिए!'

'ओ केले के पेड़, तुम तो जानते हो न प्रेमियों का हाल! सूखे पत्ते को हवा उड़ाये लिए फिरती है!'

'ओ री बाँसुरी! कुछ तो बता; कहाँ से आये ये स्वर? कहाँ से आई

स्नेह की मधुर तान ?'

'परदेसी आता है जैसे पक्षी आ बैठे; सपना तो अधिक नहीं टिकता।'

'पवन समान चलते हैं पहिये, रूप के पहिये; अरी ओ वंशो, रुक क्यों नहीं जाती !'

'चट्टान तो मूक है; मूक और अडोल है चट्टान ! दूर का पक्षी आकर कहता है—ओ री नीली चट्टान, कुछ तो बोल !'

जैसे किसी ने रूपी के कान में धीरे से कहा—रूपी, यों चट्टान बनी कब तक बैठी रहेगी ? उसने कद्दू का बीज थूक दिया। उसका मुँह कसैला हो गया। न जाने उसे किस वस्तु का अभाव खटक रहा था। घर में तो सब कुछ था, किसी वस्तु का अभाव न था। वह चाहती थी कि जंगल की ओर भाग जाय। अभी अगले ही दिन फ़ुलमत ने कहा था—रूपी, साहस से काम ले ! अब वह क्या साहस दिखा सकती थी ? माँ कहती है—रूपी, तेरे मुँह से तो दूध की बू नहीं छूटी। ऊँह ! दूध की बू नहीं छूटी। नर्व-दिया तो करंजिया से भाग गई। छिः ! उसका लामसेना हाथ मलता रह गया। और मेरा लामसेना···जाओ, बेटा, जाओ ! अपने घर लौट जाओ ! तुम्हारी नौकरी के रुपये चुका दिये जायँगे, झूलन !···

करमा आरम्भ होने में अब अधिक देर न थी। करंजिया के बारह के बारह टोलों के लड़के-लड़कियाँ आ चुके थे। अलाव जल रहा था।

आज पूनम की रात थी; दिसम्बर समाप्त हो रहा था। आज के पूनम करमा का निमन्त्रण करंजिया के पटेल मंडल की ओर से था।

एक ओर लड़कियाँ खड़ी थीं, दूसरी ओर लड़के; बीच में ढोलिये इस प्रतीक्षा में थे कि उन्हें हाथ चलाने का संकेत मिले और करमा नृत्य आरम्भ हो जाय।

पाँच युवकों के हाथों में मशालें थीं, जिनके प्रकाश में लड़के-लड़कियों के चेहरे ताँबे में ढले हुए प्रतीत हो रहे थे। कमंडल नदी और बड़े पोखर के बीच वाले इस खुले स्थान पर या तो पंचायत होती थी या फिर नृत्य के आह्वान पर करमा होता था; अपने-अपने टोले में तो करमा की झोंक प्रत्येक साँझ के कार्यक्रम में रंग भरती थी, पर ऐसे अवसर तो किसी विशेष निमन्त्रण पर निर्भर थे जब बारह-के-बारह टोले करमा के लिए एकत्रित हों।

गोंड प्रथा के अनुसार करमा वर्षा से पहले वसन्त ऋतु में ही आरम्भ होता था; वर्षा का आवाहन करते हुए सामूहिक उल्लास का प्रदर्शन इसका उद्देश्य था। वस्तुतः करमा गोंडों के हर्ष-उल्लास का प्रतीक था। पाँच महीने ही करमा बन्द रहता था, जून से नवम्बर तक, जब पेंड्रा रोड की सड़क भी बन्द रहती। शेष सात मास तो करमा की झोंक को निरन्तर लिए चलते। शीतकाल के करमा की विशेषता थी अलाव और मशालों का प्रकाश; शीतकालीन करमा घूमकर वसन्तकालीन करमा से जा मिलता तो यह कहना लगाना कठिन होता कि गतवर्ष का करमा कहाँ शेष हुआ और नूतन वर्ष का करमा कहाँ आरम्भ हुआ।

एक ओर कासिमी साहब बेगम नसीम कासिमी के साथ बैठे थे; दूसरी ओर थानेदार, कम्पाउंडर, लोअर प्राइमरी स्कूल के हैडमास्टर, कला-भारती के अध्यापक और करंजिया के दुकानदार करमा आरम्भ होने की प्रतीक्षा कर रहे थे।

दर्शकों की पंक्ति के बीच में आनन्द बैठा था; उसके दाईं ओर सोम की कुरसी थी, बाईं ओर रेशमा बैठी थी—आनन्द के बचपन की सखी, जो अपने पति के साथ कल ही यहाँ आई थी। रेशमा ने अपने पति पन्नालाल से बहुत कहा कि तुम भी करमा देखने चलो, पर बैलगाड़ी के धचकों के कारण पन्नालाल बुरी तरह थक गया था।

"कब आरम्भ होगा इन लोगों का करमा?" रेशमा ने उत्सुकता से कहा।

पास से रूपी की माँ ने अपने पति से कहा, "अब टीकावन में क्या देर है?"

मंडल ने आँखों-ही-आँखों में खिलावन पण्डा को थाली उठाने का संकेत किया। थाली में चावल था; चावलों पर एक दीया जलाकर रखा हुआ था।

दीये के तेल में उंगली डुबोकर खिलावन पण्डा उंगली से चावल को

छूता और करमा नाचने के लिए आये प्रत्येक लड़के-लड़की के माथे पर टीका लगा देता ।

खिलावन ने झूलन के माथे पर टीका लगाया तो उसने हँसकर कहा, "कोई आशीष भी तो दो, खिलावन काका !"

"पर वह कहाँ है जिसके लिए आशीष माँग रहे हो ?" खिलावन ने चुटकी ली ।

करमा आरम्भ हो चुका था । झूलन ने सभी लड़कियों को देखा; उनमें रूपी न थी । थोड़ी देर बाद आनन्द ने झूलन को घर की ओर जाते देखा ।

खिलावन पण्डा दर्शकों के माथे पर करमा का टीका लगा रहा था; रेशमा के माथे पर टीका लगाया गया तो वह हँसकर बोला, "जुग-जुग जिये यह जोड़ी ।"

रेशमा शरमा गई ।

आनन्द ने टीका लगवाते हुए कहा, "तुम भूल रहे हो, खिलावन काका ! रेशमा का पति तो रास्ते की थकन से चूर होकर कला-भारती में पड़ा सो रहा है ।"

ढोलों की आवाज ऊँची उठती गई । पायलों की झंकार अलाव की गज़-गज़ भर ऊँची लपटों के साथ होड़ लगा रही थी; गीत के स्वर जैसे करंजिया के इतिहास को एक नई गति प्रदान कर रहे हों; जैसे यह नृत्य कभी समाप्त न होगा ।

पूनम की रूपहली चाँदनी में गीत के स्वर समीपवर्ती वन-प्रान्तर का अंचल छू रहे थे :

बघिनी रेंगाले धीरे-धीरे रे
डोंगरी के तीरे
बघिनी रेंगाले धीरे-धीरे हाय रे ।[1]

---

१. बाघिन धीरे-धीरे चली जा रही है पहाड़ी के किनारे-किनारे; बाघिन धीरे-धीरे चली जा रही है, हाय रे !

आनन्द के सामने से झूलन रूपी को लेकर गुजरा तो रूपी ने उसे रेशमा के साथ बैठे देखा। उसने वहाँ रुकना चाहा, पर झूलन ने आवाज़ दी, "जल्दी करो, रूपी! एक तो तुम पहले ही बीमारी का बहाना करके घर में पड़ी रहीं!"

"तो क्या तुम मेरे बिना करमा नहीं नाच सकते थे?" रूपी की आवाज़ पायल की झंकार में खो गई।

रूपी को आते देखकर करमा नाचने वालों के पैर थम गये, ढोलियों के हाथ भी रुक गए।

तिलावन पण्डा ने टीकावन की थाली उठाकर एकसाथ झूलन और रूपी के माथों पर टीका लगाया और कहा, "जुग-जुग जिये यह जोड़ी!"

करमा फिर आरम्भ हो गया।

ढोलियों में पाँच थे माँदरी; गले में माँदर डाले वेग से हाथ चला रहे थे। दो थे नगारिये; नगारों पर थाप देने की पुरातन शैली जैसे आज नूतन प्रेरणा का संचार कर रही हो। तीन थे टिमकिये; अपनी-अपनी टिमकी जमीन पर रखकर चोब से बजा रहे थे, जैसे असंख्य पीढ़ियों से उनके पुरखा बजाते आये थे। विभिन्न ढोलों की वाणी प्राणवान कलाकारों की वाणी के समान गले मिलती रही। युवक गीत का बोल उठाते, फिर युवतियाँ इसे उठा लेतीं; कभी युवतियाँ युवकों की ओर गीत को यों उछालतीं जैसे यह गीत न हो, सौंदर्यबोध का चमत्कार हो। युवक और युवतियाँ अर्द्ध-गोलाकार में एक-दूसरे की ओर बढ़ती चली जातीं; फिर वे तीन कदम पीछे हट आतीं। करमा की यह शैली गोंड जीवन की शत-शत अनुभूतियों का अनुसरण करती आई थी, इस पर वन-प्रान्तर की संस्कृति अपनी आत्मकथा लिखती आई थी।

युवतिओं की ओर से रूपी ने अपना गीत आरम्भ किया :

हा हो हो, हो रे हाय
अद्दल गरजे बद्दल गरजे
गरजे मालगुजारा हो

फिरंगी राज के हो गरजे सिपाईरा रामा
गाँधी का राज होने वाला हायरे
हो हो हो, हो रे हाय
गाँधी का राज होने वाला हाय रे ![1]

जैसे यह गान कभी शेष न होगा; युग-चेतना से अनुप्राणित यह गान श्रोताओं को मुग्ध कर रहा था। जैसे अब कोई अन्य गान आरम्भ न होगा।

फिर युवकों की ओर से झूलन ने एक गान आरम्भ किया :

माया नईं छूटे माया नईं छूटे रे
माया के डार टुरवाय डार
माया नईं छूटे रे ![2]

रात-भर करमा की झोंक निरन्तर चलती रही। अलाव जैसे सो गया हो; मशालें भी सो गईं! पूर्व की ओर उषा ने घूँघट उठाया; करमा के कलाकारों के पैर थम गये, ढोलियों के ढोल मूक हो गये।

करमा के कलाकार अपने-अपने स्थान पर खड़े रहे। मंडल और रूपी की माँ रेवड़ियों के बड़े-बड़े थाल उठाये उन्हें रेवड़ियाँ बाँटने लगे; रेवड़ियों का तीसरा थाल रूपी ने उठा लिया, वह दर्शकों की ओर आ गई। जब रूपी पायल की झंकार को हवा में उछालती आनन्द के समीप आई तो उसने कहा, "कैसा लगा हमारा करमा, मेहमान बाबू ?"

"करमा की राजकुमारी तो तुम ही नज़र आ रही थीं, रूपी !" आनन्द

---

१. हो हो हो, हो रे हाय ! बादल गरजता है, मालगुज़ार गरजता है; फिरंगी के राज का सिपाही गरजता है, हे राम ! गाँधी का राज होने वाला है। हो हो हो, हो रे हाय ! गाँधी का राज होने वाला है।

२. प्रेम न छूटे, प्रेम न छूटे रे; प्रेम की डाल तुड़वा डाल, प्रेम न छूटे रे !

ने हँसकर कहा।

रूपी ने आनन्द की बगल में रेशमा को ध्यान से देखा और उसके हाथ में रेवड़ियाँ थमाकर आगे बढ़ गई।

उषाकालीन वातावरण में कला-भारती की ओर लौटते हुए रेशमा ने आनन्द से पूछा, "तो यही थी वह करमा की राजकुमारी जिसे देखकर तुमने मुझे भी भुला दिया था?"

२५

आनन्द की मंगेतर है रेशमा—यह विचार रूपी के अन्तरतम को झकझोर गया। अब वह झूलन के प्रति अधिक उदार रहने की चेष्टा करने लगी। अरे हमारा झूलन तो करंजिया के बारह के बारह टोलों में सबसे सुन्दर युवक है; यदि मुँह पर शीतला के दाग़ हैं तो क्या हुआ? वह तो मेरा लामसेना है; पूरा लटैत है लठैत, लाल पगड़ी को तो पटक कर रख दे!...

घर के सब लोग खेत पर चले गये थे; घर के बरामदे में रूपी अनमनी सी बैठी थी। पीछे से किसी की मधुर आवाज सुनाई दी, जैसे सहसा बाँसुरी बज-उठी हो। अरे यह तो झूलन आ गया!

"तीन कबूतर लाया हूँ, रूपी!" झूलन ने बन्दर के समान उछलकर कहा, "आज तो मजेदार शोरबा बनाओ!"

रूपी कुछ न बोली।

"अरे कुछ तो बोलो, रूपी!"

रूपी ने मुँह फेर लिया।

"अभी से लाज आने लगी, रूपी ? मैं कहता हूँ, अपने लामसेना से काहे की लाज ?"

रूपी कुछ न बोली।

"उठकर आग जलाओ, रूपी !" झूलन ने समीप आकर कहा।

रूपी की साड़ी का पल्लू नीचे ढलक गया; उसका शरीर बहुत कसा हुआ था। उसके नयनों में दूर का सपना झलक उठा था।

झूलन को रूपी का मौन असह्य था; रूपी को ऐसा क्या गर्व है ? मैं हूँ रूपी का लामसेना; पंचायत का यही फ़ैसला है। जबलपुर से दसवीं क्या पास कर आई, मुझ से सीधे मुँह बात भी नहीं करती। गाँव में छोरियों की कमी नहीं; एक-से-एक बढ़कर पड़ी हैं छोरियाँ करंजिया में।

झूलन हाथ में कबूतर उठाये उसी तरह खड़ा रहा। उसे बहुत क्रोध आ रहा था। चुड़ैल मुझे इन्सान नहीं समझती···नहीं, नहीं, रूपी झूलन को इन्सान तो अवश्य समझती है···

"उठकर शोरबा बना ले, रूपी ! हम मिलकर खावेंगे।" झूलन ने पुकारा।

रूपी कुछ न बोली।

"आज तो तुम्हारे हाथों का शोरबा खाने को जी चाहता है, रूपी !" झूलन ने फिर पुचकारा।

"ले जा अपने कबूतर !" रूपी ने झूलन का हाथ झटक दिया।

झूलन ने सोचा कि ये चुड़ैल छोरियाँ ऐसी ही होती हैं; और फिर रूपी तो दसवीं पास कर आई है ! रूपी की ओर घृणा से देखते हुए वह कबूतर उठाकर रसोई की ओर चला गया।

आग सुलगते देर न लगी; धुआँ बता रहा था कि झूलन अपने काम में लग गया।

रूपी बाँस के डंडे से उठकर सामने पोखर चली गई; मूक दृष्टि से आकाश की ओर देखने लगी। किसी भी समय वर्षा आरम्भ हो सकती

थी; पोखर में मुँह तक जल भरा था। वर्षा आरम्भ होने से पहले इतना जल कहाँ था? पोखर के ऊँचे किनारे से नदी का दृश्य उसकी सौन्दर्यानुभूति का स्पर्श करने लगा; इससे उसके मन का तनाव हलका होता गया।

"रूपी, आओ, शोरवा तैयार है!" भूलन ने नीचे से आवाज़ दी।

रूपी ने मुड़कर भूलन की ओर देखने की भी आवश्यकता न समझी।

शोरबे की हंडिया उठाये भूलन पोखर के ऊँचे किनारे पर आ गया। रूपी ने उसका हाथ झटक दिया और उससे हट कर खड़ी हो गई। भूलन वहीं बैठकर शोरबे पर हाथ साफ़ करने लगा। वह रूपी को ललचाने का यत्न करता रहा; रूपी ने उसकी ओर मुड़कर भी न देखा।

खाली हंडिया रूपी के सिर पर टोपी के सम्मान रखते हुए भूलन भाग गया।

रूपी ने क्रोध में आकर खाली हंडिया ज़मीन पर दे मारी; गिरते ही हंडिया के कई टुकड़े हो गये। वह पूछना चाहती थी कि जब कमंडल नदी का दृश्य इतना सुन्दर है तो फिर यह घुटन-सी क्यों है? क्या यह उचित है कि उसे करंजिया की काली मिट्टी की कोख से जन्म लेने वाले एक छोरे के साथ बाँध दिया जाय?···नहीं, नहीं यह नहीं होगा! मेरे भीतर ज़रा भी बुद्धि है तो मैं ऐसा नहीं होने दूँगी।

सामने के दृश्य की ओर रूपी मन्त्रमुग्ध-सी होकर देखती रही; फिर जैसे स्नेह-गान के स्वर उसके अन्तरतम के तार हिलाने लगे:

'बाँस का फाटक धीरे से उठाना। हौले-होले, दबे पैर भीतर आना, हौले-होले; दबे पैर!'

'कोदों पर एक बाल और आ गई, स्नेह की बाल भी उठने दो!'

'कोदों और कुतकी एक ही क्यारी में बो दें; क्यों न हम साथ-साथ बैठें?'

रूपी ने झुँझलाकर देखा उसे कुछ भी अच्छा नहीं लग रहा था। उसकी कल्पना फिर से लोकगीत के छवि-चित्रण में कोई पगडण्डी ढूँढने

लगी :

'ओ सोने के सूरज, मेरी खिड़की से भी झाँक ले; अरे तुम तो दो बाँस ऊपर उट गये !'

'चिरौंजी दो दिन के लिए पकती है वृक्ष पर; प्रेम की हिलोर तो चिरकाल के लिए उठती है !'

'लिखने वाले ने इमली के पत्ते पर लिख दिया हमारा प्रेम; इसे अब लिखने वाला भी नहीं बदल सकता ।'

'ढोल बजता है तो याद आती है; हवा में कबूतरी उड़ती है ।'

रूपी के सम्मुख जो जीवन-रेखा उभरी उस पर झूलन के लिए कोई स्थान न हो सकता था। यह तो आवश्यक नहीं कि उसे इसी छोटे-से-घेरे में अपना जीवन-साथी चुनने को कहा जाय; वह फिर विचारधारा में खो गई :

'ऋतु उड़ी जा रही है जैसे आकाश में बकपंक्ति उड़ती है; अब तो खोल दे मन की खिड़की !'

'सूखे पेड़ पर बैठे हैं बन्दर; उन्हें हम पर सन्देह है ।'

अब ये पंचायत के बन्दर लाख कहें कि वह इस सीमित घेरे में अपना पथ ढूँढे; वह उनकी बात पर ध्यान नहीं दे सकती; सूर्य की किरणें तो बहुत दूर से आती हैं; वर्षा की बूँदें भी तो बहुत दूर से आती हैं; हवा भी बहुत दूर से आती है !

रूपी देर तक पोखर की ओर एकटक देखती रही। यह सब तो वर्षा का जादू है; और वह कमण्डल नदी ! उसे भी वर्षा ने ही दुलहन बना दिया !

सहसा उसे ख्याल आया कि मेहमान बाबू शीघ्र ही अपनी दुलहन से व्याह कर लेंगे। रेशमा में ऐसी क्या बात है जो मेहमान बाबू को पसन्द है, इस पर वह अधिक विचार न कर सकी; उसका क्रोध रेशमा पर सीमित होने लगा।

२६

पाँच घोड़े, पाँच सवार। वे अमरकंटक से लौट रहे थे। अमर-कंटक से कपिलधारा और कपिलधारा से करंजिया—सीधी पगडंडी के रास्ते; आगे-आगे रेशमा और आनन्द, पीछे सोम और पन्नालाल, उनसे पीछे चुन्नू मियाँ।

अमरकंटक से कपिलधारा का रास्ता तो मज़े से कट गया; कपिलधारा से करंजिया की ओर आते समय भी कुछ रास्ता तो मजे से कट गया। अब उतराई में कठिनाई का सामना करना पड़ा। जाते समय यही रास्ता चढ़ाई का रूप धारण करके सामने आया था।

रेशमा की दोनों वेणियाँ लाल फुंदनों सहित गले के दोनों ओर लटक रही थीं; सफेद सलवार कमीज, सिर पर काली जारजेट की चुन्नी; मुँह जैसे काँसे में ढला हो। आनन्द को लगा जैसे वह विवाह के पश्चात् और भी खिल गई है; कभी-कभी वह उसकी ओर देखते हुए चौंक उठता, जैसे उसे विश्वास न हो रहा हो कि यही वह 'गुड़िया' है जिसे उसने सर्वप्रथम अपनी नानी के आँगन में लसूड़े खाते देखा था।

"जीवन एक स्थान पर बँधकर तो नहीं रह सकता, रेशमा !"

"अब यहाँ क्या तुम बँधे हुए नहीं हो, आनन्द ?"

आनन्द और रेशमा घोड़ों पर बैठे-बैठे देर तक इस विषय पर बातें करते रहे; फिर पीछे से रेशमा के पति पन्नालाल ने दोनों हाथों से पगड़ी को सँभालते हुए घोड़े पर बैठे-बैठे पूछा, "हाँ तो आनन्द जी, फिर यहाँ से कब चलना होगा ?"

"आनन्द जी फ़रमा रहे हैं," रेशमा ने अपने पति की ओर देखते हुए व्यंग्य से कहा, "कि जीवन एक स्थान पर बँधकर तो नहीं रह सकता।"

पन्नालाल ने क़हक़हा लगाया; उसे विश्वास था कि आनन्द कभी रेशमा की युक्ति से निरुत्तर न होगा।

"मैं एक बात पूछूँ, आनन्द जी ?" पन्नालाल ने अर्थसूचक दृष्टि से आनन्द की ओर देखकर कहा।

"शौक से पूछिए, पन्नालाल जी !"

"अब यहाँ क्या आप बंधे हुए नहीं हैं ? खैर, मैं कभी यह राय न दूँगा कि आप रेशमा जी की बात मानकर करंजिया का काम छोड़ दें। यह काम तो मुझे पसन्द आया, पर पिताजी से मिल आने में तो कोई बुराई नहीं; आखिर आपको यहाँ आये बहुत दिन हो गये।"

आनन्द ने इसका कुछ उत्तर न दिया।

"अरे यही तो मैं भी कहने जा रही थी," रेशमा ने काली जारजेट की चुन्नी को सिर पर कसते हुए कहा, "अब देखिए न, मैंने इनके पिताजी से वायदा किया था कि मैं आनन्द को करंजिया से लौटा लाऊँगी; अब ये एक-दो दिन के लिए भी उनके पास हो आयें तो मेरी लाज रह जायगी।"

"इसमें तो कोई बुराई नहीं, आनन्द जी ! खैर देख लीजिए। रेशमा की बातों पर न जाइए, न मेरी सुनिए। हाँ यदि आपका मन भी यही कहे जो हम कह रहे हैं, तो चलने का प्रोग्राम बनाइए।"

"अभी तो मेरा काम खत्म नहीं हुआ, पन्नालाल जी !"

"ऐसा भी क्या काम है ?" रेशमा ने चुटकी ली।

"मैं इन आदिवासियों को आज की दुनिया के साथ मिलाना चाहता हूँ।"

"तो यह काम तो आप पूरा कर चुके हैं," रेशमा हँसी की फुलझड़ी बन गई, "हे भगवान्, आप भी कैसा काम हाथ में ले बैठे; यह तो ऐसे है जैसे कोई कहे कि नदी का रुख मोड़ दिया जाय।"

"आज की दुनिया में क्या नहीं किया जा सकता ?" आनन्द अपने विश्वास पर दृढ़ रहा। उतराई का रास्ता खत्म हो गया था; आनन्द ने बात का रुख बदलने की दृष्टि से कहा, "मेरी स्मृति में अनेक दृश्य यों सिर उठाते हैं जैसे बालक नींद से जाग उठें, एक-से-एक सुन्दर दृश्य; प्रत्येक दृश्य अपनी जगह सुन्दर है, लेकिन करंजिया के सौन्दर्य पर तो मैं मुग्ध हूँ; यही इस शस्य-श्यामला उपत्यका का पूर्वी छोर है।"

"और हमारा पंजाब कौनसा कम सुन्दर है, आनन्द जी !" रेशमा ने चुटकी ली।

"आदिवासियों की लोक-कथाओं पर तो मैं और भी मुग्ध हूँ," आनन्द ने जोर देकर कहा।

"अजी मुझे तो इनमें पाँच-पाँच गज लम्बी गप्प मालूम होती है," रेशमा ने व्यंग्य कसा, "अमरकंटक की उस कहानी को ही लीजिए। ब्रह्मा की आँख से दो आँसू गिरे और उन दोनों आँसुओं से नर्मदा और सोनभद्र बह निकलीं, अब यह गप्प नहीं तो क्या है ? नर्मदा और सोनभद्र के उद्‌गम-स्थलों का अन्तर कोई ढाई-तीन मील होगा; अब बताए, ब्रह्मा की दो आँखों में क्या इतना बड़ा अन्तर हो सकता है ? और यह शायद किसी पुराण की गप्प है कि शिव ने बारी-बारी सब पर्वतों से कहा कि वे नर्मदा को स्थान दें; ले-देकर इस मेकल पर्वत की समझ में यह बात आई कि नर्मदा के उद्‌गम का प्रबन्ध करना शुभ होगा। मैं पूछती हूँ आदिवासियों की कथाओं और पौराणिक कथाओं में ऐसा क्या अन्तर है ? आपको आखिर क्या चाहिए ? आप इन आदिवासियों से क्या लेने आये हैं ? उधर आपके पिता जी

आपकी याद में आँसू बहाते हैं। अब वे बेचारे ब्रह्मा तो हैं नहीं कि उनका एक आँसू करंजिया में भी आ गिरे। आपको हमारे साथ चलना ही होगा। हम आपको लेकर ही जायँगे।"

पीछे से सोम और चुन्नू मियाँ भी अपने घोड़े समीप ले आये, वे आनन्द और रेशमा की नोक-झोंक मजे से सुनते रहे; वे खूब जानते थे कि आनन्द अपने पथ से विमुख न होगा।

आनन्द ने मन्त्रमुग्ध-सा होकर कहा, "रेशमा जी, बार-बार अमरकंटक देखने से भी जी नहीं भरता; सड़क के रास्ते कबीर चबूतरा होकर अमरकंटक जाने की बजाय मुझे सीधे पगडंडी के रास्ते कपिलधारा होकर अमरकंटक पहुँचना अधिक पसन्द है। कपिलधारा में नर्मदा का प्रपात कितना सुन्दर है; अमरकंटक से कपिलधारा तक नर्मदा की धारा तो यों प्रतीत होती है जैसे नर्मदा की धारा साधारण-सी जलधारा हो, कपिलधारा पर तो वह एकदम नीचे गिरती है और चट्टानों को काटती अपने लिए पथ बनाती चलती है। करंजिया का एक आकर्षण यह भी है कि वहाँ से कपिलधारा समीप है।"

"कपिलधारा के सम्बन्ध में आपने वह एक गोंड लोक-कथा सुनाई थी न," रेशमा ने हँसकर कहा, "कि जब नर्मदा अमरकंटक का अंचल छोड़कर आगे बढ़ी तो भीमसेन ने उसे सबसे पहले कपिलधारा पर ही रोकने का प्रयत्न किया था, पर वह उसकी टाँगों के बीच से गुजर गई; फिर भीमसेन ने आगे बढ़कर भीमकुण्डी के स्थान पर उसे रोकना चाहा और नर्मदा मछली का रूप धारण करके आगे निकल गई। तुमने यह भी बताया था कि भीमकुण्डी करंजिया से बहुत दूर नहीं, जहाँ नर्मदा के किनारे करंजिया के मालगुजार के पुरखा की समाध है और उस समाध पर मेला लगता है। तो क्या अभी वह मेला देखना बाकी है, आनन्द?"

"इन्हें इतना तंग तो न करो, रेशमा!" पन्नालाल ने आनन्द का पक्ष लिया, "अब तुम इनके पिताजी की वकालत से नहीं टलोगी तो मुझे

आनन्द का वकील बनना होगा।"

"मुझे तो विश्वास है कि आनन्द मेरी बात मान लेगा," रेशमा ने काली जारजेट की चुन्नी के नीचे से लाल फुंदनों वाली वेणियों को झटकाते हुए कहा, "आनन्द को साथ लिए बिना हम मोहेंजोदड़ो नहीं जायँगे; आनन्द इन्कार करेगा तो हम यहीं सत्याग्रह आरम्भ कर देंगे।"

"लेकिन मैं तो नहीं रुक सकता; मोहेंजोदड़ो के एक टीले की खुदाई तो जनवरी में ही आरम्भ करने का प्रोग्राम बन चुका है; नौकरी का मामला है।"

"इतना तो आनन्द भी समझता है," रेशमा ने दोनों वेणियों को सिर की गति से हिलाते हुए कहा, "कि उसे यहाँ आये बहुत दिन हो गये; आखिर हर चीज की हद होती है।"

"मैं तो यहाँ तक कह सकता हूँ कि यदि आनन्द आज भी अपने पिताजी की बात मान जाय तो मैं उसके लिए खुदाई का काम छोड़ सकता हूँ।"

रेशमा ने कटु दृष्टि से पन्नालाल की ओर देखा, जैसे कह रही हो कि तुम कितने मूर्ख हो, रोजगार के मामले में तो सगे भाई का भी लिहाज नहीं किया जा सकता।

आनन्द ने कनखियों से रेशमा की आँखों की भाषा पढ़ ली; उसकी काली चुन्नी उसके कन्धों पर ढलक गई थी; कानों की बालियाँ वैसी गोल-गोल तो न थीं जैसी उन दिनों होती थीं जब वह अपनी नानी के आँगन में उसे लसूड़े तोड़-तोड़कर दिया करता था; उन दिनों इस 'गुड़िया' की एक ही वेणी होती थी—ऐसी दो वेणियाँ कहाँ थीं ?

कला-भारती के पूर्वी द्वार पर पहुँचते ही 'गुड़िया' घोड़े से नीचे उतर गई और आनन्द के समीप आकर खड़ी हो गई; पन्नालाल थोड़ा पीछे रह गया था, सोम और चुन्नू मियाँ के साथ क़हक़हे लगा रहा था।

आनन्द ने घोड़े पर बैठे-बैठे रेशमा की ओर देखा, जैसे वह आँखों-ही-आँखों में उससे वह गीत गाने की याचना कर रहा हो जिसमें एक नववधू अपने सेनानी पति से कहती है—'यदि तुम परदेस को जा रहे हो तो मुझे भी

अपनी जेब में डालकर लेते चलो; जहाँ भी रात हो जाय, जेब से निकालकर मुझे हृदय से लगा लेना!' फिर उसे ख्याल आया कि शायद यह दो वेणियों वाली 'गुड़िया' वह गीत न सुना सके जो वह लसूड़ों की शौकीन एक वेणी वाली गुड़िया गाया करती थी।

मंडल के झोंपड़े के सामने भीड़ लगी थी; स्त्रियाँ रूपी की माँ को तरह-तरह के सुझाव दे रही थीं। झूलन को जमीन पर लिटा दिया गया था।

"मेरा माथा तो पहले से ठनकता था," खिलावन पण्डा ने विश्वास-पूर्वक कहा, "अब भी डरने की तो कोई बात नहीं; मैं झूलन को बचा लूँगा। मेरे मन्त्र तो सच्चे गुरु के दिये हुए हैं।"

"दो साल पहले की बात है," मंडल ने जैसे पुरानी स्मृति से पर्दा-सा हटाते हुए कहा, "नदिया टोला में नाग नाच हुआ था न; मुँह की तरफ़ वाले छोरे ने दुम वाले छोरे—हमारे इस झूलन—को दाँत लगा दिया था।"

"मैं भी तो यही कह रहा था," खिलावन ने कहा, "उसी समय मेरा माथा ठनका था कि झूलन को साँप काट खायगा; पर मैं अभी झूलन का उपाय किये देता हूँ।"

"जल्दी करो, खिलावन काका।" रूपी ने उत्सुकता से कहा।

"घबरा मत, रूपी!" खिलावन ने विश्वास दिलाया, "ठाकुरदेव भली करेंगे।"

"हम ने सुना तो दौड़ पड़े," आनन्द ने घटना-स्थल पर पहुँचकर घबराई हुई आवाज़ में कहा, "कहाँ था झूलन जब उसे साँप ने काट खाया, मंडल काका?"

"सामने वाले पोखर की ऊँचे किनारे पर बैठा था झूलन, बड़े राजा।"

"हम झूलन को डिंडौरी ले चलेंगे, मंडल काका।"

"अजी हम अभी उपाय करेंगे, आनन्द राजा।" खिलावन ने कहा।

रेशमा घबराई हुई आनन्द की बगल में खड़ी थी।

मंडल ने आनन्द और रेशमा के लिए एक तरफ बैठने की जगह बनाते हुए कहा, "आप लोगों ने बहुत कष्ट किया।"

"सोम और चुन्नू मियाँ भीम कुन्डी गये हुए हैं हमारे पन्नालाल जी के साथ; रेशमा जी की तबीयत अच्छी नहीं थी, इसलिए वे भीमकुण्डी न जा सकीं।"

दोपहर का सूर्य सिर पर था; प्रत्येक स्त्री-पुरुष के चेहरे पर विषाद की रेखाएँ उभर रही थीं। "काठ की चौकी आओ!" खिलावन पण्डा ने आदेश दिया, "और चावल भी लाओ।"

मंडल झोंपड़े से एक चौकी और चावल की मटकी निकाल लाया; चौकी पर मटकी के चावलों की ढेरी बनाते हुए खिलावन ने उँगली से उस पर टेढ़ी-मेढ़ी रेखाएँ बनाईं जिनसे लगता था कि अभी-अभी साँप चावल की इस ढेरी पर से गुजरा है।

रूपी की माँ चावल की मटकी लेती आई; अलग-अलग चावल और दाल भी, एक जलता हुआ दीया भी। खिलावन ने हाथ बढ़ाकर दाल और चावल पानी की मटकी में डाल दिये, फिर उठकर झूलन के कान में मन्त्र पढ़ना आरम्भ किया।

"यह है भार-बाँधनी मन्त्र, रेशमा!" आनन्द ने धीरे-से रेशमा के

कान में कहा।

रेशमा खामोश बैठी थी जैसे उसे काठ मार गया हो।

आनन्द के सम्मुख बहुत-से भार-बाँधनी मन्त्रों के छवि-संकेत उभरे; इधर उसने भार-बाँधनी मन्त्रों का अपना एक लेख एक पत्रिका में प्रकाशन के लिए भेजा था। रेशमा का मन लगाये रखने के लिए आनन्द ने कहा, "सुनो, रेशमा! इन लोगों के एक भार-बाँधनी मन्त्र की उठान कुछ इस प्रकार है:

मैं बाँध रहा हूँ विष के पाँव
सोलह नदियाँ, सात समुद्र, बारह गाँव

कविता की दृष्टि से तो इसमें पूरा चित्र उभरता है।"

रेशमा ने इधर कुछ ध्यान न दिया; आनन्द को रेशमा की यह उपेक्षा हृदय-वेधक प्रतीत हुई।

"मैं तो नहीं मान सकती कि मन्त्र से विष उतर सकता है, आनन्द!" रेशमा ने आनन्द के कान में कहा।

नीम की टहनी हिला-हिलाकर खिलावन विष को झाड़ने का यत्न कर रहा था। पास से एक बुड्ढा बोला, "विष उतारने से पहले तो झूलन को झोंपड़े में कैसे ले जाया जा सकता है?"

"अरे दादा! यह तो बहुत बड़ा दोष होगा!" कोई युवक पास आकर कह उठा, "इससे तो साँप दोबारा आकर काट लेता है रोगी को।"

रूपी के मुख पर विषाद की रेखाएँ सबसे अधिक गहरी थीं; उसने एक बार भी आनन्द और रेशमा की ओर पलटकर देखने की चेष्टा न की।

"सभी साँप तो विषैले नहीं होते," आनन्द ने रेशमा के कान में कहा।

अभी तक खिलावन के किसी मन्त्र ने अपना प्रभाव नहीं दिखाया था; रूपी की माँ कोई बूटी उबालकर ले आई। थोड़ी-सी दवा झूलन के मुँह में टपकाई गई, थोड़ी कान में डाली गई।

खिलावन बराबर मन्त्र पढ़ता रहा।

"शायद यह वही मन्त्र है जो सोम को भी बेहद पसन्द है, रेशमा !" उसकी ये पंक्तियाँ ही लो ?

ओ नाग देवता ! घर के आँगन में लहरा
ओ नाग देवता धरती से पाताल में जा

हाँ तो रेशमा, मैंने मूल मन्त्र को अनुवाद में ज्यों का त्यों रखने का यत्न किया है।

"अजी रहने दीजिए ये सब टोने-मन्त्र ?" रेशमा ने उपेक्षा से कहा, "हमारे गाँव में, जहाँ आपकी ननिहाल है, इन टोने-टोटकों का कोई काल नहीं, न मुझे मोंहेंजोदड़ो में ही इनकी कोई कमी खटकती है, और सच पूछो तो इस जादू-टोने में मेरा कोई विश्वास नहीं।"

"फिर भी टोने-टोटके में कविता का रस तो लिया ही जा सकता है, रेशमा !"

"तुम्हें कविता के रस की पड़ी है !" रेशमा ने व्यंग्य कसा, "उधर एक इन्सान मर रहा है !"

झूलन उसी तरह जमीन पर पड़ा था; रूपी उसी तरह उसपर झुकी जा रही थी; कभी वह खिलावन की ओर देखने लगती जिसका मन्त्र कोई प्रभाव नहीं दिखा रहा था।

सहसा एक युवक भीड़ से उठकर जमीन पर साँप की तरह रेंगने लगा।

"मैं ठाकुरदेव का सेवक हूँ !" वह युवक आगे आकर बोला, "मैं सब ठीक कर दूँगा।"

झूलन पहली बार हिला।

"कै लहर ?" खिलावन ने झूलन को खड़ा करने का यत्न करते हुए उसके कान में आवाज दी।

"ति—र—स—ठ !" झूलन ने जैसे हकलाकर उत्तर दिया।

झूलन को फिर लिटा दिया गया।

"विष की बहुत-सी लहरें तो उतर चुकी हैं।" खिलावन ने विश्वास

दिलाया।

थोड़ी देर बाद खिलावन ने दोबारा झूलन को खड़ा करने का यत्न करते हुए उसके कान में कहा, "कै लहर ?"

"प—चा—स !"

विष तेजी से उतर रहा था; वह युवक, जो साँप की तरह रेंग रहा था, ठाकुरदेव के प्रभाव से ऐसा कर रहा था, जैसा कि इन लोगों का विश्वास था। वह खिलावन के समीप आकर बोला, "ठाकुरदेव की आज्ञा से झूलन अच्छा हो जायगा।

"कै लहर ?"

"बी—स !"

रूपी ने सुना तो उसका विषाद कम होने लगा; उसके मुख पर मुस्कान अब भी नज़र न आ सकती थी। उसने पहली बार आनन्द की ओर देखा और आँखों-ही-आँखों में आभार माना। रेशमा उसे अच्छी न लगी; उसका यहाँ आना उसे अनावश्यक प्रतीत हुआ।

"कै लहर ?"

"द—स !"

खिलावन ने नौ बार नीम की टहनी झूलन के चेहरे के गिर्द घुमाई और पूछा, "कै लहर ?"

"ए—क !"

झूलन ने आँखें खोल दीं; वह उठकर बैठ गया। जैसे उसे कुछ ज्ञात न हो कि मंच पर नाटक का कितना महत्वपूर्ण दृश्य खेला जा चुका है; उसने उठकर मंडल, रूपी की माँ और खिलावन के पैर छू लिये; उसने आनन्द और रेशमा के पैर छूना भी आवश्यक समझा।

"अरे भैया! वह जो हमारे पुरखा कह गये हैं न—"

"क्या कह गये हैं हमारे पुरखा ?"

"अरे यही कि साँपिन मरे हुए साँप के पास आती है और उसकी पुतली

में झाँककर देखती है, हाँ तो भैया जी, साँपिन को साँप की पुतली में उस आदमी की तसवीर नज़र आ जाती है जिसने साँप को मारा हो; बस उसी दिन से साँपिन उस आदमी की दुश्मन होकर डोलती है और कभी तो वह उस आदमी को डस ही लेती है।"

"साँपिन बदला अवश्य लेती है।"

"लाख बदला लेती रहे साँपिन! खिलावन पण्डा के मन्त्र जुग-जुग जियें।"

लोगों की बातों में पुराने अनुभव का आरोह अवरोह सुना जा सकता था; भीड़ छिदरी होती गई।

खिलावन जाते-जाते कह गया, "झूलन को अभी सोने मत देना।"

आनन्द ने मंडल से कहकर थोड़ी आग मंगवाई, जेब से निकाल कर आग पर एक ताँबे का पैसा रख दिया। जब यह पैसा खूब तप गया, उसे चिमटे से उठाकर झूलन के टखने पर रख दिया जहाँ उसे साँप ने काट खाया था, और हँसकर कहा, "इसे हमारा टोना समझ लो, झूलन!"

पैसा रखते ही झूलन ने हलकी-सी सीत्कार की। रूपी जैसे अभी तक विषाद से पूरी तरह उभर न सकी हो।

आनन्द ने झूलन से रेशमा का परिचय कराते हुए कहा, "झूलन रूपी का मंगेतर है, रेशमा!"

"यह तो अच्छा हुआ कि झूलन बच गया!" रेशमा मुस्कराई।

रेशमा की मुसकान देखकर रूपी का ठाठ मार गया।

२८

रेशमा और पन्नालाल बैलगाड़ी में बैठकर चले गये; आये थे पेंड्रा रोड के रास्ते, गये डिंडौरी के रास्ते, क्योंकि वे बहुत जल्दी में थे। जितने दिन वे यहाँ रहे, आनन्द की पुरानी स्मृतियाँ हर्ष-विषाद की पगडंडियों पर घूमते पथिकों की तरह उसके दृष्टि-पथ पर घूमती रहीं; जीवन जैसे एक मादक गान बनता जा रहा था। यह ठीक था कि उस 'गुड़िया' पर कभी उसका अधिकार नहीं रहा था, फिर भी गुड़िया तो गुड़िया है। उसे कभी स्वप्न में भी ख्याल न आया था कि रेशमा उसे मिलने का बहाना ढूँढ निकालेगी; अब यह भी कैसा संयोग रहा है कि रेशमा के पति पन्नालाल को मोहेंजोदड़ो की अतिरिक्त खुदाई के सिलसिले में मोहेंजोदड़ो में नौकरी मिल गई; उसने ठीक ही सोचा होगा कि आनन्द तो अब मोहेंजोदड़ो लौटकर आने से रहा, लेकिन यह क्या बुरा है कि मोहेंजोदड़ो के क्यूरेटर को खुश करने के लिए करंजिया की यात्रा कर डाली जाय। फिर उसे ख्याल आया कि यह सब रेशमा के कारण सम्भव हो पाया; विवाह के पश्चात् रेशमा ने अनुरोध किया होगा कि करंजिया ही 'हनी मून' के लिए उपयुक्त स्थान है,

वहीं चलना चाहिए। चलिए रेशमा 'हनी मून' मना कर चली गई, पुरानी स्मृतियों पर रंग की कूची फेर गई, धुँधली रेखाओं को चमका गई; कुछ ले गई, कुछ छोड़ गई। उदास होते पौधे की जड़ों में एक गगरी जल डाल गई रेशमा; कोरे कागज पर अपना नाम लिखकर छोड़ गई मेरे ननिहाल की 'गुड़िया'; यह स्मृति का कागज़ तो कोरा ही रहता है—भले ही इसे शत-शत स्मृतियाँ छू जायँ, नूतन छवि-संकेत के लिए इस कागज पर सदा स्थान रहता है।

एक दो दिन तो उसका मन बुरी तरह खिन्न रहा, जैसे कुछ भी अच्छा न लग रहा हो; जैसे चट्टान सूनी रह गई हो, चट्टान पर दूर से आ बैठने वाली कबूतरी जिधर से आई उधर को उड़ गई; अब कबूतरी को उड़ने से रोकने की क्षमता चट्टान में कहाँ से आयगी ?

फिर वह सँभल गया। जितने दिन वह 'गुड़िया' अपने पति के साथ करंजिया में रही, मैं कला-भारती का काम भी अच्छी तरह नहीं देख सका। अब जिस कार्य के लिए मैं यहाँ आया, उसे भुलाकर रहना तो न रहने के समान है। अपने ध्येय को भूलकर जीना भी कोई जीना है ? अभी तो मेरा स्वप्न अधूरा है, अधबना है; अभी तो कला-भारती को प्रगति-पथ पर अग्रसर होना है; अभी तो इस कली को फूल बनना है। कला-भारती की डगर है सृजन की डगर; इसे बहुत-कुछ कर दिखाना है, आदिवासियों के जीवन में एक नई ही स्फूर्ति का संचार करना है।

उसने विशेष रूप से सोम की चित्रकला की कक्षा में अधिक-से-अधिक दिलचस्पी लेना आरम्भ किया। यह देखकर वह चकित रह जाता कि बढ़ई-गिरी और लोहे के काम में अगवाई करने वाले बच्चे तूलिका उठाकर चित्र बनाते समय भी वही उत्साह दिखाते; जैसे इन बच्चों को जातीय जीवन की नई स्थापना का स्वप्न छू गया हो।

कला-भारती का कार्यक्रम सृजन-प्रतिभा की रश्मियों का कार्यक्रम था। अब आदिवासी समाज पर विषाद की छाया का अन्त होकर रहेगा; वे स्वयं

अपने घर के स्वामी बनेंगे एक दिन, उन्हें बाँधकर रखने वाली हथकड़ियाँ और बेड़ियाँ टूट जाएँगी। मालगुजारी जुल्म की शिकार नहीं रहेगी आदिवासी जनता; 'लाल पगड़ी' वालों के भय से सहमे-सहमे से नहीं रहेंगे ये बालक, जो आज कला-भारती के मुक्त वातावरण में राष्ट्रीय चेतना और प्रतिभा का पाठ पढ़ रहे हैं, आतंक के कंकाल इन बच्चों के मस्तिष्कों पर दस्तक नहीं दे सकेंगे; हीन भाव से इन्हें लेना-देना न होगा।

इधर लालाराम ने भी कला-भारती के लिए बहुत सहयोग दिया था; जब से उसने शराब के ठेके से मुँह मोड़ लिया था, उसमें एक नई चेतना आ गई थी। उसने करंजिया बाजार के प्रत्येक दुकानदार से चन्दा जमा किया; सबसे पहले तो उसने स्वयं पाँच हजार रुपये की रकम पेश की थी और वह डिंडौरी से भी कुछ रुपया जमा कर लाया था। इधर वह जबलपुर जाने की सोच रहा था। उसका ख्याल था कि कला-भारती के लिए टीकरा टोला वाली जमीन खरीद ली जाय; हो सके तो जबलपुर के पादरियों से टीकरा टोला वाला बंगला भी खरीद लिया जाय। अपनी खेती की जमीन की आय से उसकी गुजर हो जाती थी। उसने शेष जीवन आदिवासियों के उत्थान में लगाने का फैसला कर लिया।

आनन्द जानता था कि थानेदार और कम्पाउंडर सदा लालाराम को छेड़ते हुए कहते हैं—अजी लालाराम जी, नौ सौ चूहे खाकर बिल्ली हज्ज करने चली! वाह वाह, लालाराम जी! धन्य हैं आप, धन्य है आपकी देशभक्ति—यह आदिवासी भक्ति!...

आनन्द यह भी जानता था कि लोअर प्राइमरी स्कूल का हैडमास्टर भी लालाराम पर व्यंग्य कसते हुए कहा करता है—अजी लालाराम जी, आप कब तक आनन्द के रंगे सियार बने रहेंगे?...अब हैडमास्टर साहब को मुझसे ईर्ष्या है तो हुआ करे; मुझे अपना कार्य करते रहना चाहिए। हृदय की विशालता होनी चाहिए; दूसरों के प्रति उदारता ही प्रगति में सच्ची सहायक हो सकती है।

लालाराम की देशभक्ति और आदिवासी भक्ति के प्रति तो कासिमी साहब और बेगम कासिमी को भी सन्देह था; जब भी वे आनन्द से मिलते सदा व्यंग्य कसते हुए कहते, "कहिए आनन्द जी, आपके लैफ्टिनेंट गवर्नर का क्या हाल है?"

आनन्द बड़ी निष्कपटता से कहता, "कौन से लैफ्टिनेंट गवर्नर, कासिमी साहब?"

"अजी वही लालाराम?"

इस पर जोर का कहकहा पड़ता, लेकिन आनन्द का विश्वास था कि शीघ्र ही कासिमी साहब और बेगम कासिमी को लालाराम की सचाई पर विश्वास हो जायगा। क्योंकि कोई आदमी हमेशा बुरा ही नहीं होता; आदमी के जीवन को, उसके जीवन के दृष्टिकोण को देखना होता है, एक-बार किसीके सम्बन्ध में अपनी राय बनाकर हमें हठपूर्वक यह नहीं सोच लेना चाहिए कि हम अन्तिम निर्णय पर पहुँच चुके हैं।

"अजी कासिमी साहब, लालाराम के पिछले कारनामों को भूल जाइए!"

"तो उनके नये कारनामे कौनसे हैं," पास से बेगम कासिमी भी कह-कहा लगातीं।

एक दिन आनन्द लालाराम को साथ लेकर फारेस्ट रेंज क्वार्टरों में गया; सूर्य अस्त होने में थोड़ी देर थी। दोनों मियाँ-बीवी चाय पर बैठे थे। उन्होंने उस दिन लालाराम का खूब स्वागत किया; लालाराम और आनन्द चकित रह गये। उस दिन की बातों का विषय था मालगुजार, क्योंकि इधर मालगुजार ने पुलिस की मदद से किसानों पर भारी जुल्म शुरू कर रखा था।

रात उतर रही थी। आनन्द ने कहा, "अच्छा कासिमी साहब, इजाजत दीजिए!"

लालाराम ने चीखते हुए एक व्यक्ति को इधर आते देखकर कहा, "वह लीजिए हमारे मालगुजार साहब के जुल्म की जिन्दा मसाल। टीकरा टोला का समलू आज मालगुजार के हाथों पिटकर आ रहा है!"

२६

"भीमकुण्डी की सब से बड़ी विशेषता तो यही है कि यहाँ नर्मदा बहती है, वैसे यह नाम सौ नामों में एक नाम है, करंजिया तो कभी इसके मुँह नहीं आ सकता। गारकमट्टा हो चाहे किरंगी, रैतवार हो चाहे खन्नात—ये तो कोई नामों में नाम नहीं; तरेरा बाबली और बोंदर—ऐसे-ऐसे ऊट-पटाँग नामों के बीच चमकती है भीम-कुण्डी; खैर अमरकंटक और कपिलधारा से तो भीमकुण्डी का भी कोई मुकाबला नहीं, फिर भी भीमकुण्डी का अपना चमत्कार है।

"यही वह स्थान है जहाँ भीमसेन ने अन्तिम बार नर्मदा को रोकने की कोशिश की थी। अनुमान तो करो कि किस तरह एक वीर पुरुष के मन में यह विचार आया कि वह नदी को रोक कर खड़ा रहे; अजी हज़ार बार तो भीमसेन ने कपिलधारा से पीछे अमरकंटक के रास्ते में नर्मदा को रोकना चाहा; कपिलधारा पर तो भीमसेन की टाँगों के बीच से यह नदी पूरी शक्ति से निकल भागी। यह सोचकर कि नर्मदा ने चालाकी से काम लिया, इतनी ऊँची जगह से तो जल नीचे गिरेगा ही, अब मज़ा

आ जाय यदि मैं नर्मदा से भी अधिक वेग से आगे बढ़कर इसका पथ रोक लूँ, भीमकुण्डी और कपिलधारा के बीच भी कोई सौ स्थानों पर भीमसेन ने आड़े आकर इसका पथ अवरुद्ध करना चाहा; नदी की चंचल धारा निरन्तर आगे बढ़ती रही; भीमकुण्डी को भीमसेन ने अपना अन्तिम मोर्चा बनाया।

"भीमकुण्डी को देखे बिना यह कल्पना करना सहज नहीं कि भीमसेन ने इसी को अपनी होड़ का अन्तिम स्थान क्यों बनाया। हाँ तो नर्मदा ने मछली का रूप न धारण कर लिया होता तो भीमसेन ने नर्मदा को खत्म कर दिया होता। जब भीमसेन ने देखा कि नर्मदा यहाँ से भी आगे बढ़ गई, उसने एक प्रकार की अवहेलना से नर्मदा की ओर देखा; फिर उसने काँवर उठा ली और इधर-उधर भटकने लगा।

"भीमसेन तो आज भी काँवर उठाये डोलता है, जैसे नर्मदा आज भी बहती है। भीमसेन के सम्बन्ध में अनेक कहानियां हैं, पर मुझे तो नर्मदा से होड़ लेने के प्रयत्न वाली कहानी ही पसन्द हैं; यही कहानी सुनते मेरा बचपन बीता—यहीं भीमकुण्डी में, जहाँ नर्मदा बहती है, जहाँ हमारे आदि पुरखा श्रीपाल की समाधि है; जहाँ हर साल मेला लगता हैं, जब आस-पास के सभी गाँव यहाँ आकर समाधि पर फूल चढ़ाते हैं। वे सदैव फूल चढ़ाते रहेंगे; मुझे तो लगता है कि भीमकुण्डी के मेले में भीमसेन भी फूल चढ़ाने आता है।

"स्वयं अन्नदेवता ने गोंडों के सम्मुख श्रीपाल का परिचय देते हुए कहा था—'आज से श्रीपाल तुम्हारे राजा हैं!' अब किस की मजाल है कि श्रीपाल की समाधि पर फूल चढ़ाना छोड़ दे? श्रीपाल तो एक महापुरुष थे, भीमसेन का उनसे क्या मुकाबला? भीमसेन की तरह श्रीपाल ने मूर्खता नहीं की थी; उन्होंने सर्वप्रथम अमरकंटक में ही, जहाँ से नर्मदा का जन्म हुआ, नर्मदा को प्रणाम किया। एक प्रकार से श्रीपाल ही नर्मदा के आदि पुजारी थे; नर्मदा ने श्रीपाल को आशीर्वाद दिया, उसी ने अन्नदेवता

को बुलाकर आदेश दिया—'जाओ अपने गोंडों से कहो कि श्रीपाल को अपना नेता मानें नेता क्यों राजा !' हाँ तो श्रीपाल गोंडो के आदि राजा हुए।

"श्रीपाल ने गोंडो के लिए क्या न किया ? पहले ये लोग कहाँ हल चलाते थे ? पहले तो सब बैगा थे। खैर बैगा लोग तो आज भी जंगल जलाकर खेती करते हैं; इसे वे 'बेवार' कहते हैं, वही जँगल के एक टुकड़े को आग लगा दी, फिर राख ठंडी होने पर उसमें बीज बो दिया, वर्षा हो गई और खेती लहलहाने लगी, फसल पकने पर उसे काट लिया; पर श्रीपाल ने सर्वप्रथम बैगों से कहा कि मैं तुम्हारे लिए हल बनाता हूँ। हल बन-कर तैयार हो गया। यह श्रीपाल का चमत्कार था। दूसरा चमत्कार यह था कि श्रीपाल ने बैगों को हल चलाने के लिए तैयार कर लिया, बस मुट्ठी भर लोग ऐसे थे जो हल चलाने के लिए तैयार न हुए, वे आज भी बैगा कहलाते हैं; बाकी लोग बैगा से गोंड बन गये। श्रीपाल का हल तो दूर-दूर तक जा पहुँचा, पर श्रीपाल ने अपनी आयु भीमकुण्डी में ही गुज़ारी। यहीं उनकी समाधि बनी।

"जब श्रीपाल की कई पीढ़ियाँ बीत गई और पिताजी ने भीमकुण्डी छोड़कर डिंडौरी में रहने का विचार किया तो शायद यह नहीं सोचा था कि वे कितनी बड़ी भूल कर रहे हैं। मैं उस समय बालक था, मैं उन्हें कैसे समझाता कि भीमकुण्डी छोड़कर डिंडौरी जा बसने का विचार कितनी बड़ी भूल है।

"मेरी कहानी भीमकुण्डी से शुरू हुई; भीमकुण्डी पर ही इसका अन्त होगा। मैं न बहुत नरमी बरतूँगा, न बहुत सख्ती; मैं अपने आदि-पुरखा श्रीपाल के चरण-चिह्नों पर चलूँगा।

"लेकिन वह जमाना दूसरा था। अब तो डण्डे का जमाना है। अजी सिर्फ डण्डे से भी तो काम नहीं चलता। हर काम रसूख़ से होता है। मैं डण्डे और रसूख़ से बढ़कर सेवा को समझता हूँ। मैं इन लोगों की सेवा को अपना धर्म मानता हूँ। लेकिन मैं इन लोगों से मालगुज़ारी माँगना

तो नहीं छोड़ सकता। आखिर मैं इनसे लेकर इन्हें देने की इच्छा रखता हूँ। इनसे लूँगा नहीं तो इन्हें दूँगा कहाँ से?...”

धनपाल ने अपनी पुस्तक की हस्तलिखित प्रति इधर तीन महीनों के लम्बे परिश्रम से तैयार की थी; इसे आनन्द को दिखाये, यह विचार उसके मन में बिजली के कोंदे के समान आया। यही सोचकर उसने आनन्द को निमन्त्रण भिजवाया। पुस्तक के प्रथम अध्याय के आरम्भिक पृष्ठ उसने बड़ी ऊँची आवाज़ से पढ़े और सोच लिया कि आनन्द के सम्मुख किस प्रकार बात आरम्भ करेगा और स्पष्ट शब्दों में कह देगा—“अजी मैं कोई लेखक नहीं हूँ, न मैं कोई महापुरुष हूँ कि दुनिया को मेरी आत्मकथा की आवश्यकता हो, फिर भी मैंने अपनी कहानी अवश्य लिख डाली; इसे इधर-उधर से पलटकर देखिए और बताइए कि यह आपको कैसी लगती है। प्रकाशक मिले न मिले, मैं स्वयं ही इसे प्रकाशित करा सकता हूँ, पर मैं चाहता हूँ कि प्रकाशित कराऊँ तो इस पर किसी विद्वान् के ‘दो शब्द’ अवश्य प्राप्त करूँ और यदि आप इस तुच्छ पुस्तक की भूमिका लिखना स्वीकार कर लें तो मेरी कोशिश चमक उठेगी।”

आनन्द आता ही होगा, आध घंटा ऊपर हो गया, यह सोचकर वह अपनी पुस्तक के प्रथम अध्याय के आरम्भिक पृष्ठ बोल-बोलकर पढ़ने लगा, जैसे किसी नाटक की रिहर्सल की जा रही हो।

अपनी पुस्तक में धनपाल ने अपने व्यक्तित्व को खूब बढ़ा-चढ़ाकर प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया था; विशेष रूप से उसने शास्त्रीय संगीत की प्रशंसा करते हुए यहाँ तक लिख दिया था—‘गोंडो का संगीत तो कभी शास्त्रीय संगीत की परमपाविनी धारा से होड़ नहीं ले सकता, लेगा भी तो उसे वैसे ही मुँह की खानी पड़ेगी जैसे भीमसेन को नर्मदा से होड़ लगाकर हार माननी पड़ी थी।’

उसकी शिक्षा अधिक नहीं हो पाई थी; वह तो मैट्रिक की परीक्षा भी नहीं दे पाया था। घर पर ही शिक्षा का प्रबन्ध किया गया था, पिताजी

ने विशेष रूप से अध्यापक रखे। पर परीक्षा के नाम पर तो धनपाल का रक्त सूखने लगता। जब भी परीक्षा के दिन समीप आते, उसे ज्वर हो जाता। चलिए अगले वर्ष दी जा सकती है परीक्षा, यह सोचकर सन्तोष कर लिया जाता। फिर पिताजी ने ज़ोर देना छोड़ दिया। मतलब तो शिक्षा से था; वह चल ही रही थी। पिताजी जानते थे कि उनके धनपाल ने कहीं नौकरी तो करनी नहीं, घर की ज़मीन इतनी है कि मालगुज़ारी की आमदनी से अपना और अपने सौ मित्रों का पेट पाल सके।

धनपाल को शिकार का भी बहुत शौक था; अपनी आत्मकथा में उसने अपने छोटे-छोटे शिकारों को भी खूब नमक मिर्च लगाकर प्रस्तुत किया था। अचकनों की बीस क़िस्में गिनाई थीं; जूतों की सौ क़िस्में। मजलसी आदाब की चर्चा करते समय उसकी लेखनी यों बह निकली थी जैसे एक कलाकार अपने रहन-सहन का सच्चा चित्र अंकित कर रहा हो। लतीफों को नगीनों की तरह जड़ा गया था। इन लतीफ़ों में कुछ स्थानों पर तो कुछ ऐसा वातावरण प्रस्तुत किया गया था कि पढ़ने वाला दंग रह जाय। लार्ड लिनलिथगो से अपनी भेंट को उसने यों लिखा था कि पाठक समझे कि लार्ड साहब की दृष्टि में भीमकुण्डी के धनपाल का वह स्थान था जो हैदराबाद के नवाब का भी नहीं था। लार्ड साहब ने नज़ाम से धनपाल का परिचय कराते हुए कहा था, "धनपाल रहता है डिंडौरी में, कहता है यही कि वह भीमकुण्डी का है; हम धनपाल का भीमकुण्डी ज़रूर देखना माँगटा!" और लार्ड लिनलिथगो ने अपना वचन पूरा कर दिखाया था। भीमकुण्डी के इसी पुराने मकान में लार्ड लिनलिथगो और नज़ाम को ठहराया गया था, जहाँ आने के लिए आज आनन्द को निमन्त्रण भिजवाया गया।

आनन्द के पहुँचने तक गोधूलि समय हो गया; धनपाल ने पहले उसे श्रीपाल की समाधि के दर्शन कराये, जो नर्मदा से ज़रा हटकर थी; फिर वह नर्मदा के किनारे खड़ा भीमसेन और अन्नदेवता की कहानियाँ सुनाता रहा।

रात को डिनर का शाही ठाठ था; ड्राई- बैटरी की मदद से बिजली का बल्ब जलाया गया था। टेबल लैम्प के समीप बैठे-बैठे उसने अपनी हस्त-लिखित पुस्तक 'जय भीमकुण्डी' खोलकर आनन्द के हाथ में थमा दी।

"तो आप लेखक भी हैं?" आनन्द ने छूटते ही कहा, "मैं तो आप को मालगुज़ार ही समझता था!"

मैं वृद्ध हो रहा हूँ,
वसन्त की ओर निहारते शर्माता हूँ;—
ये फूल बीते दिनों की याद दिला जाते हैं;
इन पत्तियों को मेरा धन्यवाद, ये मुझ से परिचित हैं;
ये झुककर मेरे केशों को सहलाती हैं, सँवारती हैं, चूमती हैं।

× × ×

मुझे स्मरण है हमने अपने प्रासाद से विहँसते वसन्त को निहारा था,
कौन चलेगा आज मेरे साथ, छूछा है अतीत;
सपना है सब !

× × ×

कितने अश्रु,—
छलक रहे मेरे गालों पर !
हृदय-वेदना पढ़ो न इनमें,
वंशी पर न नचाओ इन्हें,

टूक-टूक हो जायगा दिल

—चीनी कवि ली-हो-चू [जन्म : ६३० ई०]

तुम्हारी तहज़ीब अपने खंजर से आप ही खुदकुशी करेगी,
जो शाखे नाज़ुक पै आशियाना बनेगा नापायदार होगा ।[1]

—इक़बाल

सार्थक जनम आमार जन्मेछि ए देशे ।
सार्थक जनम मा गो, तोमाय भालोबेसे ॥
जानिने तोर धन रतन, आछे कि ना रानीर मतन,
शुधू जानि आमारा अंग जुड़ाय तोमार छायाय एसे ॥
कोन बने ते जानिने फूल गन्धे एमन करे आकुल,
कोन गगने ओठे रे चाँद एमन हासि हेसे ।
आँखि मेले तोमार आलो प्रथम आमार चोख जुड़ालो
ओई आलोतेइ नयन रेखे मूदबो नयन शेषे ॥[2]

—रवीन्द्रनाथ ठाकुर

बिरहा गावउँ बाघ की नाईं दल बादल घहराय,

---

१ तुम्हारी सभ्यता अपनी कटार से स्वयं आत्महत्या करेगी, जो घोंसला नाज़ुक टहनी पर बनेगा अस्थिर होगा ।

२ सार्थक है मेरा जन्म जो इस देश में उत्पन्न हुआ, सार्थक है मेरा जन्म, हे माँ, जो मैं तुम्हें प्यार करता हूँ । मैं नहीं जानता कि तुम्हारे पास रानी के समान धन रत्न हैं या नहीं, मैं तो केवल इतना ही जानता हूँ कि तुम्हारी छाया में आकर मेरे अंग-अंग जुड़ा जाते हैं ! मैं नहीं जानता कि और किसी वन में फूल अपनी सुगन्ध से इस प्रकार आकुल कर देते हैं, यह भी नहीं जानता कि और किसी गगन में चाँद ऐसी मधुर हँसी हँसने वाला उठता है या नहीं; तुम्हारे प्रकाश में मैंने आँखें खोलीं और वे जुड़ा गईं । उसी आलोक में आँखें बिछाये रहूँगा और अन्त में उन्हें मूँद लूँगा ।

सुनि के गोरिया उचकि उठि धावै बिरहा क सबद ओनाय ![1]

—सुलतानपुर ज़िले के अहीरों का बिरहा

उपनिवेश शक्ति के बल-बूते पर प्राप्त किये गये थे। यूरोप को कच्चे माल और ग़ुलाम देशों की आवश्यकता है, और जीवन की एक शानदार कल्पना के साथ, हुकूमत गोरी जाति के भाग्य में लिखी जा चुकी है। लेकिन अगर शासक जातियाँ शान्तिप्रिय विचारों की शिकार होकर ग़ुलाम देशों को राजनीतिक स्वतन्त्रता दे देंगी तो वे लोग केवल यही कहेंगे कि अब हम यूरोप से मुक्त हैं।

—हिटलर

साम्राज्यवाद जीवन का स्थायी और कभी न बदलने वाला कानून है। इटली का भविष्य पश्चिम और उत्तर के साथ बँधा हुआ नहीं, बल्कि पूर्व और दक्षिण अर्थात् एशिया और अफ्रीका के साथ बँधा हुआ है।

—मुसोलिनी

स्त्री का वास्तविक स्थान घर के अन्दर है और उसका काम यह है कि वह थके हुए सिपाही के लिए मनोरंजन का साधन बने।

—गोयरिंग

जब संस्कृति का नाम लिया जाता है तो मैं अपना पिस्तौल उठा लेता हूँ।

—गोयबल्ज़

कबीरा खड़ा बजार में लिये लुकाटी हाथ,
जो घर फूँके आपना सो चले हमारे साथ।

—कबीर

डायरी के पन्नों में ऐसे-ऐसे अनेक उद्धरण टाँके गये थे; इनसे डायरी

---

१ बिरहा गाता हूँ बाघ के समान, मानो बादलों का दल गरज उठता है; उसे सुनते ही गोरी उचककर दौड़ पड़ती है और बिरहा की आवाज़ झुक जाती है।

लिखने वाले की उलझी हुई मनोदशा का पता चल जाता था। आनन्द बैठा इस डायरी के पन्ने उलटता रहा; कई बार झुँझलाकर उसने डायरी को परे रख दिया, पर इसे छोड़ने को भी मन न हुआ। खिड़की में बैठे-बैठे वह पूर्व की ओर खुलने वाली खिड़की से कभी नर्मदा का दृश्य देखने लगता, जहाँ सूर्य की किरणें सोना बखेर रही थीं; घूम-फिरकर उसकी दृष्टि डायरी के किसी पृष्ठ पर जम जाती!

यह धनपाल की डायरी मालूम होती थी; इतना तो स्पष्ट था कि उसे साहित्य का पुराना चसका है। एक पृष्ठ पर आनन्द की दृष्टि संस्कृत के एक श्लोक पर जम गई जिसके साथ उसका अनुवाद भी प्रस्तुत किया गया था :

अर्था गिरामपिहितः कश्चित्सौभाग्यमेति मरहट्टावधूकुचाभः।
नान्ध्रीपयोधर इवातितरां प्रकाशो नो गुर्जरीस्तन इवातितरां निगूढः॥

—एक संस्कृत कवि

—वही वाणी प्रशंसनीय है, जिसमें अर्थ कुछ छिपा हो कुछ प्रकट, जैसे महाराष्ट्र की स्त्रियों के स्तन; आन्ध्र स्त्रियों के स्तन के समान बिल्कुल प्रकट रहना भी अच्छा नहीं, और न गुजरात की स्त्रियों के समान छिपा रहना ही उचित है।

आनन्द की आँखों में चमक आ गई; वह कहना चाहता था कि उस अज्ञात संस्कृत कवि ने तो न जाने किस झोंक में आकर यह श्लोक लिख डाला था, पर यह डायरी लिखने वाले महोदय का भी तो कुछ कम कमाल नहीं जिसने इसे यहाँ अर्थसहित अपलब्ध किया।

फिर कुछ पृष्ठों पर संस्कृत के अज्ञात कवियों की कुछ सूक्तियों में कहा गया था :

—यह वस्त्र मेरे पिता के शरीर का भूषण रहा; जब यह नया था, मेरे पितामह ने इसे पहना था। अब मेरे पुत्र और पौत्र इसे पहनेंगे, पुष्प के समान मैं इसे सँभाल कर रखता हूँ।

—वृद्ध और अन्धा पति खाट पर पड़ा है; छप्पर में थून ही थून

शेष हैं, चौमासा सिर पर आ गया, परदेश गये पुत्र का समाचार नहीं आया; बूँद-बूँद एकत्र किये तेल की कुल्हिया भी फूट गई : व्याकुल होकर चिन्ताग्रस्त सास अपनी पुत्र-वधू को गर्भ-भार से मन्द देखकर रो पड़ी।

—शिशुओं पर भूख के मारे मुर्दनी-सी छा गई, बाँधव विमुख हो गये, हँडिया के मुँह पर मकड़ी ने जाला तान दिया। यह सब तो मुझे कष्ट नहीं देते, जितना पड़ोसिन का व्यवहार, जब मेरी पत्नी फटी साड़ी को सीने के लिए सूई माँगती है और पड़ोसिन व्यंग्य कसकर हँसती है, बिगड़ती है।

—पथ में किसी ने ऊँचे स्वर में 'लावा' कहा, गृहणी ने उदास मन से शिशु के कान बलपूर्वक बन्द कर दिये; मैं निरुपाय था, यह देखकर गृहिणी की आँखें भर आईं। यही तो मेरे हृदय का काँटा है, तुम ही इसे निकालने वाले हो, हे भगवान्!

आनन्द की आँखें भर आईं; उसे लगा कि यदि वहाँ मूल संस्कृत श्लोक भी उपलब्ध होते तो अधिक मज़ा आता। ये संस्कृत कवि अपने युग की सामाजिक चेतना को कितनी मार्मिकता से कविता में प्रस्तुत कर सके; वे कवि हमारे लिए अज्ञात ही सही, पर उनकी कविता कितनी प्राणवान है।

वह जल्दी-जल्दी डायरी के पन्ने पलटता रहा; उसने तय कर लिया था कि धनपाल के आते ही उसे बधाई देगा और कहेगा, "देखिए धनपाल जी, मैं अब आपको कौनसा पथ दिखा सकता हूँ; अपना पथ तो आप ढूँढ ही चुके हैं।"

पूर्व की ओर खुलने वाली खिड़की से नर्मदा की कलकलनिनादिनी जलधारा की ओर उसकी आँख उठ गई। उसे ख्याल आया कि भीमसेन ने भला कहाँ इस कलकलनिनादिनी का पथ अवरुद्ध करने की चेष्टा की होगी, उसने तो ऐसे ही मजाक किया होगा; आखिर भीमसेन भी इन्सान था, उसे इतना अधिकार तो था ही।

संस्कृत के अज्ञात कवियों की कविता के कुछ और उदाहरण एक स्थल

पर उसे नजर आये; उसकी दृष्टि वहीं टिक गई :

—पीढ़े कछुओं के समान तैरने लगते हैं, झाड़ू मछली के समान; कलछी साँप के समान चेष्टा करके शिशुओं को भयभीत करती है; गृहिणी सूप से आधा सिर ढक लेती है, दीवार गिरा चाहती है—रात्रि को मेरा घर जल से भरा पोखर ही तो बन जाता है !

—मेरे घर में नन्ही चुहिया जैसी तो है मूषिका, मूषिका जैसी है बिल्ली, बिल्ली जैसी कुतिया और कुतिया जैसी है गृहिणी—औरों की तो बात ही क्या ? प्राण छोड़ते शिशुओं को देखकर मकड़ी के जाले से ढके हुए मुँह वाली चूल्ही रो रही है—झींगर के स्वर से !

—रो मत मेरे बाल ! तेरा पिता आयगा और तुझे वस्त्र-विहीन देखकर तुझे वस्त्र और माला देगा : गृहिणी का यह वचन सुनकर चलने के लिए उत्सुक पथिक ने आह भरी और अश्रुप्लावित मुख के साथ पुनः लौट आया ।

—गुदड़ी का एक खण्ड मुझे दो या शिशु को तुम अपनी गोद में ले लो; तुम्हारे नीचे तो पयाल है, और इधर है नंगी धरती : घर में घुसे चोर ने दम्पति का वार्तालाप सुना तो वह किसी अन्य स्थान से चुराये हुए वस्त्र को उन पर फेंककर रोता हुआ बाहर निकल गया ।

जीवन की वेदना आनन्द की कल्पना पर थाप देती रही; भीमकुण्डी के मालगुजार के इस सुसज्जित ड्राइंग-रूम में इतनी रुलाने वाली कविता पढ़ने को मिलेगी, यह तो उसने सोचा भी न था । इस डायरी पर वह जी-जान से मुग्ध हो गया; डायरी के पन्ने जैसे उसे संकेत कर रहे हों । कितना गहन अनुभव था, कितनी गहरी टीस थी जो इन कवियों के हृदय में उठी थी । वस्तुतः जीवन का गहन अनुभव ही इन कवियों की वाणी को इतनी जोरदार अभिव्यक्ति दे सका था ।

नौकर चाँदी के टी-सेट में चाय रख गया था; नौकर कब आया, उसे मालूम ही न हुआ । हाथ लगाकर देखा, चाय गरम थी; अभी-अभी नौकर

चाय रखकर गया होगा। यह तो अच्छा न हुआ कि धनपाल अभी तक नहीं आया। चलिए, चाय तो आ गई। चाय के साथ नाश्ते का यह हाल था कि मिठाई अलग, नमकीन अलग; चलिए आज दोपहर का खाना भी नाश्ते पर ही मिल गया। मालगुजार का मेहमान होना मामूली बात तो नहीं, मालगुजार भी ऐसा जो अपने अधिकारों से काम लेता था, और यह घोषित करता था कि वह भीमकुण्डी का राजा है; कहता था, यह बात झूठ तो नहीं है कि अन्नदेवता ने अपने हाथ से गोंडों को श्रीपाल का हाथ थमाया था। ठाकुर तो थे ही श्रीपाल, वे नर्मदा मैया के आदि पुजारी भी तो थे; अब श्रीपाल की सन्तान यदि अपने आदि-पुरखा के समान नर्मदा मैया की भक्त नहीं रही तो क्या हुआ, आखिर है तो श्रीपाल की सन्तान!"

चाय के घूँट भरते हुए भी उसकी दृष्टि धनपाल की डायरी पर जमी रही; यह डायरी तो बड़े काम की चीज़ थी। इसमें दुनिया भर का मसाला जमा किया गया था। एक स्थल पर ये पंक्तियाँ उद्धृत की गई थीं :

तुम इस बरफ को देखते हो ?
मेरी प्रेयसी का शरीर उससे भी अधिक सफेद है।
तुम उस जिबा की हुई भेड़ के शरीर से बहते हुए रक्त को देखते हो ?
मेरी प्रेयसी के गाल उससे भी अधिक लाल है
तुम उस जले हुए वृक्ष के जले हुए तने को देखते हो ?
उसके केश उससे अधिक काले हैं
तुम जानते हो हमारे खान के मुल्ला किस वस्तु से लिखते हैं ?
उसकी स्याही उतनी काली नहीं है जितनी मेरी प्रेयसी की भवें
तुम इन दहकते हुए अंगारों को देखते हो ?
उसकी आँखें कहीं अधिक ज्योतिर्मयी हैं !

—एक करग़ी लोकगीत [राल्फ फॉक्स की सन् १९२५ में प्रकाशित 'पीपुल आफ दि स्टैपीज़' से]

उसके हृदय में राल्फ फॉक्स की याद ताज़ा हो गई; उसकी पुस्तक से ये पंक्तियाँ यहाँ उद्धृत करने के कारण उसे धनपाल पर गर्व का अनुभव हुआ। राल्फ फॉक्स स्पेन के युद्ध में फ्रांको की फॉसिस्ट शक्ति से लोहा लेते हुए मारा गया था। बहुत पहले, सन् १६२२ में राल्फ फॉक्स पूर्वी रूस के दुर्भिक्ष पीड़ित किसानों की सहायता के सिलसिले में यहाँ आया था? उसने तुर्किस्तान भर की यात्रा की थी और मध्य एशिया के करग़ियों के जीवन का तो उसने खूब अध्ययन किया था, जो भेड़-बकरियाँ पालने के लिए प्रसिद्ध थे, घोड़ों के प्रेमी थे और अपने ऊँटों पर आये दिन हरे-भरे स्थलों की खोज में खानाबदोशों का जीवन व्यतीत करते आये थे।

धनपाल की डायरी में करग़ी स्त्रियों के सौन्दर्य के सम्बन्ध में पंक्तियाँ भी तो उद्धृत की गई थीं।

'चौदह और बीस वर्ष की आयु के बीच करग़ी स्त्रियाँ देखने में ये बुरी नहीं होतीं, और मैंने बहुत-सी ऐसी स्त्रियों को भी देखा जो सम्भवतः रूसी रक्त के समिश्रण के कारण बहुत आकर्षक प्रतीत होती थीं। पर सुन्दर चमड़ी और स्वतन्त्रता-प्रिय व्यवहार दो विशेषताएँ हैं जिनके आधार पर स्त्री-पुरुष दोनों हमारे पश्चिमी नगरों के दुबले-पतले लोगों के मुकाबले में सूरमाओं की सी आकृति के स्वामी होते हैं। यात्रियों ने करग़ी स्त्रियों के चौड़े-चपटे चेहरों पर मजाक उड़ाया है और हमारी अपनी नाजुक और तीखी रेखाओं वाली स्त्रियों से मुकाबला करते हुए उन्हें भूत-प्रेतों की कथाओं में वर्णित जादूगरनियाँ सिद्ध किया है; वे लोग निस्सन्देह इसआलोचना के अधिकारी हैं जिनकी दृष्टि में बदबूदार पाउडर से सफेद किया हुआ चेहरा चपटे उरोजों, भिंची हुई कमर, ढलके कूल्हों और सूखी-साखी टाँगों की क्षतिपूर्ति कर सकता है। लेकिन कोई व्यक्ति सुन्दर शरीर, भरे हुए गोल उरोज, बलिष्ठ गठी हुई जाँघें (जिनका निर्माण प्रेम करने के लिए और शिशुओं की खातिर हुआ हो) और एक शक्तिशाली लम्बा शरीर (जिसकी गति में जंगली पशु का लचकीला सौन्दर्य उपलब्ध हो) पसन्द करता है तो

उसे करगी स्त्रियों को निश्चय ही सुन्दर मानना पड़ेगा...'

—राल्फ फॉक्स ['पीपुल आफ़ दि स्टेपीज़' में]

उसे यह सोचकर अवश्य झुँझलाहट हुई कि धनपाल की डायरी गोंड स्त्रियों के सम्बन्ध में एकदम मूक है।

डायरी के एक पृष्ठ पर एक संस्कृत कवि की यह सूक्ति उद्धृत की गई थी :

—अर्थ है तो पद-शुद्धि नहीं, पद-शुद्धि तो रीति नहीं, रीति है तो शब्द-विन्यास विचित्र-सा है; वह भी है तो नूतन कल्पना का अभाव है : रस के बिना काव्य का गहन पथ व्यर्थ है !

धनपाल का संस्कृत साहित्य की ओर विशेष अनुराग देखकर उसका मन पुलकित हो उठा। सूक्ति पर सूक्ति चली आ रही थी :

—महाकवियों की वाणी में भी वैसे ही एक अद्भुत विशेषता होती है जिनका केवल भान होता है, जैसे स्त्रियों के शरीर में गठन के अतिरिक्त लावण्य नाम की वस्तु भी होती है।

—दूसरों के श्लोकों को कण्ठस्थ करके चतुष्पाद श्लोक बनाने वाले कवियों का तो अभाव नहीं है, पर सागर की निरन्तर गतिमान लहरों के समान हृदय को वश में करने वाली और स्वच्छ वाणी किसी विरले कवि की होती है।

डायरी को उठाकर उसके स्थान पर रखते हुए उसने झुँझलाकर सोचा —अरे ये उद्धरण पर उद्धरण उतारते जाने की प्रवृत्ति भी तो दूसरों के श्लोक याद करने वाली बात है। यह सब जूठन है ! सौ बार जूठन, हजार बार जूठन ! इसमें डायरी लिखने वाले का अपना क्या है ? पर डायरी छोड़ने को भी तो मन न हुआ। उसने एक बार फिर डायरी उठा ली, और अब जो पृष्ठ निकला उस पर लिखा था :

—मननशील कवि लोग मनन के साथ सीसे के यन्त्र से ताना फैलाकर ऊन के सूत से वस्त्र बुनते हैं।

—यजुर्वेद, १९. ८०।

उसने सोचा कि वैदिक युग भी क्या युग था जब कवि लोग भी वस्त्र बुनने की कला में प्रवीण होते थे; वस्त्र बुनने के अनुभव से वे अपने छन्दों में भी सहायता लेते होंगे।

फिर एक स्थल पर लिखा था :

चोली मसकी, बन्द हैं टूटे, सिर के बाल परेशाँ है,
इस बिगड़े आलम पर तेरे लाख बनावट कुरवाँ है !

—जाफ़र अलीखाँ 'हसरत' लखनवी

वाह-वाह ! पर अब वैदिक युग तो है नहीं कि प्रेयसी की चोली भी स्वयं कवि के बुने हुए वस्त्र से ही तैयार होती हो !

फिर एक स्थल पर लिखा था :

कोई फ़सले गुल है यह बाग़बाँ कि चमन भी हो गये नेस्ताँ,
कहीं शोले गुल से भड़क उठे, कहीं बुलबुल आग लगा गई ![1]

—असग़र गोंडवी

वाह-वाह, कहीं बुलबुल आग लगा गई ! क्या बात है कवि की सूझ की।

उसकी दृष्टि तेजी से एक-एक पृष्ठ पर तैरने लगी; इन उद्धरणों में मोती निहित थे; अनुभव के मोती, जिन पर मानवता गर्व कर सकती थी।

एक पृष्ठ पर लिखा था :

—जो वस्त्र के अन्तिम छोर हैं, जो किनारियाँ है, जो ताना-बाना है, इन सबके साथ पत्नी के द्वारा बुना हुआ वस्त्र हमारे लिए सुखदायक हो।

—अथर्ववेद, १४. २. ५१।

वैदिक युग का यह चित्र कितना हृदय-स्पर्शी था !

अगले ही क्षण उसकी दृष्टि फिर एक पृष्ठ पर टिक गई :

---

१. हे माली, यह भी कोई वसन्त है, कि चमन भी सरकण्डों के जंगल बन गये; कही फूलों से शोले भड़क उठे, कहीं बुलबुल आग लगा गई।

रशक करती है मुझ पै इक दुनिया,
शेर हो, नग़मा हो, बहार हो तुम !

—अन्दलीब शादानी

कवि ने अपनी प्रेयसी की प्रशंसा में कमाल कर दिया ! जो भी देखता है कि कवि की प्रेयसी गान के सदृश है—वसन्त का मूर्तिमान रूप वह उससे ईर्ष्या तो करेगा।

इस बार उसने एकसाथ आठ-दस पृष्ठ पलटकर एक स्थल पर दृष्टि टिकाई :

राते प्रेयसीर रूप धरि
तुमि एसो छो प्राणेश्वरी
प्राते कखन देवीर वेशे
तुमि सुमुखे उदिले हेसे
आमी संभ्रम भरे रयेछि दाँड़ाये
दूरे अवनत शिरे
आजि निर्मल वाय शान्त उषाय
निर्जन नदी तीरे[1]

—रवीन्द्रनाथ ठाकुर

अन्तिम उद्धरण से उसे रूपी का स्मरण हो आया; उस दिन का स्मरण जब उसने अपना वचन निभाते हुए कला-भारती के पूर्वी द्वार में उसके साथ खड़े होकर उषा के दर्शन किये थे।

दोपहर हो गई, पर अभी तक मालगुज़ार साहब ने अपने अतिथि के पास आने की मर्यादा नहीं निभाई थी। कई बार आनन्द ने सोचा कि

१. रात के समय तो तुम प्रेयसी का रूप धरकर आई थीं, प्राणेश्वरी ! प्रातःकाल के समय कब देवी के वेश में हँसते-हँसते मेरे सामने आ गईं ? मैं संभ्रम अवस्था में सिर झुकाये खड़ा हूँ आज इस निर्मल वायु में, शान्त उषा के समय नदी-तट पर !

एक कागज़ पर दो शब्द लिखकर चला जाय, आखिर वह मालगुज़ार साहब का बन्दी तो है नहीं कि यहाँ से हिल ही न सकें; पर न जाने किस वस्तु ने उसे बाँध रखा था। यह डायरी तो ख़ैर उसे अब अधिक देर नहीं बाँध सकती थी। उसने इसे पूरी तरह पी लिया था; कई बार उसकी दृष्टि उद्धरणों के राजमार्ग को लाँघ गई थी, अनुभव की एक-एक वीथिका से होते हुए उसने कवि-कर्म के साक्षात दर्शन किये। अनेक कवियों, अनेक काव्य-शैलियों ने उसकी कल्पना का स्पर्श किया; जैसे स्वयं उन कवियों ने अपनी-अपनी वाणी अपने हाथ से यहाँ लिख रखी हो!

एक कागज़ उठाकर उसने धनपाल के नाम कुछ पंक्तियाँ लिखने की चेष्टा की, पर उसकी लेखनी न जाने क्यों चलने से इनकार कर रही थी।

नौकर भोजन ले आया, उसने बड़ी नम्रता से कहा, "रात से बड़े मालिक की तबीयत अच्छी नहीं; वे आराम कर रहे हैं। आप भोजन कर लें, एक घंटे के भीतर बड़े मालिक पलँग से उठ जायँगे।"

"तो मुझे अकेले ही ज़हर-मार करनी होगी!" उसने व्यंग्य कसा, अकेले तो पकवान भी अच्छे नहीं लगते!"

भूख खूब चमकी; मेजबान अनुपस्थित हो सही, चलिए अतिथि के लिए राजभोग आ गया, यह सोचकर वह भोजन पर हाथ चलाने लगा।

भोजन के पश्चात् वह तनकर धनपाल की प्रतीक्षा में बैठ गया। वह आज उसे खूब आड़े हाथों लेगा, क्योंकि यह तो शराफ़त न थी कि मेहमान को नौकरों के हवाले कर दिया जाय।

सहसा उसे ख़याल आया कि डायरी में धनपाल ने हिटलर और मुसोलिनी के घृणित विचार भी तो भर रखे हैं; गोयरिंग और गोयबल्ज़ की 'वाणी' को भी उसने वही स्थान दिया है जो चीनी कवि ली-हो-चू और रवीन्द्रनाथ ठाकुर की आवाज़ को, या फिर कबीर और इक़बाल की आवाज़ को; वस्तुतः हिटलर, मुसोलिनी, गोयरिंग और गोयबल्ज़ की 'वाणी' को स्थान देकर तो धनपाल ने प्रत्येक कवि का अपमान किया है जिसकी कविता

के उद्धरण धनपाल ने अपनी डायरी में एकत्र कर रखे हैं। फॉसिज़्म तो विश्व का सबसे बड़ा कोढ़ है; विश्व के समस्त सौन्दर्य को नष्ट करने की शपथ ले चुका है फॉसिज़्म ! इसी अन्धसत्तावाद के हाथों यह दूसरा विश्व-युद्ध छिड़ा, इसी की कृपा से आज विश्व पर यह युद्ध का संकट आया !

उसके जी में आया कि डायरी का वह पृष्ठ निकालकर उसके टुकड़े-टुकड़े कर डाले जिस पर हिटलर की 'वाणी' उद्धृत की गई थी;—यही व्यवहार मुसोलिनी, गोयरिंग और गोयबल्ज़ के उद्धरणों के साथ करने की इच्छा हुई। फिर उसे देश के उन लोगों का ध्यान आया जो भीतर-ही-भीतर फॉसिस्ट होते जा रहे थे; यहाँ ऐसे प्रतिक्रियावादियों की कमी न थी जो खुल्लम-खुल्ला कहते थे कि अभी हिन्दुस्तान आज़ादी के योग्य नहीं; और यदि आजादी दी भी जाय तो अभी पचास वर्ष तक तो यहाँ कोई हिटलर चाहिए या मुसोलिनी; ये लोग दिल-ही-दिल में हिटलर और मुसोलिनी की विजय पर खुश होते थे, हिटलर की प्रत्येक विजय पर तालियाँ बजाते थे, जैसे उनके लिए खुशी के लड्डू बँट रहे हों, ये लोग भूल जाते थे कि हिटलर तो मानवता का सब से बड़ा शत्रु है; इससे बड़ा हीन भाव क्या होगा कि हम लोग यह सोचें कि हम अंग्रेज से टक्कर नहीं ले सकते; और यह देखकर कि हिटलर अंग्रेजों का नाक में दम किये दे रहा है, हम खुश होते हैं और सोचते हैं कि हिटलर अंग्रेज़ से हमारा ही बदला ले रहा है। कितने आश्चर्य की बात है कि सुशिक्षित लोगों को भी फॉसिस्टों का ग़लत प्रॉपेगेंडा प्रभावित करने लगा है ! फॉसिज़्म तो ग़ुलामी का सीलाब है; इसे रोका न गया तो लोकमत तिनके के समान बह जायगा।

डायरी के अन्त में अभी कुछ कोरे पन्ने भी तो थे। आवेश में आकर वह डायरी के कोरे पन्ने पर लिखने लगा :

"फॉसिज़्म के हाथ में दुनिया की बागडोर आ गई तो नागरिक-स्वतन्त्रता का गला घोट दिया जायगा, फिर मानवीय अधिकार धरे के धरे रह जायँगे। इस खून की होली से बचो। फॉसिज़्म को रोको। हिटलर

मानवता की छाती पर नाचने के लिए पागल हो उठा है। उसके बमों के नीचे तो मानवता की लाश भी नज़र नहीं आयगी ! जहाँ भी संस्कृति की कोई रेखा नज़र आती है, कोई आज़ादी का फूल खिलता है, जहाँ भी इन्सान का दिल धड़कता है, इन्सान का सौन्दर्य मचलता है, वहीं हिटलर के बम गिरते हैं ! हिटलर ने सभ्यता को नष्ट करने के लिए यह दूसरा विश्व-युद्ध छेड़ा है; जहाँ भी उसके पैर पड़ते हैं, मृत्यु बेधड़क शिकार खेलती है। रूस में हिटलर के दरिन्दों ने कुछ कम जुल्म तो नहीं किया; इतिहास के पृष्ठों पर हिटलर बहुत बड़ा कलंक है। उसी के हुक्म से रूस में लेखकों के मकानों को आग लगा दी गई; पुस्तकालय जलाकर खाक कर दिये गये। खैर रूसी भी बड़ी वीरता से लड़े, अपनी रक्षा के लिए उन्होंने सिर-धड़ की बाजी लगा दी। हम भी अपने देश में फॉसिज़्म को कभी नहीं घुसने देंगे।"

डायरी में अपने लेख के नीचे उसने अपना नाम लिख दिया, और आराम से इसे बन्द करके उसकी जगह पर रख दिया।

सहसा नीचे से किसी के रोने की आवाज़ आने लगी; उसने खिड़की से झाँककर देखा, कुछ नज़र न आया।

रोने और चीखने की आवाज़ें बराबर आ रही थीं।

उसने पश्चिमी खिड़की से झाँककर देखा कि पाँच गोंडों को रस्सियों से लकड़ी के खम्भों के साथ बाँध दिया है और उन्हें गालियाँ दी जा रही हैं, "तैयार हो जाओ, हरामी पिल्लो ! आज तो तुम्हारी चमड़ी उधेड़ी जायगी !"

उसने ज़ोर से ऊपर को जाने वाले ज़ीने के पास खड़े होकर धनपाल को पुकारा, "अजी धनपाल जी, अब तो नीचे आइए; देखिए तो सही कि क्या-क्या जुल्म किया जा रहा है आपके नाम पर !"

कुछ क्षणों के पश्चात् धनपाल तीसरी मंजिल से ज़ीने के रास्ते दूसरी मंजिल वाले ड्राइंग रूम में आया।

"क्षमा कीजिए आनन्द जी, मेरी तबीयत अच्छी न थी।"

नीचे से रोने-चीखने की आवाज़ें बराबर आ रही थीं। खम्भों से बाँधे हुए लोगों पर कोड़े लगाये जा रहे थे।

"यह सब ज़ुल्म किसलिए है, धनपाल जी!"

"अजी आप तो बहुत भोले हैं, आनन्द जी!" धनपाल ने कुरसी पर बैठते हुए हँसकर कहा, "ये लोग जूतों से ही ठीक रहते हैं; आप भी कोई कवि मालूम होते हैं, जैसा कि मैंने कल आपकी बातों से महसूस किया; मैं भी कवि-हृदय रखता हूँ, इसका प्रमाण है मेरी वह नीली जिल्द वाली डायरी!"

"वह तो मैंने देख ली!" आनन्द ने उपेक्षा से कहा।

धनपाल ने सहसा चौंककर अपने अतिथि की ओर देखा; फिर उसने पश्चिमी खिड़की की ओर बढ़कर आवाज़ दी, "अरे भई, मुन्शीजी, ऊपर आओ!"

थोड़ी देर बाद घनी मूँछों वाला मुन्शी ऊपर आया; उसके चेहरे पर किसी दैत्य-कथा के क्रूर दैत्य का-सा भाव झलक रहा था। उसे आशा थी कि बड़े मालिक खुश होकर उसकी पीठ ठोकेंगे, पर यहाँ तो उल्टा हिसाब हुआ।

"तुम लोग बेहद नामाकूल हो!" धनपाल ने कड़ककर कहा, "इतना भी तो नहीं देखते कि घर में मेहमान आये हैं।"

३१

रूपी और फुलमत की कहानियाँ कभी खतम न होतीं; कहानी सुनाने में फुलमत ही ज्यादा तेज़ थी; प्राचीन काल की कोई कहानी सुनाकर वह चुप रह जाय, यह न रूपी को पसन्द था न फुलमत को, इस पर खूब टीका-टिप्पणी की जाती, और इस कला में भी फुलमत ही तेज़ थी, भले ही वह कभी-कभी यह सोचकर कि रूपी तो जबलपुर से दसवीं पास कर आई है, उसके मुँह की ओर देखने लगती और सोचती कि शायद रूपी अधिक मन-लगती बात कहेगी, पर रूपी सामने से इस प्रतीक्षा में चुप रहती कि इस पर तो फुलमत की टीका ही अधिक चुभती हुई होगी।

वेनगंगा के उद्गम की कहानी फुलमत ने सौ बार सुनाई होगी, पर जब से भूलन साँप के काटने पर भी बच गया था, रूपी को वेनगंगा की कहानी में अधिक रस आने लगा था। अब रूपी तो वेनगंगा का उद्गम भी देख आई थी, जब वह जबलपुर के मिशन स्कूल की लड़कियों के साथ यात्रा पर निकली थीं। वेनगंगा की कहानी तो इतनी-सी थी "आज से बहुत

पहले एक खाते-पीते गोंड के घर में एक कन्या ने जन्म लिया; उसका नाम गंगा रखा गया। अब गंगा का था एक लामसेना; उसका नाम था बेनी, जो सात वर्ष से गंगा को व्याहने की आशा से उनके घर में काम करता आ रहा था। गंगा बेनी को मन से चाहती थी। इस प्रदेश में जल का नाम-निशान न था; जंगली पशु प्यास से दम तोड़ देते। गंगा का पिता एक दिन कुदाल उठाकर चल पड़ा; उसने शपथ ली कि आज तो जमीन खोदकर जल के दर्शन करने पर ही उसका हाथ रुकेगा। जमीन खोदते-खोदते गंगा का पिता थककर सो गया; सपने में धरती माता ने उससे कहा, 'तुम्हें जल इसी शर्त पर मिलेगा कि तुम मेरे लिए कुँवारे लड़के-लड़की की बलि दो।' अब गंगा के पिता को तो गंगा और बेनी का ही ध्यान आ सकता था; साँझ के बाद कुदाल वहीं छोड़कर वह घर लौटा और अगले दिन सवेरे ही उसने बेनी से कहा, 'जाओ, मेरी कुदाल तो उठा लाओ, जो कल वहीं छूट गई जहाँ मैं जल के लिए जमीन खोद रहा था।' बेनी वहाँ पहुँचा तो एकदम जमीन से जल फूट पड़ा; बेनी इस जल में बह गया। दिन-भर गंगा बेनी की बाट जोहती रही; उसके लिए भोजन और जल की मटकी उठाये वह उसकी खोज में निकली। देखा कि वहाँ तो जल-ही-जल नजर आ रहा है। उसने चिल्लाकर कहा, 'तुम मेरे सच्चे प्रेमी हो तो दर्शन दो!' बेनी ने अपने हाथ जल से ऊपर उठाये। गंगा बोली, 'सभी के हाथ तो ऐसे ही होते हैं, वह अंगूठी दिखाओ जो मैंने तुम्हें दी थी।' दूसरी बार बेनी के हाथ बाहर आये तो उसकी उंगली पर वह पीतल की अंगूठी सूरज की किरणों में चमक उठी जो गंगा ने उसे दी थी। अब गंगा से न रहा गया; वह जल में कूद गई, बेनी ने गंगा को अपनी बाँहों में ले लिया और उसी समय यह हमारी बेनगंगा बह निकली।"

जब फुलमत को मालूम हुआ कि रूपी तो बेनगंगा के उद्गम पर एक छोटा-सा मन्दिर भी देख आई है तो वह बहुत उत्सुकता से अपनी सहेली की ओर देखती रह गई।

"अरी फुलमत, तू क्या जाने," रूपी ने हँसकर कहा, "अरी मैं तो बेनी और गंगा दोनों को देख चुकी हूँ।"

"तो तू हमारी दादी, पड़दादी और लकड़दादी से भी बड़ी है ?"

"हाँ, मैं उनसे भी बड़ी हूँ। और पूछो, फुलमत !"

"अरी बेनगंगा की कहानी तो बहुत पुरानी है, तू उस समय कहाँ थी ?'

"अरी मैं ही तो वह गंगा थी !"

"और तेरा झूलन उस समय तेरा बेनी था ?"

"यही समझ लो, फुलमत !"

"यह तो मैं समझती हूँ कि तू अपने झूलन को बहुत चाहती है; चाहेगी क्यों नहीं, वह तेरा लामसेना जो है।"

फुलमत अपनी झोंपड़ी के सामने चबूतरे पर बैठी थी। बकरी का बच्चा उसकी बाँहों से छूटने का यत्न करता रहा; वह उसकी पीठ के बाल सहलाती रही।

"अरी तू तो बकरी के बच्चे को यों प्यार कर रही है जैसे यही तेरा लामसेना हो, फुलमत !"

"अरी मेरा लामसेना तो अभी पैदा नहीं हुआ, रूपी !"

"चल छोड़," रूपी ने थोड़ा झेंपकर कहा, "हाँ तो मैं कह रही थी कि मैं गंगा और बेनी दोनों को देख चुकी हूँ।"

"कहाँ देख चुकी हो उन्हें !"

"पहले यह पूछ कि उनकी शक्ल कैसी थी।"

"चल यही बता।"

"दोनों एक-दूसरे से बढ़कर थे।"

"अरी गंगा ही अधिक सुन्दर होगी—बिलकुल तेरे जैसी, और बेनी बिलकुल तेरे झूलन जैसा।"

"तुझे अच्छा लगता है झूलन तो तू ले ले।"

इस पर दोनों सहेलियाँ हँस-हँसकर लोट-पोट हो गईं। बकरी का बच्चा फुलमत के हाथ से छूटने का यत्न करता रहा।

"अब यह सुन कि बेनी क्या पहने हुए था।"

"चल सुना।"

सफेद धोती, लाल कुरता, नारंगी रंग की पगड़ी।"

"तो पूरा छैला बना हुआ था बेनी! और गंगा ने क्या पहन रखा था?"

"हरी साड़ी और लाल अंगिया।"

"वाह वाह, पूरी दुलहन!" फुलमत ने बकरी के बच्चे को भागने से रोकते हुए कहा।

"हाँ हाँ, पूरी दुलहन।"

दोनों सहेलियाँ अर्थपूर्ण दृष्टि से एक-दूसरी की तरफ देखती हुई फिर हँस पड़ीं।

"अब यह सुन कि मैंने उन्हें ठीक-ठीक कहाँ देखा?"

"चल सुना।"

"जब मैं बेनगंगा का निकास देखने गई, वहीं उस छोटे-से मन्दिर में मैंने गंगा और बेनी की मूर्तियाँ देखीं।"

"अच्छा तो इतनी-सी बात थी जिसे तूने इतना बढ़ा दिया, रूपी!"

उधर से फुलमत की छोटी बहन सनमत आ गई। उसने बकरी का नव-जात शिशु उठा रखा था जो अपनी अधखुली आँखों से रूपी और फुलमत की ओर यों देख रहा था जैसे उन्हें पहले से पहचानता हो।

"यह मेमना तू ले ले, फुलमत!" सनमत ने तोतली जबान से कहा, "तेरा मेमना मैं ले लूँगी।"

"ना बाबा, हम तो नहीं देंगे अपना मेमना।" फुलमत ने क़हक़हा लगाया, "मैं तो इसे किसी को नहीं दूँगी।"

"व्याही जाओगी तो साथ ले जाओगी इसे अपनी ससुराल में,

फुलमत !" रूपी ने व्यंग्य कसा।

"जरूर ले जाऊँगी," तू क्या जाने कि आदमी को बकरी का बच्चा भी प्यारा लग सकता है, तू है कि तुझे आदमी का बच्चा भी प्यारा नहीं लगता!" फुलमत ने अर्थपूर्ण दृष्टि से रूपी की ओर देखा, जैसे कह रही हो कि वह सब जानती है कि रूपी झूलन को उतना तो हर्गिज़ नहीं चाहती जितना गंगा अपने बेनी को चाहती थी।

फुलमत ने बकरी के बच्चे को खुला छोड़ दिया। वह दौड़कर झोंपड़ी में घुस गया। लेकिन फिर उसने उसे पुचकारते हुए आवाज़ दी, "छे छे !"

बकरी का बच्चा दौड़कर फुलमत की बाँहों में आ गया।

"फुलमत, मेरा मेमना क्यों नहीं दौड़ता ?" सनमत ने तुतलाकर कहा।

एक बार फिर दोनों सहेलियाँ क़हक़हों में खो गईं।

इतने में नदिया टोला की इस झोंपड़ी के द्वार पर कहीं से एक लाल पगड़ी वाला सिपाही आ निकला।

"समलू कहाँ है ?" सिपाही ने चिल्लाकर कहा, "समलू का सम्मन आया है !"

"तुमने कुछ सुना, रूपी ?"

"क्या खबर लाये हो, भूलन ?"

"तो तुम्हें कुछ भी मालूम नहीं ?"

"नहीं तो।"

"पर मैं पूछता हूँ रूपी, तुम करंजिया में रहती हो तो करंजिया की खबरों का कुछ तो पता रखा करो।"

रूपी और भूलन में देर तक बातें होती रहीं। भूलन ने बताया कि मालगुज़ार के अत्याचार बढ़ गये हैं, ज़रा सी बात पर कचहरी से सम्मन जारी करा देता है, तहसीलदारों और दूसरे अफ़सरों को उसने ऐसा काबू कर रखा है कि वह जो चाहे करा सकता है।

"हम मेहमान बाबू से कहेंगे," रूपी ने गम्भीर होकर कहा, "वे तो भीमकुण्डी हो आये हैं कई बार और हमारे मालगुज़ार के मित्र हैं; मालगुज़ार हमारे मेहमान बाबू की बात को तो नहीं टाल सकता।"

"तुम भी कैसे-कैसे सपने देख रही हो!" भूलन ने हँसकर कहा, "हम

कब तक हाथ-पर-हाथ धरे बैठे रहेंगे; अपनी बीमारी का इलाज तो हमें खुद ही करना होगा।"

"हम क्या कर सकते हैं?"

"यह कहो कि हम क्या नहीं कर सकते।"

"तुम कबसे इतने बहादुर हो गये?" रूपी ने हँसकर भूलन की ओर देखा।

"आज समलू के दोनों बैल कुर्क करके ले गये!" भूलन ने आह भर-कर कहा, "और तो और घर के बरतन और कपड़े-लत्ते भी कुर्क करके ले गये; और सुनो, रूपी, यह सब थानेदार अब्दुल मतीन की देख-रेख में हुआ।"

"तो समलू कुछ न बोला?"

"समलू क्या बोल सकता था?"

"और कौन-कौन थे वहाँ!"

"अरी वहाँ कोई एक आदमी तो न था; पूरा नदिया टोला वहाँ मौजूद था।"

"हमारे काका कहाँ थे।"

"काका भी मौका पर खड़े थे।"

"तो काका भी कुछ न बोले?"

"काका बेचारे भी क्या बोल सकते थे?"

"फुलमत और सनमत कहाँ थीं?"

"फुलमत और सनमत भी वहीं खड़ी रो रही थीं।"

"किसी ने जाकर मेहमान बाबू को खबर क्यों न दी?"

"अब इसमें मेहमान बाबू क्या टाँग अड़ा सकते थे? ये बड़े आदमी तो बड़े आदमियों के साले होते हैं, रूपी! पैसेवाला सदा पैसेवाले का साथ देता है, ग़रीब-ग़रीब जब तक मिलकर खड़े नहीं हो जायँगे कुछ नहीं होगा।"

"काका तो ग़रीबों का साथ देते हैं।"

"काका तो फिर भी खाते-पीते आदमी हैं। अरी रूपी, बस समझा करो; काका भी बीच की कठपुतली बने हुए हैं। न तो काका मालगुज़ार से टक्कर ले सकते हैं न दूसरों के लिए अपनी गाँठ पर आँच आने देना पसन्द कर सकते हैं।"

"फिर भी मैं काका को समझाऊँगी। काका को समझाने से वे समझ जाते हैं। काका कभी मालगुज़ार के अत्याचार में मालगुज़ार का साथ नहीं दे सकते। और मेहमान बाबू तो मालगुज़ार का साथ बिलकुल नहीं देंगे।"

"तो क्या भीमकुण्डी में उड़ाई हुई दावतें यों ही चली जायँगी? रूपी, मैंने तो सुना है कि भीमकुण्डी में धनपाल ने आनन्द को सात क़िस्म के पकवान खिलाये।"

"तो इसमें कौनसी बुराई है?"

"इसमें यही बुराई है कि जब भी तुम्हारे मेहमान बाबू को भीमकुण्डी में खाए हुए मुरग़ाबी के शोरबे और भुने हुए मोर का मज़ा याद आ जाया करेगा, हमेशा उनके मुँह पर ताला लग जाया करेगा।"

"अरे छोड़ो, भूलन, हमारे मेहमान बाबू यों किसी के रोब में आने वाले आदमी नहीं हैं। हाँ तो, समलू की कुर्की हो गई और कोई न बोला?"

"तू एक समलू को क्या रोती है, रूपी! यहाँ तो हर टोले में कुर्की पर कुर्की हो रही है, और कोई अचरज नहीं कि कल काका की कुर्की भी हो जाय यदि काका मालगुज़ार का रुपया न चुकायें।"

रूपी को जैसे काठ मार गया। वह कुछ न बोली।

गोधूलि वेला के प्रकाश में पोखर के ऊँचे किनारे से कमंडल नदी का दृश्य भी उसे आकर्षित न कर सकता था; उसके मन पर जैसे विषाद की गहरी रेखाएँ सिर उठाने लगीं। जब मन खिचा-खिंचा-सा हो, कुछ भी अच्छा नहीं लगता।

झूलन ने रूपी के कान में कुछ कहा। रूपी ने आश्चर्य से पूछा, "अच्छा तो यह बात है ?"

"बिलकुल यही बात है।"

"लेकिन मेरा दिल तो नहीं मानता।"

झूलन ने आँखों-ही-आँखों में समझाया कि बात वही है जो वह उसके कान में कह चुका है।

"मुन्शी दीनानाथ इतना जालिम तो क्या होगा ?"

"अरी रूपी, वह जालिम भी है और दुराचारी भी।"

"पर उसकी तो सुनते हैं दो बड़ी-बड़ी लड़कियाँ हैं।"

"बस कुछ भी है; उसे तुम एक नम्बर गुण्डा समझो।"

"मैं खुश हूँ कि फुलमत अपने सत पर कायम रही और उसने भीमकुण्डी जाने से इन्कार किया।"

"वह भीमकुण्डी नहीं गई तो उसके बाप को मजा चखना पड़ गया।"

"तो तुम फुलमत की तारीफ नहीं कर सकते ?"

"तारीफ़ तो मैं भी करता हूँ, लेकिन···"

"लेकिन-वेकिन कुछ नहीं, झूलन! इन बातों में इन्सान को पक्का होना चाहिए।"

"लेकिन यदि फुलमत चाहे तो अब भी नकशा बदल सकती है, क्योंकि मैंने तो सुना है कि मुन्शी जी ने फुलमत को भीमकुण्डी अपने लिए नहीं अपने मालगुजार के लिए बुलाया था।"

"नहीं-नहीं, मैं फुलमत को समझा दूँगी। मैं उसे हर्गिज एक दुराचारी मालगुजार के यहाँ न जाने दूँगी।"

"अब मालगुजार ने यह फैसला कर लिया है रूपी, कि वह डिंडौरी की बजाय भीमकुण्डी में ही रहेगा। वह बड़ा रसिया है। बड़े-बड़े अफ़सर उसकी दावत खाने आते हैं, बड़े-बड़े शिकारी जंगल में शिकार खेलने आते

हैं तो उसी के यहाँ रहते हैं।"

"खैर वह तो कोई कड़ी बात नहीं, झूलन !"

"यह सब पैसे का खेल है, रूपी ! पैसे से पैसा हाथ मिलाता है और गरीबों की जान पर आफत आती है; सब पैसे वाले अन्दर से एक हैं; पैसे-वाला गोरा हो चाहे काला, भाई भाई हैं; अब मुसीबत तो यही है कि गरीब क्यों एक नहीं हो सकते। ये लोग एक होकर मुकाबले के लिए खड़े नहीं होंगे तो कुर्कियाँ नहीं रुकेंगी। आज बैल कुर्क होते हैं, कल हल भी कुर्क होंगे।"

"हल तो पहले ही कुर्क हो गये, जब बैल चले गये !"

"एक बात सुनो, रूपी ! जो बात सुनानी थी वह तो सुनाई ही नहीं !"

"वह भी सुना डालो।"

"वह यह कि समलू की तीन बकरियाँ थीं, सब कुर्क हो गईं।"

"और बकरी के बच्चों का क्या हुआ ?"

"वे भी बकरियों के साथ कुर्क हो गये।"

"फुलमत और सनमत कुछ न बोलीं ?"

"वे क्या बोलतीं ? वे खड़ी रोती रहीं। सनमत ही ज्यादा चीखती रही।"

रूपी कुछ न बोली। फिर वह एकाएक उठी और नीचे झोंपडी की ओर भाग गई। जाते-जाते उसने पीछे मुड़कर आवाज दी, "झूलन, यहीं रुको; मैं अभी आती हूँ !"

थोड़ी देर बाद रूपी लौटी तो उसके हाथों में बकरी का एक नवजात मेमना था। उसे देखकर झूलन बोला, "तो तुम भी फुलमत और सनमत की बहन बनने जा रही हो ?"

"इसे ले जाओ !" रूपी ने मेमना झूलन के हाथ में थमाते हुए कहा, "जाओ इसे सनमत को दे आओ। फुलमत से कहना वह भी इसी से खेल लिया करे !"

३३

लालाराम ने समलू की कुर्की का हाल सुना तो उसके दिल पर गहरी चोट लगी। समलू से लालाराम का स्नेह इसलिए भी था कि उस दिन उसी को शराब के नशे में देखकर आनन्द बाबू ने शराब के विरुद्ध आवाज़ उठाई थी और संयोगवश स्वयं उसे भी शराब के ठेके से मुँह मोड़कर जीवन के लिए सेवा की डगर चुनने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था, बल्कि उसने तो इस शिक्षा के परिणामस्वरूप समलू का हिसाब उसके कर्ज़ चुकाये बिना ही अपनी बही से उतार दिया था।

वह कला-भारती की ओर चल पड़ा। रास्ते में उसने सोचा कि कला-भारती जाने से पहले उसे समलू के घर जाकर उसके बैल कुर्क होने का अफ़सोस करना चाहिए। उसने फ़ैसला कर लिया कि आज यहाँ वह समलू के साथ अपनी सहानुभूति दिखायेगा वहाँ धनपाल और उसके बड़ी-बड़ी मूँछों वाले मुन्शी के विरुद्ध घोर कटुता की गठरी खोल देगा। उसे याद था कि किस तरह अगले ही रोज़ फॉरेस्ट रेंज क्वार्टरों में कासिमी साहब के बँगले पर समलू रोता हुआ आया था; उस दिन इसी मूँछों वाले मुन्शी ने

उसे भीमकुण्डी बुलाकर उसकी पिटाई की थी। अब कोई पूछे कि कानून कहाँ सो रहा है; इस अत्याचार की कब जाँच होगी?

सूर्य अभी-अभी उदय हुआ था; चलते-चलते लालाराम ने सड़क के वृक्षों की ओर देखा जो शान्त भाव से खड़े थे। ये वृक्ष तो सबकी ओर समान भाव से देखते हैं; मानव के संघर्ष में ये वृक्ष केवल साक्षी बने खड़े रहते हैं। क्या ही अच्छा हो कि वह मुन्शी का बच्चा सड़क के किनारे-किनारे जा रहा हो और एक बड़ा-सा पेड़ उस पर गिर पड़े और मुन्शी जी का अन्त हो जाय; इस निर्दयी और दुराचारी से लोगों को छुट्टी मिले। उसे ख्याल आया कि यह मुन्शी का बच्चा शराबी है और जब से धनपाल डिंडौरी से भीमकुण्डी आ गया है, मुन्शी दीनानाथ को कभी इनाम में और कभी चोरी से विलायती शराब पीने को मिल जाती है।

धनपाल की दो पत्नियां हैं और अब उसे तीसरी बार दूल्हा बनने का शौक चुराया है, यह बात वह आनन्द से स्पष्ट शब्दों में कह देगा। झेंपकर लालाराम ने पीछे मुड़कर देखा, जैसे उसे भय हो कि कहीं से धनपाल पीछे-पीछे न चला आ रहा हो। अभी अगले ही दिन वह भीमकुण्डी गया तो धनपाल ने उसे ठाठ की चाय पिलाई और आँखों की शरारत आँखों के कोनों में समेटकर पूछा था, "वह चूजा तो आपने भी देखा होगा, लालाराम जी!" किस चूजे की बात है, लालाराम कुछ भी तो नहीं समझ सका था; आखिर धनपाल को खुले शब्दों में कहना पड़ा था, "करंजिया की फुलमत तो सुना है कोई अप्सरा है; हमारे महल में आ जाय तो हम उसे रानी बना लें। अब देखिए न लालाराम जी, मैंने सोचा है कि इन गरीबों की कुछ मदद तो जरूर की जाय। वैसे तो मुझे अच्छे-अच्छे घरानों से दुलहन मिल सकती है, लेकिन मैं अमीर घराने की लड़की नहीं चाहता; मेरे भीतर का कवि-हृदय जाग उठा है। मैं तो कोई जंगल की अप्सरा चाहता हूँ, जो मेरे लिए सपनों की मालाएँ गूँथ सकें; जो मुझे अपने रूप की मदिरा पिलाकर कवि बना दे, बड़ा उमर खैयाम नहीं तो

एक छोटा-सा उमर खैयाम ही सही।" इसके उत्तर में उसने धनपाल को टालते हुए कहा था, "अजी मालगुज़ार साहब, कहां आप और कहाँ फुलमत जिसके लिए काला अक्षर भैंस बराबर है ? अजी वह तो आपके कवि हृदय के पासंग भी न होगी; एक बात और भी तो है, फुलमत एकदम साँवली है, उससे जो सन्तान होगी वह गौरवर्ण नहीं हो सकती।" इस पर धनपाल ने पैंतरा बदलकर कहा था, "मुझे यह सन्तान के लिए अप्सरा नहीं चाहिए; सन्तान तो मैं होने ही नहीं दूँगा, इस का नुसखा मुझे वायसराय साहब से मिला, हैदराबाद के नजाम ने इसकी तसदीक की थी। हाँ तो अब मैं उसे शौक से आज़मा सकता हूँ। अजी लालाराम जी, मैं इस अप्सरा को दूध से नहलाऊँगा, उसे फैशनेबल सोसायटी के अन्दाज तो मैं एक ही महीने में सिखा दूँगा। मैं उसके लिए पढ़ने का प्रबन्ध भी कर दूँगा; कुछ ही वर्षों में उसे अपनी कविता समझने योग्य शिक्षा तो दिला ही सकता हूँ। देखिए लालाराम जी, मैं जानता हूँ कि औरत के लिए अधिक शिक्षा भी खतरनाक है। मुझे तो ऐसी अप्सरा चाहिए जो मेरा संकेत समझे, जिसकी आँखें मुझे प्रणय का आश्वासन दें, क्योंकि लालाराम जी, मैं अपनी पहली दोनों पत्नियों को तो अब डिंडौरी में ही रखूँगा; उनका पतिव्रत धर्म उन्हें मुबारक हो, मैं उन्हें उनके धर्म से एक क्षण के लिए भी विमुख नहीं करना चाहता। उन में से एक को भी मेरा लिखने-पढ़ने का शौक पसन्द नहीं, वे मुझे घूर-घूर कर देखती हैं, मेरी डायरी से तो उन्हें चिढ़ है; और मेरी डायरी मुझे प्राणों से भी अधिक प्रिय है।" उसे याद आया कि किस प्रकार धनपाल ने चटखारा लेकर अपनी डायरी से विभिन्न कवियों की कविता के बीसियों नमूने उसे सुनाये थे।

चलते-चलते लालाराम ने अनुभव किया कि धनपाल के काव्य-प्रेम के पीछे अनेक अत्याचार प्रतिध्वनित हो उठते हैं। धनपाल की सौन्दर्य-पिपासा उसे एक आँख नहीं भाती थी। उसकी डायरी बहुत बड़ा मज़ाक था। यह तो एक पर्दा था जो वह अपने शैतानी जीवन के ऊपर डाले रहता था।

अपनी पुस्तक 'जय भीमकुण्डी' के कुछ अंश भी तो धनपाल ने पढ़कर सुनाये थे; इनमें सर्वत्र धनपाल ने अपनी ही डींग हाँकी थी। अब कोई पूछे कि तुम किधर के नेता हो कि दुनिया को तुम्हारी आत्मकथा पढ़ने की प्रतीक्षा होगी। दुनिया इतनी पागल तो बिलकुल नहीं है।

धनपाल ने उसे बहुत ज़ोर देकर रात को भीमकुण्डी में ही रुकने के लिए बाध्य किया तो उसे रुकना पड़ गया था। रात को खाने के बाद धनपाल ने मुन्शीजी को हुकम दिया, "फौरन व्हिस्की लाओ!" व्हिस्की आ गई तो धनापाल ने कहा था, "एक पैग व्हिस्की तो ले लो आज हमारे साथ।" खैर, इतनी खैरियत हुई कि धनपाल ने ज्यादा ज़ोर नहीं दिया था, और यह बात उनके दिल लग गई थी कि जो व्यक्ति शराब की ठेकेदारी करते समय भी शराब को नहीं छू सका था, उसे अब शराब की ठेकेदारी को तिलाँजलि देने के बाद व्हिस्की पीने के लिए कहना तो बहुत बड़ी ज्यादती थी।

व्हिस्की के नशे में धनपाल ने अपना कच्चा चिट्ठा खोलकर उसके सामने रखने से संकोच नहीं किया था। उसने कहा था, "देखिए लालाराम जी, मैं वैसे किसी अप्सरा को खराब नहीं करूँगा, मैं तो उसे अपने प्रणय के ताजमहल में रखूँगा।" कभी धनपाल मानो अपनी डायरी का ग्रामोफोन रिकार्ड चढ़ा देता और यह रिकार्ड बजना बन्द ही न होता; बड़ी मुश्किल से बात का रुख बदलना पड़ता।

उसके पैर जल्दी-जल्दी उठने लगे; उसके मन में भावनाओं का आवेश उसके पैरों की गति को भी प्रभावित कर रहा था। आनन्द के सामने वह धनपाल से अपनी मुलाकात की पूरी गाथा कह सुनायेगा और यह भी कहेगा कि समलू के बैल केवल उसे भयभीत करने के लिए कुर्क कराये गये हैं।

उसने यह भी फ़ैसला कर लिया कि समलू को उसकी वीरता के लिए बधाई देगा। समलू को पता तो चल ही गया होगा कि मालगुज़ार उसे अपना ससुर बनाना चाहते हैं। कोई और गोंड होता तो शायद इसे अपना

सौभाग्य समझता, पर समलू ने इसे स्वीकार न किया।

लोगों से बेगार लेना तो मालगुज़ार अपना अधिकार समझता है; यह सब अधिकार तो खत्म करने होंगे। जब तक लोग उफ़ नहीं करते और गुलामों के समान बेगार देते चले जाते हैं, तभी तक यह बेगार का असूल चालू रहेगा। हो सकता है कि बेगार के विरुद्ध आवाज़ सुनते ही धनपाल चिढ़ जाय और मुन्शी दीनानाथ को हुकम दे कि जितनी असामियों का लगान बाकी है, उन पर एकदम मुकद्दमे दायर कर दो; इस तरह तो घर-घर कुर्की होने लगेगी। बहुतों के बैल कुर्क हो जायँगे; फिर ये लोग खेती कैसे करेंगे?

खेती तो खैर यों भी संकट में है; पिछले वर्ष इतनी कम वर्षा हुई कि लोग लगान के रुपये भी नहीं चुका सके। अब के फिर यही हाल होने वाला है। उसकी दृष्टि आकाश की ओर उठ गई।

अभी टीकरा टोला का कुछ फ़ासला तय करना बाकी था। उसके पैर जल्दी-जल्दी उठने लगे। धनपाल ने कहा था कि वह फुलमत को सोने में पीली कर देंगे; यह बात उन्होंने व्हिस्की की झोंक में भी कही थी। नशे में तो इन्सान का अन्तरतम बोल उठता है। "फुलमत में ऐसी क्या बात है, मालगुज़ार साहब?" उसने झट पूछ लिया था। धनपाल ने सारी स्थिति स्पष्ट करते हुए कहा था, "पिछले बरस फुलमत को हमने लकड़ी के घोड़-हंडोले पर घूमते देखा; भीमकुण्डी के मेले में तो सभी गाँवों की छोरियाँ आती हैं, लालाराम जी, अब सारे मेले में एक फुलमत ही हमें पसन्द आई। उसके साँवलेपन में कितना नमक है, लालाराम जी! वह कितनी सलोनी होगी! साँवली-सलोनी! हा हा! ही ही! साँवली-सलोनी! अजी लालाराम जी, कोई दूसरी अप्सरा अब मेरे मन के गगन पर नहीं छा सकती। देखिए न, मेरी डायरी में रवीन्द्रनाथ ठाकुर की एक कविता है जिसमें कवि कहता है कि उसकी प्राणेश्वरी ने रात्रि के समय प्रेयसी के रूप में उसे दर्शन दिये, पर प्रभात के समय नदी के तीर पर वह देवी की छवि लिए हुए थी! अब देखिए न, रवीन्द्रनाथ ने यह कविता हमारे लिए लिखी। नदी और

कौनसी होगी ? अजी यही भीमकुण्डी की कलकलनिनादिनी नर्मदा समझिए, करंजिया की कमंडल नदी को कोई कलकलनिनादिनी तो नहीं कह सकता; हालाँकि कमंडल नदी भी भीमकुण्डी से थोड़ा आगे नर्मदा में जा मिलती है—वहीं संगम पर ! हाँ तो मैं कवि की बात कह रहा था। मैं सोचता हूँ, जब कुलमत मेरी दुलहन बन चुकी होगी, वह रात्रि के समय प्रेयसी के रूप में मुझे दर्शन दिया करेगी और प्रभातकालीन प्रकाश में वह देवी के रूप में मेरी ओर अपनी मुस्कान की रश्मियाँ फैलायगी।...” फिर एकाएक धनपाल क्रोध में आकर बकने लगा था, “ मैं उस समलू के बच्चे को ठीक कर दूँगा। उसने मेरा अपमान किया। उसे तो बल्कि खुश होना चाहिए था। मैं तो करंजिया के नदिया टोला में उसकी फूस की झोंपड़ी की जगह उसके लिए पक्का घर बनवा देता, उम्र-भर वह मजे से रहता, मैं हमेशा के लिए उसका लगान माफ़ कर देता। लेकिन वह तो बड़ा गुस्ताख निकला। मेरे मुँह आने लगा। मैंने भी मुन्शी जी को हुक्म दिया कि उसे उसी समय लकड़ी के खम्भे से बाँधकर पीटा जाय। उसके चूतड़ों पर भिगो-भिगोकर जूते लगाये जा रहे थे; मैं इसी ड्राइंग-रूम की खिड़की से देख रहा था। मैं इस इन्तजार में बैठा रहा कि कब मुन्शी दीनानाथ आकर खबर देता है कि समलू मान गया। पर वह तो बड़ा बेशर्म और धूर्त्त निकला; खामोशी से पिटता रहा। फिर मैंने हुक्म दिया कि उसे खोल दो और घोड़े पर लादकर उसे करंजिया की हद पर छोड़ आओ, क्योंकि उसे करंजिया की हद में ही मरना चाहिए। सुना है उसने थाने में रपट लिखवाई, थानेदार अब्दुल मतीन दौड़ा-दौड़ा यहाँ आया था। बोला—‘मालगुजार साहब, यह समलू का क्या मामला है ?’ अब हम तो इन लाल पगड़ी वालों का इलाज जानते हैं। हमने उसके हाथ में दस-दस के पाँच नोट थमाये और मुन्शी जी से कहलवाया कि अगर अब मामला को रफ़ा-दफ़ा नहीं किया गया तो मालगुज़ार साहब तो वायसराय की सिफ़ारिश मँगवा सकते हैं। खैर, अब्दुल मतीन ने मामला रफ़ा-दफ़ा कर दिया। हमने खुश होकर पाँच-पाँच के

दस नोट और थमा दिये उसके हाथ में, और उसे व्हिस्की की आधी बोतल भी पिलानी पड़ी थी। खैर छोड़िए, फुलमत तो अब कहीं नहीं जा सकती, अगले हफ्ते समलू की कुर्की होगी तो सीधा हो जायगा…"

टीकरा टोला के समीप पहुँचकर लालाराम ने अपना पहला फैसला बदल दिया; पगडंडी के रास्ते सीधा कला-भारती की ओर हो लिया।

३४.

बादल करंजिया का रास्ता भूल गये थे। धान तो खैर बहुत अधिक जल माँगता था, यहाँ तो गेहूँ के पौधे भी सिर न उठा सके। करंजिया की काली मिट्टी मानो बंजर हो गई थी।

'काले पेड़ के नीचे काँटा उगता है!'—एक पुराने गीत का यह बोल अब हास्यास्पद प्रतीत होने लगा; जल के बिना काँटा भी न उग सकता था। शायद यह भूख का काँटा था। एक और गीत में कहा गया था—'जंगल में बाँसुरी बजाने वाला श्यामल लता के नीचे बैठा है; उसे एक बिच्छू काटता है और वह रोता है!' जल के बिना तो इस लता के पत्ते भी झड़ जायँगे। यह बिच्छू तो फिर भी काटेगा—यह भूख का बिच्छू! इन दिनों यह बिच्छू कुछ इस प्रकार काटता कि इन्सान तड़प-तड़पकर दम तोड़ देता। करंजिया में आये दिन लाश-पर-लाश उठती रहती; मृत्यु की भयानक छाया बुरी तरह लोगों का मुँह चिढ़ाया करती।

घर-घर हल पड़े थे, बैल खड़े थे; खेतों में जल कहाँ था? भय था कि कहीं कुएँ भी न सूख जायँ। धान के खेतों में कमर-कमर तक जल में

स्त्रियों के काम करने का दृश्य इस वर्ष तो नज़र आने से रहा; बचपन की सहेलियाँ एक-दूसरी पर कीचड़ उछालें, कहकहे लगायें, यह झाँकी भी कहाँ देखने को मिलती ! स्त्रियों के चेहरे उदास थे, पनघट उदास थे; अब किसी गीत में यह बोल न उभरता कि करंजिया चाँद-सा प्यारा है, न किसी गान में यह कल्पना प्रस्तुत की जाती कि कागज़ न मिले तो कपड़ा फाड़ लो, लिखना हो तो आँख से काजल ढलक आने दो। अब तो रोना-हो-रोना था; आँखों में भी इतना पानी कहाँ था !

न शाल के सफेद फूल किसी का ध्यान खींच सके, न सेमल और पलाश के लाल फूल कोई सन्देश लाये; महुए के सफेदी लिये हल्के पीले फूल अच्छे थे, उनसे कुछ दिन भोजन का काम तो चला।

अब न कोई किसी की 'सखी' थी, न केला पान', न 'नर्बदा-जल,' न 'जवारा'—युवक-युवतियों में मित्रता के विभिन्न स्तर, जिन्हें परम्परा का वरदान प्राप्त था, भूख के मारे उदास थे। कहाँ का शृंगार, कहाँ का करमा ! किसी को ढोल-मृदंग का स्मरण न था; पायलें भी तो करमा का ताल भूल गई थीं।

"अकाल ने तो हमें पागल कर डाला, भैया !"

"चलो, कोदों ने ही अपना वचन निभाया, कुतकी ने भी हमें जीने तो दिया !"

"अकाल तो हमारे हाथों से भोजन ही नहीं, थाली-लोटा ही छीन रहा है, भैया !"

"दुकानदारों की चाँदी है !"

"चलो कुछ दिन तो बरतन बेचकर गुज़र कर लें।"

"घर में खाने को हो तो हर कोई तुम्हारा माई-बाप बन जाता है, भैया !"

"गाँठ में पैसा न हो तो कोई पास भी खड़ा नहीं होने देता !"

"दुखिया को तो चैन से मरने की भी आज्ञा नहीं !"

"हमारे मालगुज़ार ठाकुर धनपालसिंह को तो हमारी कोई चिन्ता ही नहीं !"

"अरे भैया, छोड़ो इन बातों को, समय पर कोई काम नहीं आता !"

हर टोले में लोग यही बातें करते सुनाई देते; अकाल की छाया लम्बी होती चली जाती।

कभी कोई गाली देने के अन्दाज़ में नया गीत घड़ने का यत्न करते हुए हवा में यह बोल उछालता—'हमारा मालगुज़ार झूठा है और उसका मुनीम चोर है; दोनों को पता है कि गाँव वाले बैल बेच देंगे गाँजे की खातिर !' पास से कोई इस तुकबन्द को रोककर कहता, "अरे तेरी कसम भैया, हमें तो कोई एक मुट्ठी चावल ही दिला दे ?"

थानेदार अब्दुल मतीन का काम बढ़ गया था। किसी-न-किसी दुकान का ताला टूटता ही रहता; चोर भाग जाता, मारा जाता पड़ोसी। सन्देह में पकड़े जाने वाले लोग भी खुश नज़र आते, हवालात में दाल-भात तो मिल ही जाता। हवालात में आने वालों की बुरी तरह पिटाई की जाती, लम्बी-लम्बी गालियों से उनका स्वागत किया जाता—शैतान के बच्चे यों चले आ रहे हैं जैसे सरकार ने सदा व्रत लगा रखा हो !

बाज़ार टोला में रविवार को लगने वाला बाज़ार भी नहीं लगता था। मृत्यु दो कदम पर खड़ी थी। कभी कोई कह उठता, "भैया, कुछ दिन बाद तो मृत्यु को भी निराश होना पड़ेगा, उसे कहीं कोई शिकार नहीं मिलेगा।"

कहीं पति-पत्नी में यह प्रसंग चलता रहता :

"मुझे बिस देकर मार डाल, भूखे तो रहा नहीं जाता !"

"विस पर भी तो पैसा लगता है !"

"मेरी पायल बेच डाल !"

"जब तक मेरे सिर पर पगड़ी है, तेरी पायल नहीं बिकने दूँगा !"

"मछली ही मार ला !"

"गाँव का गाँव धीवर बन जाय तो मछलियाँ कहाँ मिलेंगी ? कमंडल नदी में तो मछली रही नहीं !"

"अन्नदेवता को भी तो तरस नहीं आता !"

"यहाँ कहाँ है अन्नदेवता ? वह तो बम्बई चला गया !"

अन्नदेवता की कहानी में इतनी बात और जोड़ दी गई थी—कटनी से विलासपुर को रेल निकली तो अन्नदेवता करंजिया से पेंड्रा रोड जाकर पहली गाड़ी में बैठ गया और वह भी बिना टिकट ! लेकिन अन्नदेवता के यों भाग निकलने पर हँसने के लिए भी तो फेफड़ों में बल की आवश्यकता थी, और इतना बल किसी में न था ।

कभी कोई बुड्ढा हड़बड़ाकर अपना ज्ञान बघारता, "जूता पैर के अनुसार होता है, घोड़ा घुड़सवार के अनुसार । बेटा, पेट होना चाहिए गांठ के अनुसार । अब पेट बड़ा है, गांठ छोटी ।"

"पानी कहाँ गया ?—मछली के गले में !" कोई स्त्री व्यंग्य कसती, "निखट्टू, हम मर जांयगे ।"

"मछली के लिए तो पानी ही सब कुछ है !" पति उत्तर देता, "धीवर जाल फेंकता है तो मछलियां भी पानी में कहाँ तक फाग खेल सकती हैं ?"

कभी कोई लड़की गीत का बोल गुनगुनाकर कहती, "लाल मिट्टी के टीकरे पर तोते का घोंसला है, उस ओर रहती है मैना, इस ओर कबूतर; एक बिकी दो में, दूसरा डेढ़ में ।"

पास से युवक कह उठता, "आज तो जो भी पंछी हाथ लगेगा, भूनकर खा जायँगे ।"

करंजिया के दुकान्दार सस्ते भाव खरीदा हुआ अनाज बहुत महँगा बेच रहे थे; लोग अपनी चीजें सस्ते दामों लुटाने पर मजबूर थे । जिनके पास अभी पैसा था, वे भी ग़म में घुले जा रहे थे ।

अकाल में भूख सब विषयों पर छा गई थी; पेट की आग बुझाये न

बुझती। करंजिया की काली मिट्टी अपने हाल पर लज्जित थी—अकाल तो पहले भी पड़े थे, पर यह अकाल तो पहले के अकालों पर भारी है!

"हम कब तक हाथ-पर-हाथ धरे बैठे रहेंगे, सोम?" कला-भारती के पूर्वी द्वार के समीप एक दिन उषा का दृश्य देखते समय आनन्द ने कहा।

"परवाह नहीं अगर बादल करंजिया का रास्ता भूल गये, आनन्द? हमें करंजिया की सहायता के लिए तैयार हो जाना चाहिए।"

आनन्द ने कुछ उत्तर न दिया; उसके चेहरे पर विषाद की रेखाएँ गहरी होती गईं। उसे खेद था कि वे व्यर्थ ही इस प्रतीक्षा में रहे कि सरकार के कान पर जूँ रेंगेगी।

"अकाल में लोगों की मदद करना तो कला-भारती के काम से भी अधिक आवश्यक है।"

यह तो ठीक है, सोम!"

"यों लगता है कि मृत्यु ने अपने हाथ में तूलिका थाम ली है, आनन्द! मृत्यु को लाशों के चित्र अंकित करने की पड़ी है।"

"यह समय कलाकार की वाणी के लिए नहीं है, सोम! आज तो भूख से मरने वालों को बचाना चाहिए; जैसे भी बन पड़े। जितनी हम से हो सकी, उतनी मदद तो खैर हम अकाल के आरम्भ से ही कर रहे हैं, पर यह तो भूखी जनता के मुँह में एक कौर से अधिक नहीं।"

"तो कोई योजना बनाई जाय।"

"यही तो मैं भी सोच रहा हूँ।"

पास के चुन्नू मियाँ ने अपनी छज्जेदार दाढ़ी पर हाथ रखकर कहा,

"इन्सान वही है जो इन्सान के काम आये, घोड़ा वही जो सफर के लिए तैयार रहे; अल्ला पाक भी यही चाहते हैं कि इन्सान एक-दूसरे के ग़म को पहचाने। और अगर इन्सान इन्सान को न पहचाने तो रांजा बाबू, इसमें अल्ला पाक का भी क्या क़सूर है?"

३५

"लोग अकाल से मर रहे हैं और नदिया टोला में ब्याह रचाया जा रहा है।

"किसका ब्याह होगा।"

"फुलमत का, और किसका ?"

"किसके साथ होगा फुलमत का ब्याह ?"

"कला-भारती वाले बाबू के साथ।"

"कौन बाबू ? तो आनन्द फुलमत से ब्याह करने जा रहा है ?"

"आनन्द बाबू नहीं, सोम बाबू।"

"सोम ने फुलमत में क्या देखा ?"

"फुलमत जैसी छोरी तो कहीं नहीं मिलेगी।"

"इसीलिए सोम ने फुलमत को चुना ?"

"पर मैं सोचती हूँ फुलमत ने सोम को चुना।"

"फुलमत करती भी क्या ?"

"क्यों ?"

"उसने तो अपना सत बचाने के लिए वर चुन लिया।"

"नहीं तो तुम्हारा लड़का रंगा उसका लामसेना बनने की सोच रहा था।"

"हाँ बहन, बात तो चल रही थी, चलो अब वह शिंगारू का लामसेना बन जायगा।"

नदिया टोला की दो स्त्रियाँ पोखर के ऊँचे किनारे पर बातें कर रही थीं; फिर एक ने दूसरी के कान में कुछ कहा।

दोनों ने आश्चर्य से एक-दूसरी की ओर देखा।

"वैसे तो यह अच्छा ही हुआ, बहन!"

"अच्छा ही हुआ, नहीं तो मालगुजार के घर में फुलमत को लौंडी बनकर रहना पड़ता।"

"तुम ठीक कह रही हो; पैसेवालों का दिल नहीं होता, इनका तो पत्थर का दिल होता है। शायद तुम्हें मालूम नहीं—"

"क्या?"

"अरी वह नर्वदिया थी न। वह भी भीमकुण्डी के मेले पर गई तो लौटकर नहीं आई—"

"मैंने तो सुना था कि वह दुकाल के साथ भाग गई।"

"उसे तो मालगुजार के मुन्शी ने अपने घर में डाल लिया।"

"अरी ये पैसे वाले ऐसे ही होते हैं; गंडेरी को चूसकर फेंक देते हैं, फिर तो छिलके को भी हवा उड़ा ले जाती है।"

"धनपाल का बुरा हो, बहन! वह लोगों की बहू-बेटियों की ओर बुरी निगाह से देखता है।"

"धनपाल बड़ा शराबी है, बहन! अब हम लोग तो अच्छे रहे कि पंचायत ने शराब की मनाही कर दी।"

"इसके लिए तो हमें आनन्द बाबू को धन्यवाद देना चाहिए; उन्होंने हमें यह अक्ल दी।"

नदिया टोला की दोनों स्त्रियाँ पोखर के पानी में देर तक अपनी परछाइयाँ देखती रहीं; वर्षा न होने के कारण पोखर में पानी अधिक न था। अकाल के कारण जीवन का समस्त सौन्दर्य दब गया था; प्रकृति भी जैसे अब बिल्कुल न मुस्करा सकती हो। इसलिए न पोखर का दृश्य सुन्दर लगता था, न कमंडल नदी के दृश्य में कोई आकर्षण रह गया था।

सोम के साथ फुलमत का विवाह गोंड़ रीति के अनुसार हुआ; अकाल के कारण विवाह का कार्यक्रम बहुत संक्षिप्त रहा। सोम ने पूरे पाँच सौ रुपये समलू के चरणों में रख दिये। समलू ने कहा, "इतने तो किसी हिसाब से भी नहीं बनते, बेटा ?"

"रख लो, काका !" सोम ने आँखें झुका कर कहा !

"जीते रहो, बेटा !"

फुलमत भी आँखें झुकाये बैठी रही। रूपी ने विवाह की प्रत्येक रीति के समय उपस्थित रहना आवश्यक समझा। फुलमत जानती थी कि रूपी के उत्साह से ही वह मालगुजार के हाथों अपना सत बचाने में सफल हो पाई है।

जब सोम गोंड रीति के अनुसार विभिन्न देवताओं की पूजा कर रहा था तो उसने थाली से रोली उठाकर जमीन पर फुलमत का चित्र बना दिया और उसे नमस्कार करते हुए हँसकर कहा, "यह हमारी तरफ की रीति है, बल्कि.~~यह~~ कहिए कि एक कलाकार की रीति है।"

सब स्त्रियाँ यह सुनकर हँस पड़ीं।

फुलमत अपने सुसराल जाने की तैयारी कर रही थी; उसे यहाँ से आधी फरलाँग पर ही तो जाना था।

सनमत बकरी का मेमना उठाये आई और बोली, "मेरा भी ब्याह हो गया, फुलमत !"

"किसके साथ ?"

"मेमने के साथ !"

फुलमत और रूपी खिलखिलाकर हँस पड़ीं।

समलू ने एक सौ रुपये के नोट फुलमत के अंचल में बाँधकर कहा। "यह तेरे सुसराल के रास्ते का खर्च है, फुलमत !"

"मेरा रास्ता तो चन्द कदम का है, काका !" फुलमत ने नोट खोलकर लौटाते हुए कहा।

पर समलू ने ये रुपये वापस लेने से इन्कार कर दिया, क्योंकि वह भी अपना कुछ कर्त्तव्य समझता था।

समलू ने बाकी चार सौ रुपये के नोट अपने अंचल में बाँध लिये। अगले दिन वह डिंडौरी जाकर ये रुपये जमा करा आया और अपने बैल, बकरियाँ और कपड़े-लत्ते अदालत से वापस लेने में सफल हो गया।

कई बार समलू सोचता कि यह सब कैसे सम्भव हुआ; वह बार-बार अपने भाग्य को सराहने लगता। अब अकाल का दुःख तो सब के लिए था। चलो बेटी दरवाजे से उठ गई। मालगुजार के महल में तो मेरी फुलमत को सचमुच एक लौंडी बनकर रहना पड़ता; आज नहीं तो कल, फुलमत ठाकुर साहब के मन से उतर ही जाती। मैं ऐसा कैसे कर सकता था ? यह तो मेरे लिए सबसे बड़ा बदनामी का टीका होता। जब तक मैं जीवित रहता, दुनिया के ताने सुनने पड़ते; बेटी फुलमत अलग विपता में दिन काटती।

उसे अपनी पत्नी लहरी की याद भी बार-बार आती; बेचारी पिछले वर्ष ही चल बसी थी, लम्बे बुखार से बीमार रही और आखिर यह बीमारी

उसके प्राण लेकर रही । बेचारी अपनी फुलमत का विवाह भी तो न देख सकी।

अब तो वह था और सनमत।

सनमत कला-भारती में पढ़ने लगी थी; बड़ी बहन ने उसका भार अपने ऊपर ले लिया था।

समलू जैसे दुनिया में अकेला रह गया हो । अकाल के दिन, और मालगुजार की आँखों का काँटा बनकर रहना सहज तो न था।

३६

"आदिवासियों को मृत्यु के मुँह से बचाइए; मंडला ज़िले के आदिवासियों की आँखें देश के खाते-पीते लोगों की तरफ़ लगी हैं। इससे पूर्व कि करंजिया के गोंड और बैगा अपने भिक्षा-पात्र को खाली देखकर मृत्यु की दहलीज़ पर आँखें मूँद लें, अपनी मदद भेजिए जिससे अन्न के दो दाने भूखे गोंडों के मुँह में जा सकें। वैसे तो ये लोग निरन्तर अकाल का दुःख भोगते आये हैं, इनकी आर्थिक दशा कभी इतनी अच्छी नहीं होती कि वे अपने को सुखी कह सकें; लेकिन इस समय तो उनके प्राण संकट में हैं···"—इस अपील पर पहले नसीम कासिमी के हस्ताक्षर थे, फिर आनन्द जय आदर्श के; इसे समाचारपत्रों में प्रकाशित कराया गया और अलग पोस्टर के रूप में छपवाकर प्रचार के लिए जगह-जगह भेजा गया।

पहली मदद हैदराबाद से आई। पूरे पाँच हज़ार रुपये का चेक था; इसके पीछे नसीम कासिमी की माँ का हाथ था। उसने अपने पत्र में लिखा था कि इसमें चार हज़ार रुपये लोगों से चन्दा लेकर जमा किये गये, एक हज़ार

उसने अपनी ओर से मिलाये। तीन हज़ार का चेक बम्बई के सेठ दिलीपचन्द मेवाणी ने भेज दिया; पोस्टर की एक प्रति मोहेंजोदड़ों भी भेजी गई थी, आनन्द के पिता ने डोकरी से चौदह सौ रुपये भिजवाये और छः सौ रुपये अपनी ओर से भेजे। मोहेंजोदड़ों के नये खुदाई अफ़सर पन्नालाल ने दो सौ रुपये भेजे। रेशमा ने एक अँगूठी और एक कँगन अलग से भिजवाया—कदाचित् अपने पति से चोरी; आख़िर पोस्टर पर आनन्द के हस्ताक्षर थे, जिसे उसने उन दिनों अपने गाँव में देखा था जब उसे लसूड़े खाने की आदत थी; अब वह करंजिया और अमरकंटक की यात्रा में आनन्द का आतिथ्य पा चुकी थी, गोंडो से मिल चुकी थी। सोम के पत्र के उत्तर में बम्बई से सोफिया वारेरकर ने दो हज़ार रुपये भिजवाये; उसने लिखा कि इसे महाराष्ट्र-निवासियों की भेंट समझा जाय। अकाल फंड में करंजिया के नौकरी-पेशा लोगों और दुकानदारों ने भी मदद दी।

अन्न का बड़ा डिपो करंजिया में खोला गया; लालाराम इसके इन्चार्ज थे। आसपास के गाँवों में भी डिपो खोले गये, क्योंकि अकाल का ज़ोर तो सब जगह था; भीमकुण्डी में धनपाल के डिपो के मुकाबले पर एक डिपो करंजिया रिलीफ़-कमेटी की ओर से भी खोल दिया गया जिसे एक प्रकार से धनपाल ने अपना अपमान समझा, भले ही वह खुले रूप से इसका विरोध भी न कर सका।

अपील भेजते समय इतनी आशा न थी कि इसका इतना प्रभाव पड़ेगा। लेकिन अब मालूम हुआ कि लोग आदिवासियों के प्रति सहानुभूति रखते हैं। रूपी जानती थी कि करंजिया की रिलीफ़ कमेटी पर सबसे बड़ी छाप आनन्द की है। अपने पिता पर ज़ोर डालकर दो सौ रुपये उसने अपने हाथ से आनन्द को थमाये थे, साथ ही उसने अपनी सेवाएँ भी रिलीफ़-कमेटी को समर्पित कर दी थीं। वह बहुत अधीर नज़र आने लगी थी; कभी वह भावावेश में आकर आनन्द से कहती, "आप यहाँ न आये होते तो कल्पना तो कीजिए कि अकाल ने हम लोगों की क्या दुरगत बनाई होती!"

"मेरा कोई अहसान नहीं है !" आनन्द रूपी को समझाता, "मैं तो खास मदद नहीं कर पा रहा, जितनी आशा थी उतनी मदद तो आई नहीं, फिर भी जितनी मदद आई उसी से काम तो चलाना हुआ। इससे बाहर वालों की थोड़ी परीक्षा अवश्य हो गई, उन्हें आदिवासियों के प्रति अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करने का एक अवसर अवश्य मिला।"

"यह तो मैं भी समझती हूँ !" रूपी कहती, "बाहर वालों के व्यवहार से तो मैं खुश हूँ। इसमें सबसे बड़ा हाथ शिक्षा का है; लोग शिक्षित न होते तो कैसे आपका भेजा हुआ पोस्टर पढ़ते और कैसे उनपर आपकी बात का प्रभाव पड़ता। शिक्षा इन्सानों के बीच पुल का काम देती है, उन्हें एक-दूसरे से मिलाती है। नहीं तो हम आदिवासियों को कौन पूछता। हम तड़प-तड़प कर मर जाते; कहीं हमारे मरने की खबर भी न छपती।"

आकाश पर कहीं कोई भूला-भटका बादल भी नज़र न आता; काली घटा की कल्पना तो असम्भव थी। रूपी सोचती कि वर्षा नहीं होती तो क्या हुआ, बाहर वाले जो मदद भेज रहे हैं; यह भी तो वर्षा के समान है। रूपी के चेहरे पर वह पहली-सी मुस्कान नज़र न आ सकती थी; जैसे वह अभी तक हतप्रभ हो, क्योंकि अभी तक अकाल का प्रभाव ख़त्म नहीं हुआ था। उसकी आँखें सदा आकाश की ओर उठ जातीं। कभी-कभी तो उसकी आँखों में आँसू आ जाते। उस समय आनन्द उसे समझाता, "रोने से तो बादल घिरने से रहे, रूपी ! अब बादल की इधर का रास्ता ढूँढ ही लेंगे एक-न-एक दिन, तुम तसल्ली रखो।"

लेकिन रूपी के मन में तो इससे पहले के एक अकाल की याद घिर आती; उस साल, जब वह अभी पाँच साल की थी, इसी तरह अकाल पड़ गया था, इसी तरह लोग मरने लगे थे और मरते चले गये थे; उन दिनों कोई रिलीफ़ कमेटी भी नहीं बनी थी। उस अकाल की याद इस अकाल पर अपनी छाप लगा रही थी; जैसे पहले अकाल का आतंक अभी तक कायम हो और पहले का अकाल आज के अकाल से हाथ मिलाकर कह सकता

हो—तुम देर से आये, फिर भी तुम मेरे भाई हो। इन लोगों की खूब खबर लो!···

कभी-कभी तो रूपी पहले अकाल की बातें छेड़कर आनन्द को खिन्न कर देती। आनन्द को रूपी की यह प्रवृत्ति बहुत ही हास्यास्पद-सी प्रतीत होती। रूपी कहती, "मैं क्या करूँ, मेहमान बाबू! पहले अकाल के भूत-प्रेत मुझे बुरी तरह सताने लगते हैं, अब या तो कोई हाथ बढ़ाकर मेरी कल्पना की खिड़कियाँ बन्द कर दे, या फिर मुझे खुली छुट्टी दे दे कि पहले अकाल के भूत-प्रेतों से बातें करती रहूँ!"

रिलीफ़ कमेटी का काम जोरों से चल रहा था; बाहर से बराबर मदद आ रही थी। लेकिन आनन्द के सिर पर सब से बड़ी ज़िम्मेदारी थी रूपी को मानसिक रोग से बचाना; पहले अकाल की भयानक कल्पना से उसे सुरक्षित रखने का प्रयास अलग से एक आयोजन की उपेक्षा रखता था—एक पूरी रिलीफ़ कमेटी का आयोजन! कभी-कभी तो रूपी का उद्विग्नता इतनी बढ़ जाती कि पागलपन का छोर समीप नजर आने लगता। यह बात तो वह प्रायः दोहराया करती कि वह एक गहरी खाई में गिर गई है जहाँ पहले अकाल के भूत-प्रेत उसके साथ खेल रहे हैं, और कभी-कभी अपनी भयानक आकृतियों से उसे डराने लगते हैं। इस उद्विग्नता के कारण रूपी का सौन्दर्य भी मुरझा गया था; उसकी मासुम आँखों की चमक भी धुँधली पड़ती जा रही थी। आनन्द की बराबर यही चेष्टा रहती कि एक सेनानी के समान परिस्थिति पर काबू पा ले।

"मैं मर जाऊँगी, भूत-प्रेत बन जाऊँगी!" एक दिन आनन्द के साथ अन्न के डिपो की ओर जाते हुए रूपी ने बड़ी उद्विग्नता से कहा, "तुम मुझे कब तक रोके रहोगे, मेहमान बाबू?"

"पागल मत हो जाओ, रूपी!" आनन्द ने पुचकारा।

"मैं भूत बनकर अगले अकाल की बाट जोहूँगी।"

"मैं तुम्हें मरने नहीं दूँगा, रूपी!"

एक क्षण के लिए आनन्द को लगा कि रूपी यह जानना चाहती है कि वह उसके प्रति कितनी भावुकता दिखा सकता है; पर आनन्द यह भी जानता था कि रूपी का हृदय बहुत निष्कपट है, छल तो वह जानती ही नहीं।

आनन्द ने सिगरेट का कश लगाकर धूएँ का बादल रूपी की ओर छोड़ा; सचमुच उस समय वह यह चाहता था कि रूपी को किसी बात पर प्रतिरोध करने का अवसर अवश्य दे। पर रूपी उसी तरह चलती रही।

आनन्द ने दोबारा धूएँ का कश रूपी के मुँह पर दे मारा।

रूपी ने मुँह सिकोड़ कर आनन्द की ओर देखा।

"तो तुम्हें मेरा सिगरेट पीना बिलकुल पसन्द नहीं, रूपी ?"

"मैं कई दिन से यह बात कहना चाहती थी, मेहमान बाबू !"

"कौनसी बात ?"

"यही कि जैसे मेहमान बाबू ने यहाँ वालों की शराब छुड़ाई वैसे मैं मेहमान बाबू की सिगरेट छुड़ाऊँगी !"

"सिगरेट में तो कोई बुराई नहीं, रूपी ! खैर इसे छोड़ भी सकता हूँ, यदि तुम इतना ही जोर दोगी। अब इतना तो स्पष्ट है कि तुम मेरा साथ न देतीं तो मैं यहाँ रिलीफ का काम इतनी तेजी से कभी न कर पाता।"

"तुम्हारे साथ तो रेशमा होनी चाहिए थी।"

"क्यों ?"

"वही तो तुम्हारी मँगेतर है।"

"रेशमा का तो ब्याह हो चुका है, रूपी ! भई वाह ! तुमने भी क्या-से-क्या समझ लिया। वह तो अपने पति पन्नालाल के साथ यहाँ आई थी।"

रूपी ने बड़ी अवहेलना से मुँह दूसरी ओर कर लिया, जैसे आनन्द ख्वाह-म-ख्वाह उसे बना रहा हो।

"बेगम कासिमी की माँ की चिट्ठी आई है, रूपी !" आनन्द ने बात

का रुख बदलते हुए कहा।

रूपी कुछ न बोली।

"लिखती हैं कि वे करंजिया रिलीफ-कमेटी के लिए हैदराबाद से दस हजार रुपये और जमा कर चुकी हैं; उन्हें आशा है कि इस हफ्ते यह रकम चौदह हजार तक पहुँच जायगी और बहुत जल्द वे वह रुपया यहाँ भिजवा रही हैं।"

"अच्छी खबर है!" रूपी के चेहरे पर अनमनी-सी मुस्कान खेलने लगी।

"अभी तक करंजिया रिलीफ कमेटी को धनपाल ने एक फूटी कौड़ी भी तो नहीं दी, रूपी!"

"उनसे आशा रखनी फजूल है।"

"फिर भी मैं तो सोचता हूँ कि वह जरूर मदद देंगे।"

"लेकिन कब मदद देंगे? देनी होती तो अबतक दे न देते। मैं तो हैरान हूँ कि हैदराबाद और बम्बई जैसे दूर-दूर के शहरों से तो मदद आ जाय और भीमकुण्डी से मदद न आये।"

"धनपाल से मुझे अब भी आशा है। लालाराम भी तुम्हारी तरह सदा यही कहता है रूपी कि धनपाल एकदम बुरा आदमी है, पर मैंने उससे कहा कि देखो लालाराम, जैसे तुमने शराब का ठेका छोड़ दिया और सेवाव्रत ले लिया वैसे धनपाल को भी तो हम बदल सकते हैं, किसी के बारे में यह फैसला दे देना कि वह बुरा है और अब हमेशा बुरा ही रहेगा, यह तो ग़लत बात है।"

जब वे डिपो के समीप पहुँचे तो उधर से चुन्नू मियाँ आते हुए मिला। "लीजिए, राजा बाबू काम बन गया!" उसने उछलकर कहा।

"क्या काम बन गया, बड़े बाबा?"

"लालाराम के पास खबर आई है, राजा बाबू!" चुन्नू मियाँ ने छज्जे-दार दाढ़ी को दोनों हाथों में पकड़कर कहा, "सरकार के ट्रक कंकर ढो रहे हैं;

अब जल्द पक्की सड़क बननी शुरू होगी ! पक्की सड़क को तो अल्ला पाक भी पसन्द करते हैं। इससे इन्सान को आराम मिलेगा। सरकार ने अक्ल से काम लिया; सरकार को सस्ते मजदूर मिल जायँगे !”

३७

सरकार ने फ़ैसला किया कि दस मील का टुकड़ा और पक्का बना दिया जाय; डिंडौरी से गोरखपुर के बीच का टुकड़ा पहले ही पक्का बनाया जा चुका था; करंजिया और गोरखपुर के बीच का दस मील का टुकड़ा पक्का बनने से जबलपुर से डिंडौरी और डिंडौरी से करंजिया तक बस चला करेगी और इस प्रकार करंजिया का सभ्य संसार के साथ सीधा सम्बन्ध हो जायगा, यह सोचकर आनन्द पुलकित हो उठा। यहाँ आते ही पक्की सड़क की आवाज उसी ने तो उठाई थी; चलिए देर से ही सही, सरकार को होश तो आई।

"मनुष्य आज की दुनिया में एक-दूसरे से कटकर तो नहीं रह सकता, रूपी!" एक दिन आनन्द ने सवेरे-सवेरे सड़क का काम देखते हुए रूपी से कहा, "यहाँ इससे अच्छा सामाजिक संगठन असम्भव है जब तक करंजिया की कच्ची सड़क पक्की नहीं बन जाती; यह दस मील का टुकड़ा अब बन जायगा, फिर रह जायगा यहाँ से पेंड्रा रोड का तेंतीस मील का टुकड़ा।

"एक अकाल में दस मील सड़क बनेगी तो तेंतीस मील को पूरा करने

के लिए तो तीन से अधिक बार अकाल पड़ना चाहिए, मेहमान बाबू !"
रूपी ने चुटकी ली !

"यह न कहो, रूपी !" आनन्द ने सिगरेट के धुएँ का बादल रूपी के मुँह पर दे मारा।

"यह सिगरेट का धुआँ मुझे एकदम नापसन्द है, मेहमान बाबू !"

"लेकिन मेरे लिए सिगरेट छोड़ना तो सहज नहीं।"

"क्यों सहज नहीं ?"

"तो मैं सिगरेट छोड़ दूँ ?"

"छोड़ दो तो बहुत ही अच्छा हो !"

आनन्द ने अर्थपूर्ण दृष्टि से रूपी की ओर देखा, जैसे कह रहा हो—वाह ! तुम्हें भला क्या मिल जायगा हमारी सिगरेट छुड़वाकर और सिगरेट छोड़ने का इनाम क्या मिलेगा ? फिर उसे ख्याल आया कि उस दिन मोहें-जोदड़ो में ख्वाह-म-ख्वाह उसने कुलदीप को सिगरेट पीते देखकर सिगरेट पीना शुरू कर दिया था। सिगरेट पीना तो रंजना भाभी को भी नापसन्द है। अब रूपी को भी इससे घृणा है। मैं चाहूँ तो सिगरेट से छुट्टी पा सकता हूँ।

"यह लो !" आनन्द ने सिगरेट फेंककर कहा, "आज से तुम मेरे मुँह में सिगरेट नहीं देख सकोगी।"

रूपी ने गर्व से आनन्द की ओर देखा, जैसे उसकी दृष्टि में एक नया सामाजिक मूल्य झलक उठा हो; एक ने कही, दूसरे ने मानो—वह इस अन्धा-धुन्ध प्रवृत्ति की समर्थक तो न थी, पर जो वस्तु मनुष्य के लिए उसके कर्तव्य की परख में सहायक हो उस पर विचार करके अच्छे-बुरे की पहचान तो आवश्यक थी। आनन्द को सिगरेट फेंकते देखकर रूपी को यह विश्वास हुए बिना न रहा कि आज उसकी बात ठीक निशाने पर बैठी। वस्तुतः आज आनन्द ने पहली बार उसका सम्मान किया; वैसे यदि वह सिगरेट न फेंकता तो इसमें रूपी का तो कुछ नुकसान न था। आज उसे विश्वास हो गया कि

वह आनन्द को प्रेरणा दे सकती है। आज मानो उसने प्रथम बार आनन्द के हृदय में प्रवेश कर लिया।

आनन्द ने भी रूपी की ओर सार्थक दृष्टि से देखा; आज उसने सर्व-प्रथम रूपी की आँखों में स्नेह की रश्मियाँ देखीं, उसे अपने प्रति हितकर अनुभव किया।

सूर्य काफ़ी ऊँचा उठ गया था और यों मालूम होता था कि वह आज फिर आग बरसाने पर तुला हुआ है।

बाज़ार टोला के समीप, बाज़ार के अन्तिम छोर पर, जहाँ लालाराम की दुकान में अन्न-डिपो खोला गया था, बस वहीं से सड़क बननी शुरू हो चुकी थी। एक फरलाँग के लगभग सड़क को हमवार किया जा चुका था और अब उसपर कंकर फैलाया जा रहा था; इस काम में बहुत से स्त्री-पुरुष जुटे हुए थे। टोकरियों में भर-भरकर कंकर सड़क पर डाला जा रहा था।

कुछ स्त्रियाँ गिट्टी तोड़ रही थीं और एक-स्वर होकर किसी गीत की कड़ी गुनगुना रही थीं। उसने रूपी की ओर देखकर कहा, "कल्पना तो करो रूपी, बहुत जल्द सड़क तैयार हो जायगी; फिर जबलपुर से सीधी बस आने लगेगी।"

"करंजिया का भाग्य जाग उठा, मेहमान बाबू!"

"पक्की सड़क के बिना ही तो करंजिया पिछड़ा रहा अब तक। एक इन्सान दूसरे इन्सान-से जुड़ा हुआ है, देश का एक भाग दूसरे भाग से जुड़ा हुआ है; पक्की सड़कें इन सम्बन्धों को और भी सुदृढ़ करती हैं। कच्ची सड़क पर तो छकड़े और बैलगाड़ियाँ ही चल सकती हैं, पक्की सड़कों से उनका क्या मुकाबिला जहाँ मोटर गाड़ियाँ और बसें चलती हैं।"

वे गिट्टी तोड़ने वाली स्त्रियों से दूर निकल आये थे, पर गिट्टी तोड़ने वालियों का गीत ऊँचा उठता गया। आनन्द को उस गीत का स्मरण हो आया जिसकी चर्चा पेंड्रा रोड में एक दिन कुलदीप ने की थी; इसे उसने

बालाघाट की तरफ़ सुना था जहाँ उसने एक बार सड़क बनाने का ठेका लिया था; उस गीत में गिट्टी तोड़ने वाली स्त्री की आवाज़ श्रम-काव्य का सुन्दर उदाहरण प्रस्तुत कर पाई थी, उस में बड़ी मार्मिकता थी। एक-एक करके उस गीत की पुकार उसकी कल्पना में सजग होती गई : अंग पर अंगिया नहीं, भूखी-प्यासी भरी दोपहरी में गिट्टी तोड़ रही हूँ। माँ, छुरु की आवाज़ से किरच शरीर से टकराती है, मेरा जीना हराम है। अंग-अंग पर पसीना उभरता है, छलकता है, आँखों से आँसू बहते हैं। गिट्टी खप-से चुभती है, माँ! रक्त बह निकलता है। पैसे वाले ग़ट-ग़ट खाकर घर में आराम करते हैं। जब सन-सन गरमी पड़ती है तो हमारा काम चलता है; दायें-बायें गरमी पड़ती है; धरती और अकाश तप गये। लू का भभूका चलता है तो मेरे प्राण भी नहीं निकलते, मां! गिट्टी तोड़ते-तोड़ते युवक-युवतियां मर जाती हैं, मेरी जान नहीं निकलती। माँ, कब तक तोड़ूँगी गिट्टी? मुझे तो इस जीने से घिन आने लगी!···उसने कई बार सोचा था कि कहीं से मूल गीत के शब्द हाथ लग जायँ। इस गीत के अगले भाग में शीतकाल का चित्र यों अंकित किया गया था : 'दुनिया गरम बिछौने पर सोती है, माँ! मैं थर-थर काँपती हूँ, जंगल पहाड़ में गिट्टी तोड़ती हूँ। चार हाथ गाती बाँधकर पयाल बिछा-कर सोती हूँ। नींद नहीं आती तो हम पयाल जलाकर रात काटते हैं। इतनी विपता में गिट्टी तोड़ती हूँ और मज़दूरी क्या मिलती है—दो आना रोज़। जीवन-भर चिन्ता लगी रहती है। मायके में सुख पाया न ससुराल में, मेरे लिए तो मृत्यु ही अच्छी होती, माँ! मांस चला गया, हड्डियाँ रह गई। अब जल्दी मर जाऊँ तो जाकर भगवान् से कहूँ—बाबा! मुझे इन्सान का जन्म न देना, और कोई जन्म देना!'···उसे ख्याल आया कि यह गान भी अकाल के दिनों में बना होगा; बाप रे! दो आना रोज़ पर इतनी कठिन मज़दूरी। अब मिलते हैं बारह आने रोज़! वह भी किधर की मज़दूरी है। जैसे सरकार इसी इन्तजार में बैठी रहती है कि कब अकाल पड़े और सस्ती मज़दूरी पर सड़क का काम शुरू किया जाय! यों तो सभ्यता की बेल मंढे

चढ़ने से रही। सहसा उसे धनपाल की डायरी का ख्याल आया जिसमें संस्कृत के कुछ अज्ञात कवियों की कविता के कुछ उद्धरण प्रस्तुत किये गये थे; उनमें भी तो निर्धनता की ऐसी ही विषादमय वाणी प्रतिध्वनित हो उठी है जैसे सड़क पर गिट्टी तोड़ने वाली के इस गीत में! कुछ लोग सड़क पर पानी छिड़क रहे थे, रूपी उस तरफ घूम गई। आनन्द ने दूर से रूपी को देखा। रूपी प्रेम और सौजन्य की मूर्ति के समान खड़ी थी, फिर उसने लालाराम को आवाज देकर कहा, "शरबत की एक बालटी इधर भी भिजवाइए, बड़े काका! ये लोग भी बहुत प्यासे हैं!"

"अभी आ रहा है शरबत उधर भी!" लालाराम ने मुँह पर हाथ का छोटा-सा भोंपू बनाकर आवाज दी।

आनन्द ने यह दृश्य देखा। श्रम और सौजन्य के इस दृश्य का उस पर बहुत प्रभाव पड़ा।

जो लोग कल तक किसान थे, आज गिट्टी तोड़ रहे थे, सड़क पर कंकर बिछा रहे थे, पानी छिड़क रहे थे।

सड़क को समतल करने वाला रोलर भी आ पहुँचा था, जो इंजन से चलता था। वह अभी एक तरफ खड़ा था, ड्राइवर हँस-हँसकर कंकर बिछाने वालों के साथ भद्दे मजाक कर रहा था। पहले तो आनन्द के जी में आया कि ड्राइवर को समझावे कि ये भद्दे मजाक बन्द करो, पर वह खामोश खड़ा रहा।

पक्की सड़क की कल्पना आज इतने दिन बाद सत्य सिद्ध हो रही है, यह विचार आनन्द को पुलकित कर रहा था। पर मजदूरों के शोषण के प्रति उसके हृदय में प्रतिरोध की भावना उभर रही थी। बारह आने में क्या बनता है, पेट भी नहीं भरता; बारह आने रोज तो कुछ भी मजदूरी नहीं। सचाई और न्याय कहाँ पड़े सो रहे हैं? वेदना की टीस सी उठ रही थी और उसे उद्विग्न कर रही थी। इतनी कम मजदूरी पर ये लोग काम करने पर मजबूर हैं—यह विचार उसे सिर से पैरों तक कँपा गया।

उसके मन का एक काँटा यह भी था कि मोहेंजोदड़ो से पिताजी का

पत्र आया था; वे सख्त बीमार थे। यह पत्र शायद उन्होंने काँपते हाथों से लिखा था, जैसा कि अक्षरों की बनावट से पता चलता था। इससे पहले उन्होंने कई बार मामूली शारीरिक कष्ट की चर्चा तो अपने कई पत्रों में की थी, पर कभी उस पर जोर न डाला था कि वह उन्हें मिलने के लिए चला आये। अब तो उन्होंने लिखा था—'आनन्द बेटा, मेरे अन्तिम दर्शन करना चाहते हो तो फौरन चले आओ!' अब वह फौरन कैसे जा सकता था? अकाल का प्रभाव तो अभी बाकी था; बहुत-सा काम सामने था। बाहर से रुपये की तो कमी नहीं रही थी, पर सारे काम की देख-रेख तो आवश्यक थी।

वह चाहता था कि रूपी को पास बुलाकर बता दे कि उसके पिताजी ने उसे फौरन बुलाया है, पर न जाने क्या सोचकर वह खामोश खड़ा रहा! कुछ भी हो, उसे पिताजी से मिलने तो जाना ही होगा, जिस मानवता का यह तकाजा है कि यहाँ रहकर सेवा के कार्य को आगे चलाऊँ उसी मानवता का यह भी तकाजा है कि मैं पिता जी से मिलने अवश्य जाऊँ।

गिट्टी तोड़ने वाले एक गीत गा रहे थे :

हाय रे गिट्टी ला फोरैं राम
देस करंजिया काल पड़ा रे
गिट्टी ला फारैं रे!
दिन भर तो गिट्टी फोरावैं
देवैं बारा आने रेट
ऐसी गिरानी माँ, बाबू!
गरीब चलायन पेट
हाय रे गिट्टी ला फौरैं राम![1]

---

1. हाय रे, हम गिट्टी तोड़ते हैं; करंजिया देश में अकाल पड़ा है, हम गिट्टी तोड़ते हैं। दिन भर हम से गिट्टी तुड़ाते हैं, देते हैं, बारह आने रेट; ऐसी मँहगाई में हम पेट पालते हैं, बाबू! हाय रे, हम गिट्टी तोड़ते हैं!

इस गीत की भावधारा में बहते हुए उसने रूपी के समीप जाकर कहा, "रूपी ! आओ हम मजदूरों को भुने हुए चने बाँटें, लालाराम जी किधर चले गये ? उन्हें बुलाना चाहिए।"

चने बाँटते हुए उसके सामने मोहेंजोदड़ो का दृश्य घूम गया। पिताजी से मिलने वह अवश्य जायगा; आखिर उसे अपने निकटतम कर्तव्य का ध्यान है। उसे लगा जैसे वह एक बालक है और पिताजी दूर से उसे पुकार रहे हैं। उसके जी में तो आया कि अभी यहाँ से चल दे, पर वह मजदूरों को भुने हुए चने बाँटता रहा।

आनन्द ने पीछे मुड़कर देखा कि बेगम कासिमी एक महिला के साथ चली आ रही हैं। वह बहुत खुश नजर आ रही थीं। पास आकर बोलीं, "हैदराबाद से आ रही हैं मेरी अम्मी जान !"

३८

बेगम कासिमी की अम्मी जान रशीद जहाँ एक सम्भ्रान्त घराने की महिला थी; यों लगता था कि सेवा-व्रत उनकी दृष्टि में सबसे महान् है। जिस दिन वे आनन्द से मिलीं, छूटते ही बोलीं, "सेवा को तो मैं अपनी 'हॉबी' समझती हूँ, बेटा! तुम्हारी पहली चिट्ठी पर तो मैंने शहर से ही रुपया इकट्ठा कर लिया था; खैर, हमारी हैदराबाद क्लब की औरतों ने दिल खोलकर चन्दा दिया मेरे कहने पर। जब दूसरी चिट्ठी आई तो मैंने कुछ देहात का दौरा करके रुपया इकट्ठा करना शुरू किया। मैंने औरतों को साफ-साफ बताया कि मंडला जिला में तुम्हारी बहनें भूख से मर रही हैं; मैंने उन्हें यह भी बताया कि यह उतना बड़ा कहत तो नहीं है जितना बंगाल में पड़ चुका है, लेकिन अगर इन लोगों की मदद न की गई तो कौन जानता है कि यह बंगाल से भी ज्यादा तेज़ निकले।"

अब तो बेगम कासिमी पर ही सारी जिम्मेदारी आ गई थी, क्योंकि आनन्द पिताजी से मिलने मोहेंजोदड़ो चला गया था। यों लगता था कि बेगम कासिमी की अम्मी जान इस कार्य में अपनी बेटी से भी कहीं ज्यादा

दिलचस्पी ले रही हैं; आखिर वे हैदराबाद से चौदह हजार रुपया लेकर आई थीं।

अम्मी जान सवेरे ही अपनी बेटी को जगा देतीं और दिन-भर जैसे उन पर सेवा-व्रत का नशा-सा छाया रहता। अब तो कासिमी साहब भी कहते, "देखो नसीम, खिदमते खलक ही सच्ची खिदमत है। अम्मी जान जो कहें वही करो, कोई कसर उठा न रखो।"

अम्मी जान अपनी बेटी नसीम के साथ डीपो पर आतीं तो उनकी आँखें चमक उठतीं; माथे की एक-एक झुर्री यों दमक उठती जैसे खेत में हल की रेखाओं पर किरणें थिरक उठी हों।

थानेदार अब्दुल मतीन और सैयद नूर अली एक-दूसरे से बढ़-चढ़कर बाहर से अनाज लाने और यहाँ बाँटने के काम में दिलचस्पी लेते। सैयद नूर अली हस्पताल से निकाल दिये जाने के कारण आनन्द से नाराज था, लेकिन अम्मी जान के व्यक्तित्व के प्रभाव से अनाज बाँटने के काम में सबसे अधिक हाथ बटाता; उसका विचार था कि अब आनन्द लौटकर नहीं आयेगा।

हस्पताल में अब डाक्टर आ गया था। उसने आते ही सैयद नूर अली की रिपोर्ट कर दी थी कि इतने वर्ष नूर अली मुफ्त की तनख्वाह लेता रहा है और उसने कभी तिनका तोड़कर दुहरा नहीं किया। अब नूर अली लोगों से यह कहता फिरता था कि डाक्टर वली मुहम्मद ने अपने दूर के भतीजे जहीर को कम्पाउंडर बनाने के लिए ही यह चाल चली। उसका यह भी ख्याल था कि आनन्द की बातों में आकर ही डाक्टर वली मुहम्मद ने उसके विरुद्ध रिपोर्ट की थी। उसका दोष तो इतना ही था कि वह मास्टर रामबिहारी लाल के साथ सहमत होकर कभी-कभी कला-भारती की कटु-आलोचना कर डालता था।

एक-दो बार लालाराम ने नूर अली को अनाज के डीपो से अपने ओवरकोट की जेबों में अनाज भरकर ले जाते हुए देखा था। लेकिन यह

सोचकर कि अम्मी जान नूर अली से बहुत खुश हैं, वह चुप रह गया था। अम्मी जान तो नूर अली पर इतनी खुश थीं कि उन्होंने एक दिन सबके सामने डाक्टर वली मुहम्मद को बुलाकर कहा, "बेटा, यह तो तुमने अच्छा नहीं किया कि बेचारे नूर अली की रोजी मार डाली। किसी के मुँह से रोटी का टुकड़ा छीन लेना तो बहुत बड़ा गुनाह है, बेटा! जानते हो सबसे बड़ा सवाब क्या है? सबसे बड़ा सवाब है किसी के मुँह में रोटी डालना।"

डाक्टर वली मुहम्मद ने लज्जित होकर सिर झुका लिया। अम्मी जान ने सोचा कि नूर अली का काम बन गया, लेकिन अगले ही क्षण वली मुहम्मद ने कहा, "अम्मी जान, कम्पाउंडर का काम तो वह बिल्कुल नहीं जानता।"

पास से नूर अली ने गरम होकर कहा, "और जहीर को भी क्या आता है, डाक्टर साहब?"

अम्मी जान ने नूर अली को रोककर कहा, "देखो बेटा, डाक्टर साहब फिर भी तुमसे बड़े हैं। उनके मुँह तो न आओ। वे फिर भी तुम्हारी मदद करेंगे।"

नूर अली हारकर भी हार नहीं मानना चाहता था। उसकी जबान तो अब पहले से भी ज्यादा चलने लगी थी। उसके व्यंग्य से कोई भी बच नहीं सकता था। ब्रह्मचारी अचिन्तराम हो चाहे मंडल, लालाराम हो चाहे समलू। बस वह कोई-न-कोई तीर छोड़ता ही रहता। कभी-कभी तो वह थानेदार अब्दुल मतीन को भी न बख्शता; अब्दुल मतीन का कसूर इतना ही था कि वह डाक्टर वली मुहम्मद से नफ़रत नहीं करता था।

अम्मी जान के सामने तो नूर अली आनन्द के विरुद्ध कुछ न कहता, लेकिन ब्रह्मचारी अचिन्तराम को छेड़ते हुए तो उसने एक दिन यहाँ तक कह डाला, "देख लिया तुम्हारे आनन्द बाबू का हाल; ज्यादा नहीं तो पाँच हजार पर तो हाथ मार ही लिया होगा। अब क्यों भाग गये मैदान छोड़कर? इसलिए न कि अम्मी जान पर राज़ न खुलने पाये। जैसा गुरू वैसा चेला।

बस ढके ही रहिये, ब्रह्मचारी जी !"

"आनन्द बाबू के पिता बीमार थे," ब्रह्मचारी अचिन्तराम ने सहज भाव से कहा, "बीस दिन बाद वे लौट आएँगे। उनके खिलाफ मुँह पर बोल लाना तो ऐसे है जैसे चाँद पर थूकना।"

उधर से रामबिहारी लाल भी आ गये। उन्होंने छूटते ही कहा, "हमने सुना है आनन्द जी हमेशा के लिए चले गये। खैर वे अच्छे बच निकले।"

"यही तो मैं भी कह रहा था, हैडमास्टर साहब !" नूर अली ने डीपो से बाहर आकर कहा, "अब ये ब्रह्मचारी जी हैं कि मेरी बात पर कान ही नहीं धरते। सचाई तो सचाई है, आज नहीं तो कल आ जायगी सामने।"

"परे से समलू चला आ रहा था। नूर अली ने पुकारकर कहा, "समलू, इधर आना जरा।"

समलू पास आ गया और बड़ी उत्सुकता से नूर अली की ओर देखने लगा।

"छुट्टी कर आये, समलू?" नूर अली ने पूछा, "कहो कितनी सड़क बनवा आये?"

"एक फरलांग सड़क तो आज पूरी हो गई।"

"रूपी अब नजर ही नहीं आती।" नूर अली ने हँसकर कहा, "बेचारी मासूम लड़की, वह क्या जानती थी कि आनन्द चला जायगा।"

समलू ने इसका कुछ उत्तर न दिया। वह अपने घर की ओर चल पड़ा।

गोधूली वेला के प्रकाश में नूर अली डीपो के सामने यों खड़ा था जैसे वह आज हर किसी से अपना बदला ले सकता हो। इस समय वली मुहम्मद वहाँ आ जाता तो वह शायद उससे भी भिड़ जाता। भले ही अम्मी जान ने उसे सख्त ताकीद कर रखी थी कि वह वली मुहम्मद से अदब के साथ बात करे।

कुछ दिन पहले तक तो करंजिया का यह छोर दिन-भर शान्त रहता था और रविवार के दिन ही जब हाट-बाजार लगता, यहाँ चहल-पहल

नज़र आती। हाट-बाजार तो कभी का बन्द हो चुका था। सड़क बननी शुरू हुई तो यहाँ दिन-भर मेला-सा लगा रहता; अब तो सड़क का काम एक फरलाँग परे को सरक गया था।

लालाराम हर समय तो इस डीपो पर नहीं रह सकता था। आसपास के गाँवों में तीन चार जगह डीपो खोले गये थे। उसे निगरानी के लिए कभी इस डीपो पर जाना पड़ता, कभी उस डीपो पर। नूर अली को अपने ओवरकोट की जेबों में अनाज भरने की आवश्यकता न थी; किसी-न-किसी उपाय से अनाज की पोटली उसके घर पहुँच जाती।

थोड़ी देर बाद जब सड़क के मजदूर इधर से गुजरे तो उनके पीछे-पीछे मंडल और रूपी भी चले आ रहे थे। नूर अली ने आवाज़ दी, "सुनो तो, मंडल भैया!"

मंडल पास आकर खड़ा हो गया। उसके बाईं ओर रूपी खड़ी थी।

"आनन्द जी की कोई खबर आई, मंडल भैया?"

"उनकी खबर क्या आयेगी, बीस दिन बाद आनन्द बाबू खुद ही आ जायँगे।"

रूपी के चेहरे पर यह सुनते ही एक चमक-सी आ गई।

"और अगर आनन्द जी न आये?"

"आयँगे कैसे नहीं?"

"थानेदार अब्दुल मतीन कह रहे थे—अब तुम्हारे आनन्द जी आ चुके। मैंने कहा—थानेदार साहब ऐसे तो मत बोलो, हमारे आनन्द साहब तो बहुत अच्छे आदमी हैं और हमें उनकी जरूरत है।"

रूपी की आँखों में आन्तरिक हर्ष की रश्मियाँ झलक उठीं।

"हमारे मेहमान बाबू जरूर आयँगे, कम्पाउंडर काका!"

'कम्पाउंडर' शब्द सुनकर नूर अली का घाव हरा हो गया। उसने कहा, "मेरा तो खयाल है कि आनन्द जी अब लौटकर नहीं आयँगे।"

"लौटकर नहीं आते, तो न आयें। उनका बताया हुआ रास्ता तो हमारे

सामने है, हम उस पर चलेंगे।"

नूर अली उलटे-सीधे उपायों से आनन्द पर छींटे कसता रहा; मंडल कुछ न बोल सका। रूपी ने भी कुछ बोलना उचित न समझा; उसके जी में तो आया कि हाथ बढ़ाकर नूर अली की जबान नोच ले, लेकिन उसने शान्त रहना उचित समझा।

"अच्छा हम चलते हैं, सैयद साहब!"

"ऐसी भी क्या जल्दी है, मंडल भैया?"

बाप-बेटी जल्दी-जल्दी पग बढ़ाकर घर की ओर चल दिये। गोधूली वेला रात्रि में बदल गई थी और अब रास्ता नजर नहीं आ रहा था। रूपी का दृष्टिपथ तो और भी अन्धकारमय हो गया।

३६

समलू किसी काम से भीमकुण्डी गया था। धनपाल को किसी तरह पता चल गया। उसने मुन्शी दीनानाथ को बुलाकर कहा, "देखिये मुन्शी जी, यह समलू का बच्चा अभी तक काबू नहीं आया। अब मौका है। तुम उसे पकड़ सकते हो!"

मुन्शी दीनानाथ को बहुत दिनों के बाद अपनी शक्ति दिखाने का अवसर मिला। उसने अपने घर जाकर अपनी पत्नी नर्वदिया की ओर देखकर कहा, "देख नर्वदिया, आज फुलमत के बाप की कैसी गत बनती है! हमने तो फुलमत के भले की सोची थी।"

"तुमने फुलमत का वैसा ही भला करना था जैसा मेरा किया। मुझे भी तुम ठाकुर साहब की रानी बनाने का चकमा देकर लाये थे।"

"अरी यहाँ तुम कौनसी रानी से कम हो।"

मूँछों पर ताव देते हुए दीननाथ बाहर निकल गया और सीधा उस डीपो में जा पहुँचा जो भीमकुण्डी में करंजिया रिलीफ-कमेटी की ओर से खोला गया था।

समलू बैलगाड़ी पर अनाज के बोरे लदवाकर पिछली रात ही यहाँ पहुँचा था। वह थककर इस डीपो में ही सो गया था; किसी तरह धनपाल को यह खबर मिल गई थी।

दीनानाथ का संकेत पाकर दो आदमियों ने समलू की मुश्कें बाँध दीं और आधी रात के समय उसे उठाकर मालगुज़ार के ऊपर वाले ड्राइंग रूम में ले आये। यहाँ पहुँचकर उसकी मुश्कें खोल दी गईं।

"मेरा क्या दोष है, भैया?" समलू ने रोकर कहा।

"तेरा क्या दोष होगा समलू?" दीनानाथ ने नरम होकर कहा, "सब तेरे भाग्य का फेर है। हमारी मानता तो आज ठाकुर साहब तेरे दामाद होते।"

"जो होना था सो तो हो गया, भैया! मुझे अब क्यों पकड़ लाये हो?"

दीनानाथ का संकेत पाकर दोनों आदमी बाहर चले गये। समलू कुछ समझ न सका कि क्या होने वाला है। कोई संकट सिर पर है। इतना वह अवश्य जानता था।

फिर दीनानाथ भी बाहर चला गया; बाहर से कुण्डी लगने की आवाज़ आई। समलू सब समझ गया।

समलू की आँखों में उसकी पत्नी लहरी घूम गई जिसने अकेले अपने पति की ही नहीं सारे करंजिया की शराब छुड़ाई थी। फिर उसे फुलमत का ध्यान आया। फुलमत के विवाह की झाँकी कितनी सुन्दर थी। मन ही मन में उसने सोम को आशीर्वाद दिया—जिओ बेटा, तुमने मेरी फुलमत का सत बचा लिया!

थोड़ी देर बाद नीचे से 'चोर चोर' की आवाज़ें सुनाई दीं। समलू ने सोचा कि इस घर में चोर कहाँ से आ सकता है, यहाँ तो सख्त पहरा रहता है। लेकिन 'चोर चोर' की आवाज़ें समीप आती गईं। समलू ने सोचा शायद ये आवाज़ें उसी के लिए आ रही हैं।

उसने जीवन-भर कभी चोरी न की थी। उसकी आँखों में उसकी माँ

घूम गई जिसने बचपन से ही उसे शिक्षा दी थी—बेटा, अपनी दस उंगली की कमाई खाना! माँ की सीख मानकर वह जीवन-भर इसी डगर पर चलता आया था। उसने तो कभी किसी की फूटी कौड़ी भी न उठाई थी। जब लालाराम ने अपनी बही से उसके कर्ज़ का हिसाब रुपया लिये बिना ही साफ़ कर डाला था तो उसने रो-रोकर कहा था, "मैं तुम्हारे रुपये जरूर दूँगा, लालाराम जी! तुम्हारे रुपये तो खरे हैं। बही पर लिखने या न लिखने से क्या होता है? हिसाब तो दिल के काग़ज़ पर लिखा जाता है!" ···और अब उसे चोर बनाया जा रहा था।

सहसा दरवाज़ा खुला और उन्हीं दो आदमियों ने उसे पकड़ लिया जो उसकी मुशकें कसकर उसे यहाँ उठा लाये थे।

दीनानाथ ने ड्राइंग-रूम का लैम्प जला दिया। 'चोर चोर' की आवाज़ें सुनकर धनपाल भी ऊपर से ड्राइंग-रूम में आ गया और बिना कुछ कहे-सुने पूर्व की ओर खुलने वाली खिड़की के समीप कुर्सी पर जा बैठा, जहाँ कोने वाली मेज़ पर नीली जिल्द वाली डायरी रखी थी।

दोनों आदमी समलू को पकड़े खड़े थे।

"इसके लिए क्या आज्ञा है, मालिक?" दीनानाथ ने अपनी कारगुजारी दिखाते हुए कहा।

"कितने में बेच डाली फुलमत?" धनपाल ने कहना शुरू किया, "पाँच-सौ में बेच डाली? अरे उल्लू, पाँच सौ में तो अच्छी घोड़ी भी नहीं आती। तेरी फुलमत के माथे पर तो राजतिलक का चिह्न है। हमने वह चिह्न देख लिया था। हमें तो रानियों की कमी नहीं, पर तूने अपनी फुलमत का ही नुकसान किया। यहां आती तो रानी बनकर रहती, उम्र-भर राज भोगती।"

धनपाल ने नीली जिल्द वाली डायरी उठाकर वह पृष्ठ खोला जिस पर उस दिन आनन्द ने फासिज़्म के विरुद्ध अपने विचार लिख डाले थे; वह इस पृष्ठ को देर तक पढ़ता रहा। फिर उसने आँख उठाकर दीनानाथ को

संकेत किया।

दीनानाथ ने 'चोर चोर' का शोर किया और नीचे भीड़ जमा होती गई।

फिर दीनानाथ ने दोनों आदमियों को संकेत किया और वे समलू को पकड़कर नीचे ले गये।

"मेरा क्या कसूर है ?" समलू ने भीड़ की ओर देखकर पूछा। किसी ने कुछ उत्तर न दिया, पर हर किसी की आँखों में एक ही उत्तर लिखा हुआ था—तुम चोर हो !

नीचे अहाते में समलू की मुश्कें बाँधी जा रही थीं; ऊपर खिड़की से धनपाल यह दृश्य देख रहा था।

जब समलू को घोड़े पर बिठाकर ले जाने लगे तो उसने रोकर कहा, "मुझे कहाँ ले जा रहे हो ?"

"थाने !" भीड़ में से किसी ने कहा।

४०

उड़ती चिड़िया बार-बार यही खबर लाई कि अब आनन्द लौटकर नहीं आयेगा; अम्मी जान ने आनन्द का बहुत इन्तजार किया और वे हैदराबाद लौट गईं। आनन्द पन्द्रह दिन के लिए गया था, अब डेढ़ महीने तक न वह स्वयं आया, न उसकी कोई चिट्ठी आई। अब तो सोम ने भी सोच लिया कि कला-भारती की जिम्मेदारी उसी के कन्धों पर आ पड़ी।

चुन्नू मियाँ बहुत उदास रहने लगा था; उड़ती चिड़िया की बात पर कान धरने का तो सवाल ही न उठता था।

फुलमत को उतनी आनन्द के न आने की चिन्ता न थी जितनी अपने पिता के पकड़े जाने की। अब समलू पर चोरी का अपराध था और चोरी के मुक़दमे में ज़मानत भी न हो सकती थी। सब जानते थे कि समलू नेक आदमी है, पर धनपाल ने तो मौका के गवाह देकर झूठ को सच कर दिखाने में एड़ी-चोटी का जोर लगा दिया। सब जानते थे कि अदालत पर धनपाल का प्रभाव है और वह जो चाहे कर सकता है। वैसे सोम ने भी इस मामले

में अपने ससुर की मदद करने में कोई कसर उठा नहीं रखी थी, लेकिन धनपाल ने क़ानून का मुँह अपनी ओर मोड़ लिया था।

आनन्द की अनुपस्थिति में फुलमत सदा छिप-छिपकर रोती रहती; उसका ख्याल था कि आनन्द होता तो धनपाल से कह-सुनकर उसके पिता को छुड़वा देता। सोम समझाता, "मामला बड़ा टेढ़ा है, फुलमत! इसमें आनन्द भी क्या कर सकता था! धनपाल से तो मैं भी कह-सुन सकता हूँ, लेकिन धनपाल कहता है कि यह तो चोरी का मामला है और यह मुक़दमा तो सरकार बनाम समलू है न कि धनपाल बनाम समलू। आज मैंने लाख समझाया कि समलू तो नेक आदमी है। धनपाल बोला—अजी यह तो हर दामाद का कर्तव्य है कि अपने ससुर की प्रशंसा करे, लेकिन अदालत को समझाओ, वहाँ जज के सामने सिद्ध करके दिखाओ कि मौका के गवाह झूटे हैं।"

बार-बार फुलमत उदास हो जाती, वेदना की घटा उठती और आँखों से अश्रुधारा बह निकलती।

जब से सोम का विवाह हो गया था, उसने अपने लिए कला-भारती की बगल में अलग झोंपड़ी बना ली थी।

सनमत अभी बच्ची थी; उसे तो बकरी का मेमना ही सबसे अधिक प्रिय था। कई बार वह काका को भी याद करने लगती, पर उसे क्या पता था कि काका जेल में बैठे हैं। काका पर तो मुक़दमा चला और दो-तीन तारीखें पड़ीं, वह भी हफ्ता-दस दिन के अन्तर से, वही चट मंगनी पट ब्याह वाली बात हुई; पाँच हजार सोने के गहने चुराने का अपराध लगाया गया था। ये गहने धनपाल के बड़ी-बड़ी मूँछों वाले मुन्शी ने षडयन्त्र करके स्वयं ही समलू की कमर के गिर्द बाँध दिये थे। मुक़दमा साफ था। काका को दो साल की कैद हो गई। फुलमत ने एक दिन बकरी के बच्चे के साथ खेलती हुई सनमत को गोद में उठाकर कहा, "काका कब आयेंगे, सनमत?"

"काका आज आयँगे !" सनमत ने तोतली जबान में कहा ।

"आज नहीं कल आयँगे काका !" फुलमत ने जैसे अपने को झुठलाते हुए कहा, हालाँकि उसे मालूम था कि काका तो दो साल के लिए अन्दर कर दिये गये ।

फुलमत की आँखों में सदा आँसू नज़र आते, फिर भी उसे सोम के आराम का पूरा ध्यान रहता; वह अपना कर्तव्य पहचानती थी । सोम को कई बार सोफिया का ध्यान आ जाता, जिसने एक बार संकेत-ही-संकेत में उसके साथ विवाह करने का प्रस्ताव रखा था; वह सोचता कि यदि सोफिया उसकी पत्नी होती तो कदाचित् वह इतना सुखी न हो पाता जितना वह आज था ।

घर की प्रत्येक वस्तु को फुलमत बड़ी सफाई से और सजाकर रखती, घर सँभालने की कला में वह बहुत दक्ष थी । न वह दूसरों से ईर्ष्या करती थी, न कभी स्वार्थ-वश लोभ और अन्याय का मार्ग अपनाती, बल्कि वह तो सदा दूसरों की भलाई में ही अपनी भलाई समझती । आखिर वह समलू की बेटी थी जिसने कभी किसी का बुरा करना तो दूर रहा, किसी का बुरा सोचा तक न था । कई बार वह दृश्य उसकी आँखों में घूम जाता, जब उनके घर कुर्की का कागज़ आया, जब दोनों बैल, बकरियाँ और कपड़े-लत्ते कुर्क हो गये थे। धनपाल के प्रति उसके मन में घृणा का सागर हिलोरें लेने लगता; उसका सत लूटकर वह उसे यों फेंक देता जैसे दूध से मक्खी निकालकर फेंक दी जाती है; रानी बनाना तो दूर रहा, वह तो मुझे लौंडी बनाकर भी न रखता । नर्बदिया को ही लो, वह भी वहाँ जाकर फँस गई; बेचारी को मालगुजार के मुन्शी ने चकमा तो यही दिया था कि उसे रानी बनवा देगा, डाल ली अपने घर में । अब नर्बदिया तो बड़ी शर्म वाली लड़की है, उसी बड़ी-बड़ी मूँछों वाले मुन्शी के घर में बस गई । अच्छी लड़कियाँ तो बार-बार दरवाजे नहीं बदलतीं । नर्बदिया भी अच्छी लड़की है ।

सोम सोचता कि फुलमत उस पौधे के समान है जिस की जड़ें धरती में गहरी धँसती चली जाती हैं। सोफ़िया उसकी पत्नी होती तो शायद उसे छोड़कर चली जाती। गौर वर्ण ही तो सौन्दर्य की इतिश्री नहीं होता। फुलमत साँवली ही सही; कितनी स्नेहमयी है फुलमत। वस्तुतः किसी स्त्री की परख तो स्नेह के मापदण्ड से ही हो सकती है। फुलमत मुझे कभी अपनी आँखों से ओझल नहीं होने देती। जीवन की कठिन डगर पर फुलमत सदा मेरे साथ चलेगी। उसे मुझ पर सन्देह नहीं। सोफ़िया होती तो शायद यों ही सन्देह का पहाड़ खड़ा कर देती और मुझे छोड़कर भाग जाती। प्रेम तो पहली शर्त है, नहीं तो विवाह का खेल बन ही नहीं सकता। प्रेम भी दिशा चाहता है; विवाह यदि प्रेम का दिशा-संकेत नहीं बन सकता तो व्यर्थ है। फुलमत किसी मानसिक-द्वन्द्व से पीड़ित नहीं है जैसे सोफ़िया थी; सोफ़िया तो मुझे केवल इसीलिए चाहती थी कि मैं एक कलाकार हूँ, वैसे वह समाज के सामने तो एक फैशनेबल सोसाइटी गर्ल के रूप में ही थिरकना चाहती थी। खैर छोड़ो, सोफ़िया अपने लिए जैसा मार्ग चाहे चुने; मुझे तो अपनी फुलमत ही अच्छी लगती है।

फुलमत तरह-तरहकी कहानियाँ सुनाती, सोम इन्हें शौक से सुनता और आदिवासियों की कल्पना की प्रशंसा करता। इन्द्रधनुष की वह कहानी तो उसे बेहद प्रिय थी जिसमें फुलमत के कथनानुसार कद्दू की कल्पना एक सच्ची वस्तु थी; यह कहानी उसने बचपन में अपनी माँ लहरी से सुनी थी: इन्द्र-धनुष सदा बाँबी से उठता है, बाँबी में नाग-देवता रहते हैं, वे उस कद्दू को सँभाल कर रखते हैं जिसमें से इन्द्रधनुष निकलकर आकाश पर छा जाता है, इसका दूसरा सिरा दूसरी बाँबी की खोज में बहुत दूर जाकर झुकता है; दूसरा सिरा भी उसी बाँबी पर जाकर झुकता है जिसमें वैसे ही जादू के कद्दू की बगल में नाग कुण्डली मारे बैठा रहता है। खिलावन का उल्लेख करते हुए फुलमत बताती कि वह उसके लिए जादू का कद्दू ढूँढकर लायगा। जादू के कद्दू की शक्ति तो इतनी बताई जाती थी कि यदि यह बाँझ स्त्री

को दे दिया जाय तो उसके बच्चा हो सकता था, वैसे तो जादू के कद्दू की दवा सब स्त्रियों के लिए लाभदायक थी। सोम कई बार मजाक कर चुका था, "फुलमत! अभी क्या जल्दी है? अभी से तो जादू के कद्दू की बात मत सोचो!"

'जादू के कद्दू' की बात सोचते हुए सोम को फिर सोफ़िया का ध्यान आ जाता। सोफ़िया ने कहा था न कि सोम मैं एक ही शर्त पर तुम्हारे साथ विवाह कर सकती हूँ कि तुम मुझे माँ बनने के लिए मजबूर नहीं करोगे। इसके लिए उसने यह शर्त भी तो रखी थी कि पहले सोम ईसाई-धर्म स्वीकार करे; फिर बाइबल के 'सर्मन आन् दि माउंट' का पाठ करने के बाद बाइबल की शपथ लेकर वचन दे कि वह सोफिया को कभी माँ बनने के लिए मजबूर नहीं करेगा। अब वह तो उसकी शर्त नहीं मान सका था। इसलिए अब जिससे भी सोफिया ने विवाह किया होगा, उससे यह शर्त मनवा ली होगी, और यहाँ यह मेरी गोंड 'सोफिया' है कि उसे जल्द-से-जल्द इन्द्रधनुष वाली बाँबी से जादू का कद्दू मंगवाकर खाने की अभिलाषा है। हँसी-हँसी में उसने इस गोंड लोक-कथा के आधार पर एक चित्र बनाया और अगले ही दिन उसे रंजना भाभी को भेज दिया; साथ ही उसने अपने विवाह का किस्सा भी लिख भेजा जो उसने अब तक छिपा कर रखा था।

रंजना भाभी ने यह चित्र बहुत पसन्द किया, जैसा कि उसने अपने पत्र में लिखा, और उसने उसके विवाह पर बहुत बधाई दी और जोर देकर लिखा कि वह अपनी दुलहन को लेकर पेंड्रा रोड अवश्य आये। जादू के कद्दू का उल्लेख करते हुए रंजना ने चुटकी ली थी—पेंड्रा रोड में भी जादू का कद्दू हाथ लग सकता है! आइए तो सही...'

सनमत भी कला-भारती में जाने लगी थी; वह भी ऐसे-ऐसे चित्र अंकित करने लगी थी कि उन्हें देखकर फुलमत के हृदय में भी जैसे सोई हुई कला जाग उठी। सोम से छिप-छिप कर वह भी चित्र अंकित करने लगी। जैसे

उसका आत्मविश्वास जाग उठा हो।

एक दिन दोपहर के समय फुलमत बैठी चित्र बना रही थी; यह चित्र उसके अपने विवाह का चित्र था। उसने अपने समीप ही सोम को हाथ बाँधे बैठा दिखाया था। विवाह का मण्डप केले के पत्तों से सजाया गया था, दूसरी ओर अनेक देवता बैठे सोम की पूजा स्वीकार कर रहे थे और हाथ उठाकर वर-वधू को आशीर्वाद दे रहे थे।

चित्र बन चुका था।

उधर से सोम आ निकला। उसने आते ही कहा, "कुछ सुना, फुलमत ?"

"क्या खबर लाये हो ?"

"रंगली मालगुजार की रानी बन गई, फुलमत ! कहते हैं मालगुजार ने कसम खा ली थी कि ब्याह करेगा तो टीकरा टोला की किसी लड़की से ही करेगा।"

"तो रंगली का विवाह हो-गया ? किस रीति से हुआ ?"

"विवाह की तो एक ही रीति है, फुलमत ! कोई इसे गोंड-रीति कह ले चाहे हिन्दू रीति चाहे बन्दर रीति !"

'बन्दर रीति' का नाम सुनकर फुलमत हंस पड़ी। "यह बन्दर रीति क्या होती है जी ?"

"तुम ने कभी मदारी का तमाशा नहीं देखा, फुलमत ? मदारी कितने मज़े से बन्दर बन्दरिया का ब्याह रचाता है। पहले वह अपनी डुगडुगी बजाता है—डुग-डुग ! डुग डुग। बन्दर के सिर पर टोपी देकर मदारी कहता है—लो बेटा, कन्धे पर शाल भी डाल लो। फिर कहता है—चलो बेटा, तुम्हारा ब्याह होगा। उधर से सजी-शिंगारी बन्दरिया को बन्दर की ओर घुमाकर मदारी कहता है—चल बेटी, तेरा दूल्हा आ गया। मदारी के हाथ में बन्दर और बन्दरिया के गले की रस्सियाँ रहती हैं, वह रस्सियों को घुमाता जाता है, बन्दर-बन्दरिया नाचते हैं, उन्हें जैसे विश्वास हो गया हो कि उनका ब्याह अब कभी नहीं टूट सकता ! डुग डुग डुग डुग—यही ब्याह का ताल है

जो न बन्दर बन्दरिया को भूलता है न इन्सानों को ?"

"तो बन्दरिया खुश रहती है ब्याह के बाद ?"

"खुश क्यों न रहेगी फुलमत !"

अचानक सोम की दृष्टि एक ओर रखे हुए चित्र पर पड़ी। उसने कहा "यह क्या बनाया है फुलमत ?"

"यह भी बन्दर-बन्दरिया का चित्र है जी !" फुलमत ने हंसकर कहा, "बन्दर देवताओं की पूजा कर रहा है, देवतागण बन्दर की पूजा स्वीकार कर रहे हैं, और बन्दरिया लाज की गठरी बनी बैठी है !"

फुलमत और सोम की निगाहें उस चित्र पर झुक गईं।

बाहर से आवाज आई, "सोम !"

सोम ने आवाज पहचानकर कहा, "आनन्द आ गया !"

और अगले ही क्षण बाहर निकालकर सोम ने आनन्द को अपनी बाहों में भींच लिया।

"कैसे आये, आनन्दजी !" फुलमत ने बाहर निकलकर पूछा।

"अब क्या देर लगती है आने में ?" आनन्द ने कहा, "भाभी ! बस पर आया हूँ। सड़क बन गई तो बस क्या पीछे रहती ?"

४१

दिन-भर मूसलधार वर्षा होती रही; चतुर्दिक पानी की आवाज़, एक विचित्र, रहस्यमयी-सी आवाज़; आनन्द की कल्पना में वर्षा के शत-शत चित्र उभरे। वस्तुतः यह दृश्य, पानी का सितार निरन्तर बजते रहने का यह अन्दाज़, चतुर्दिक पानी ही पानी, उसके अन्तरस्थ उल्लास को झकझोर गया।

कला-भारती में कल उसके करंजिया लौट आने की ख़ुशी में छुट्टी रही, और आज वर्षा की ख़ुशी में; उसके करंजिया लौट आने की ख़ुशी सबसे ज़्यादा चुन्नू मियाँ को हुई। रूपी उससे मिलने नहीं आई थी, कोई काम हो गया होगा, या शायद वह रूठ गई; आज तो वर्षा में भीगती कैसे आती। रूपी रूठ गई तो मान जायगी; उसे समझा देंगे कि मोहेंजोदड़ो में पिता जी की बीमारी के कारण तीन महीने लग गये और उसे इतनी परेशानी रही कि वह रूपी को पत्र तक न लिख सका। किसी और को पत्र लिखा होता, रूपी को ही न लिखा होता, तो रूपी को रूठने का अधिकार था; अब तो उसका दोष क्षम्य था। पिताजी बीमार थे; उनके अच्छा होने तक मोहेंजोदड़ो में

रहना उसका कर्तव्य था।

"अच्छा तो हमारे दीवानजी की सेहत अब अच्छी है!" चुन्नू मियाँ ने खुश होकर कहा था, जब कल यहाँ पहुँचकर उसे मोहेंजोदड़ो की खबरें सुनाई गईं। चुन्नू मियाँ ने फ़ज़ल इलाही का हाल भी तो पूछा था; जब उसे बताया गया कि फ़ज़ल इलाही सूखकर काँटा हो रहा है, उसने छूटते ही कहा था, "मैं उसे हमेशा समझाया करता था कि मियाँ फ़ज़ल इलाही, हसद नहीं किया करते, क्योंकि अल्ला पाक को भी इन्सान की यह आदत पसन्द नहीं। अब तो उसे हसद करने की खुली छुट्टी मिल गई होगी; मेरा ख्याल है कि वह पन्नालाल से ही हसद करता होगा।" पन्नालाल की सेहत का हाल पूछने से पहले चुन्नू मियाँ ने कहा था, "रेशमा बीबी तो अच्छी थीं, राजा बाबू?" जब उसे बताया गया कि रेशमा तो कली से फूल बन गई तो चुन्नू मियाँ ने कहा था, "रेशमा बीबी तो एकसाथ सौ इन्सानों को खुश रख सकती है; यह वसफ़ किसी-किसी औरत में होता है, राजा बाबू!" उस समय वह संकोचवश यह नहीं पूछ सका था कि रूपी के बारे में तुम्हारा क्या ख्याल है; और अब जब कि पानी का सितार बज रहा था, आनन्द को रूपी की याद आ रही थी।

पानी न बरस रहा होता तो आनन्द रूपी से मिल आता और क्षमा-याचना कर लेता। खैर पानी बरस रहा है, यह तो अच्छा है; किसी तरह बादलों को करंजिया का रास्ता तो मिला; करंजिया की काली मिट्टी तो पानी की बूँद को तरस गई थी। काली मिट्टी के भाग्य जागे, जल-थल एक हो रहा है। अब अकाल किस चोर दरवाज़े से घुसेगा? अक़ाल से छुट्टी मिली। बाहर से कितनी मदद आयेगी? घर में ही खाने को होना चाहिए। खेतों से अधिक दयावान कौन होगा?

बाहर की मदद का ध्यान आते ही उसकी आँखों में नसीम की अम्मी-जान रशीद जहाँ का झुर्रियों वाला चौड़ा-चकला चेहरा घूम गया; अफ़सोस यही था कि उसे मोहेंजोदड़ो जाना पड़ गया था और वह जल्दी लौटकर

न आ सका, अम्मी जान ने बहुत इन्तज़ार किया और आखिर उन्हें वापस जाना पड़ गया; अब वह उन्हें चिट्ठी लिखेगा और सारी बात खोल-कर बतायेगा।

किस तरह समलू पर पाँच हज़ार के गहनों की चोरी का झूठा इलज़ाम लगाकर धनपाल ने उसे जेल में पहुँचा कर दम लिया और दो साल के लिए बेचारे की ज़िन्दगी पर ताला लग गया, चुन्नू मियाँ ने कल रात करंजिया की यह कहानी बड़े रंगीन लहजे में सुनाई थी; फिर वह रंगली का किस्सा ले बैठा, वही टीकरा टोला के गमीरा की बेटी रंगली, जो कला-भारती में पढ़ती थी; धनपाल ने गमीरा को दो सौ रुपये देकर उसकी रंगली ख़रीद ली, बाप ने बेटी को सस्ते दामों बेच डाला, क्योंकि अकाल में हर चीज़ मँहगी हो जाती है, खाली इन्सान की कीमत ही गिरती चली जाती है—जैसे गमीरा को भय हो कि अब इतने अच्छे ग्राहक को न कर दी तो शायद फिर उसे इतने का ग्राहक भी न मिले।

चुन्नू मियाँ ने यह भी बताया कि पिछले महीने बाहर से तीन-चार बाबू यहाँ आकर सवा सौ मर्द-औरतों को भर्ती करके ले गये; यह सुनते ही आनन्द की आँखों में वह गीत घूम गया जिसकी चर्चा पेंड्रा रोड में कुल-दीप ने की थी—वही कुलदीप का बस्तर राज्य में सुना हुआ गीत जिसमें कहा गया था : ···साहब भर्ती करेंगे, हम इस देश से दूर देश में जायँगे! ···चलो तुम्हें भर्ती करें!···सोमा जी को साहब ले गया, फिर वह लौटकर नहीं आया!···घर में बहन रोती है, माँ रोती है!···अब के साहब आया तो उसे मार डालेंगे!···भैया तू मत जाना; बाबा! तू मत जाना···; आदिवासियों की जीवन-कथा का यह दर्दीला स्वर उसके अन्तरतम को छू गया। यह सब तो बेकारी के कारण ही सम्भव हो पाता है कि बाहर से आकर ये भर्ती डिपो वाले बेचारे गाँव वालों को हमेशा के लिए उनके घरों से उखेड़कर ले जायँ।

उसने खिड़की से झाँककर देखा; मूसलधार वर्षा ने जल-ही-जल कर

दिया था। बरसो, बादलो, बरसो, उसने पुकारकर कहा, खूब बरसो, पिछली कसर निकाल दो; फिर कभी जल को न तरसे यह करंजिया की मिट्टी, यह काली मिट्टी। फिर कभी अकाल पैर न धरे इस धरती पर; फिर न आये भूख मौत इन बेचारे गोंडों के दरवाजों पर। बहुत हो लिया, बहुत हो लिया भूख मौत का नंगा नाच। करमा ही अच्छा है, करमा के ढोल और माँदर ही बजते रहें, पायलें भी झंकार में खोई रहें। फिर न उन पर छा जाय वह भूख मौत का नंगा नाच, वह अकाल का चेहरा, वह डरावना, भूत-प्रेत-सा चेहरा!

रूपी बार-बार वही रट लगाने लगती, "अब मैं घर कैसे जाऊँगी ?"

आनन्द उसकी आँखों में झाँककर कहता, "आराम से बैठकर वर्षा का मजा लो, रूपी !"

तीन दिन से निरन्तर वर्षा हो रही थी। वर्षा की खुशी में आज कला-भारती में एक महीने की छुट्टियाँ कर दी गई थीं। आज सवेरे दो घंटे के लिए वर्षा रुकी तो आनन्द ने चुन्नू मियाँ को घोड़े पर नीचे नदिया टोला भिजवाया और कहला भेजा कि यदि रूपी न आई तो मैं उससे रूठ जाऊँगा। रूपी तो इसी सन्देश की प्रतीक्षा में थी; वह झट घोड़े पर बैठ गई और इसे दुलकी चाल से चलाने लगी।

"तुम चलो बेटी !" चुन्नू मियाँ ने पीछे से पुकार कर कहा, "मैं आ जाऊँगा।"

शिवराम अहीर ने मज़ेदार चाय बनाई; आलू के कटलस तो मुँह से बोल रहे थे; पोदीने की चटनी को तो छोड़ने को जी न चाहता था।

"यों लगता है जैसे आज तीन महीने बाद पहली बार चाय पी रही हूँ।" रूपी ने आनन्द के विरह में अपनी मनोदशा से पर्दा-सा उठाते हुए कहा, "हमें क्या मालूम था कि हमारे मेहमान बाबू इतनी देर लगायेंगे; यहाँ तो नूर अली ने यह खबर मशहूर कर रखी थी कि आप हमेशा के लिए यहाँ से चले गये।"

आनन्द ने मुस्करा कर कहा, "और क्या मशहूर कर रखा था नूर-अली ने ?"

रूपी ने झिझकते हुए कहा "मैं कहती हूँ नूर अली बहुत बुरा आदमी है। उसने हमारे मेहमान बाबू पर बहुत कीचड़ उछाला; कहता था कि आप चन्दे के रुपयों में से पाँच-सात हज़ार रुपये मार ले गये और बेगम कासिमी की अम्मी जान की शक्ल देखते ही आपके छक्के छूट गये।"

आनन्द मुस्कराता रहा। उसने इतना ही कहा, "नूर अली पर मुझे गुस्सा नहीं आता, रूपी ! वह समझता है कि उसकी कम्पाउंडरी छूटने की जिम्मेदारी मुझ पर है, हालाँ कि यह सब डाक्टर वली मुहम्मद ने किया। और यह भी गलत है कि नया कम्पाउंडर ज़हीर डाक्टर साहब का भतीजा है। डाक्टर साहब और नया कम्पाउंडर करंजिया की सच्ची खिदमत कर रहे हैं, यह खबर मुझे यहाँ पहुँचते ही मिल गई; लालाराम की यही रिपोर्ट है, और मैं लालाराम पर अविश्वास करने का कोई कारण नहीं देखता।"

खिड़की के समीप आरामकुरसी पर रूपी यों बैठी थी जैसे उसे वर्षा पर क्रोध आ रहा हो; जाने को तो वह घोड़े पर चढ़कर जा सकती थी, छाता भी मौजूद था, पर वह चाहती थी कि आध घंटे के लिए ही वर्षा रुक जाय और वह नदिया टोला जा पहुँचे। फिर चाहे दस दिन न रुके वर्षा। आनन्द ने उसकी उद्विग्नता पर छींटे कसे, इधर-उधर की चुटकियों से उसे आड़े हाथों लिया। जुलाहे की बेटी का यह ख्याल कि वह अपनी ओर नज़र उठाकर देखने वाले को अपने जादू से उस साड़ी के ताने-बाने के एक धागे में बदल सकती है जिसे वह अपने करघे पर बुन रही है और उसकी यह डींग कि साड़ी बुने

जाने के बाद तो पता भी नहीं चल सकता कि वह कौन-सा धागा था—यह चुटकी बुरी न थी; रूपी हँसती रही।

"डरो मत, मेहमान बाबू!" रूपी ने हँसकर कहा, "यहाँ कोई जुलाहे की लड़की नहीं है।"

"यहाँ तो करंजिया के मंडल पटेल की बेटी है!" आनन्द ने व्यंग्य कसा।

"एक कहानी सुनोगे मेहमान, बाबू?"

"ज़रूर सुनेंगे।"

"एक बार एक मुरगी और एक बिच्छू खलियान से अनाज लेने गये," रूपी ने कहना शुरू किया, "मुरगी के पास अधिक अनाज था। गुस्से में आकर बिच्छू ने उसे काट डाला। मुरगी मर गई। वापस आकर बिच्छू ने मुरगी का शोरवा पकाया और धोखे से मुरगी के चूज़ों को खिला दिया। एक चूजे को अपनी माँ की मृत्यु का रहस्य मालूम हो गया। रात के समय बिच्छू चूज़ों को काटने के लिए पयाल में घुसा, पर चूजे तो पहले से खबरदार होकर रसोई में सो रहे थे। बड़े चूजे ने पयाल में आग लगा दी। बिच्छू जलकर मर गया। खैर यह कहानी तो इतनी-सी है। न जाने मैं क्या कहने जा रही थी? हाँ हाँ, याद आ गया। धनपाल फुलमत पर हाथ न डाल सका तो हमारी रंगली को उठा ले गया। मज़ा आ जाय यदि धनपाल का भी वही हाल हो जो उस कहानी में बिच्छू का हुआ था!"

"मुझे यह देखकर हर्ष हो रहा है," आनन्द ने गम्भीर होकर कहा, "कि धनपाल के विरुद्ध आप लोगों की भावना सचमुच बहुत उत्तेजित मालूम होती है, पर कोई आदमी बिलकुल बुरा तो नहीं होता; लालाराम को ही लो, पहले क्या था, अब क्या है। हम धनपाल को भी बदल देंगे, रूपी?"

"बिच्छू को मुरग़ी बनाने की क्षमता किस में है, मेहमान बाबू?" रूपी ने क़हक़हा लगाया।

वर्षा का सितार बज रहा था; रूपी की बात अनसुनी करते हुए आनन्द खिड़की में खड़ा होकर वर्षा का मज़ा लेने लगा।

रूपी भी उठकर उसके समीप खिड़की में खड़ी हो गई। उन्होंने देखा कि चुन्नू मियाँ वर्षा में भीगता आ रहा है।

"कहाँ रह गये थे, बड़े बाबा ?" आनन्द ने चुन्नू मियाँ को दरवाजे पर देखकर कहा।

"बड़े बाबा ने वर्षा का मज़ा लूट लिया !" रूपी ने चुटकी ली।

"बड़ी अच्छी खबर लाया हूँ।" चुन्नू मियाँ ने कीचड़ में लथ-पथ जूते उतारते हुए कहा, "पहले वायदा करो कि मुँह मीठा कराओगे।"

"तुम्हारा तो हमेशा मुँह मीठा है, बड़े बाबा ! क्या खबर लाये हो ?"

"लक्ष्मी आ गई !"

"कहाँ आ गई लक्ष्मी, बड़े बाबा ?" रूपी ने मचलकर पूछा।

चुन्नू मियाँ ने छज्जेदार दाढ़ी पकड़ कर कहा, "फुलमत के लड़की हुई है !"

४३

पिछड़ कर ही सही, वर्षा आई बहुत जोर से, कला-भारती में एक महीने की छुट्टियों के साथ बीस दिन की छुट्टियाँ और जोड़नी पड़ीं; खैर अब तो परसों से वर्षा बिल्कुल नहीं हुई थी और पाँच छुट्टियाँ तो बाकी थीं ! आज रविवार था।

"आज हाट-बाजार खूब लगा है," चुन्नू मियाँ ने हँसकर कहा," यों लगता है कि हमारे करंजिया के चेहरे पर फिर से पहली-सी रौनक लौट आई है ! आप भी जाकर हाट-बाजार देख आइए राजा बाबू !"

आनन्द ने पुस्तक से आँख उठाकर चुन्नू मियाँ की ओर देखा, उसकी दृष्टि फिर पुस्तक पर जम गई। गेटे के 'फॉउस्ट' का अध्ययन उसने पहले भी कालिज से आने के बाद कई बार किया था; मोहेंजोदड़ो से वह 'फॉउस्ट' की अपनी पुरानी प्रति लेता आया था जिस पर जगह-जगह लाल पेन्सल के निशान लगे हुए थे। बीच-बीच में कुछ निशान नीली पेन्सल से भी तो लगाये गये थे। वह तो इस बात पर आश्चर्य कर रहा था कि 'फॉउस्ट' की यह प्रति पहली बार मोहेंजोदड़ो क्यों छोड़ आया था। चलिए अब के उसने

पिछली गलती नहीं दुहराई। नीले निशानों की अपेक्षा लाल निशान ही अधिक महत्वपूर्ण थे; कहीं-कहीं उसे लगा कि जहाँ नीला निशान लगा हुआ है वहाँ तो लाल निशान लगाया जाना चाहिए था और जहाँ लाल निशान लगा दिया था वहाँ नीले निशान से ही काम चलाया जा सकता था। फिर उसे इन लाल और नीले निशानों पर बुरी तरह गुस्सा आने लगा, आखिर इनकी जरूरत ही क्या थी? ख्वाह-म-ख्वाह पुस्तक के पृष्ठ लाल-नीली रेखाओं से रंग दिये; ये रेखाएँ तो पुस्तक को भद्दा बना रही थीं। इस आदत में तो बहुत बचपन टपकता है कि पुस्तक को पढ़ते समय लाल-नीली पेन्सल का सहारा लिया जाय; यह तो इस बात का प्रतीक है कि इन्सान को अपनी स्मृति पर जरा-भी भरोसा नहीं। फिर इन्सान तो बदलने वाला प्राणी है। लिखने वाला तो जो समझ में आता है लिखकर चला जाता है; पुस्तक तो उसके बाद भी रहती है, इसे पढ़ने वाले अपने युग की परिस्थितियों के अनुरूप इसमें कुछ ढूँढने का यत्न करते हैं; इसे अपने युग के साँचे में ढाल कर इस में कोई हल ढूँढते हैं।

उसने खिड़की से झाँककर देखा, आकाश मेघाच्छन्न था। उसकी दृष्टि फिर पुस्तक पर झुक गई; वह फिर विचारधारा में खो गया। लेखक क्या कहना चाहता है, कहाँ तक वह उसे कह पाया है और कहाँ तक हम उसका उपयोग कर सकते हैं, यही तो देखना होता है। इसके लिए लाल-नीली पेन्सल की गुलामी क्यों की जाय? यह तो पुस्तक पढ़ते-पढ़ते हमारे मन पर योंही अंकित हो जानी चाहिए। पुस्तक के एक पृष्ठ पर उसकी दृष्टि जम गई जहाँ मैनेजर दर्शकों की भीड़ की ओर संकेत करते हुए कवि से कहता है :

"यह व्यक्ति इसलिए आया है कि उसका मन अकुला गया है, वह थोड़ा मनोरंजन चाहता है। वह उधर वाला प्राणी पूरी तरह पेट भरकर चला आ रहा है, मुँह से डकार ले रहा है। वह जो उधर खड़ा है, सीधा समाचारपत्र पढ़कर चला आ रहा है; उसके मस्तिष्क की अवस्था ऐसी नहीं कि उसके अन्तरतम में कला की सूक्ष्मता का प्रवेश हो सके। मनोरंजन के

चक्कर में हैं ये सब लोग। अब तुम स्वयं सोचो, कवि, कि तुम्हें किसके लिए रचना करनी है; काव्य के उच्च शिखर पर जाना तो अभी व्यर्थ है। तुम्हारा नाटक देखने के पश्चात ये लोग ताश के खेल में लीन हो जायँगे। हाँ तो इन्हें कोई ऐसी वस्तु दो जिससे उनकी धमनियों में रक्त वेग से बहने लगे और उनका सिर घूम जाय। यही एक वस्तु है जिससे ललचा कर ये लोग नाट्यशाला की ओर चले आते हैं।"

उसने उचककर बाहर की ओर देखा, जैसे उसे किसी की प्रतीक्षा हो; फिर उसकी दृष्टि 'फॉउस्ट' में कवि के उत्तर पर पड़ी : "इस जन-समूह की ओर मेरी दृष्टि मत आकर्षित करो! ऐसे जन-समूह को देखते ही हम कवियों की प्रतिभा सिर पर पैर रखकर भागना चाहती है। मेरे और इस जन-समूह के बीच परदा डाल दो, यह न हो कि इसका संसर्ग मुझे भी निम्न स्तर पर उतार दे। मुझे छोड़ दो, मैनेजर! अपने लिए दूसरा गुलाम ढूँढ लो! जो पवित्र प्रतिभा प्रकृति ने मुझे प्रदान की है, उसे मैं तुम्हारे ओछे व्यवसाय के लिए इतनी अपवित्रता से काम में नहीं ला सकता। मैं स्वर्ग के उस शान्तिमय वातावरण में जाने के लिए उत्सुक हूँ जहाँ कवि का स्वच्छ उल्लास पुष्प के समान विकसित हो रहा है। वर्तमान की प्रसन्नता के लिए जो रचना की जाती है वह तो हीन वस्तु होती है, खरा सोना तो भविष्य में आनेवाले लोग सँभालकर रखेंगे।"

महाकवि गेटे की इस कृति में आज उसे एक नई ही प्रेरणा प्राप्त हुई। खुली खिड़की, मेघाच्छन्न आकाश—जैसे यह वातावरण इसके अनुकूल हो। अगले ही क्षण उसकी दृष्टि गेटे के 'फॉउस्ट' के एक और पात्र मेरी एन्ड्रू के शब्दों पर पड़ी :" आगामी युगों की कपोल-कल्पना मेरे सम्मुख मत प्रस्तुत करो। यदि हम सभी प्राणी भविष्य के मनोरंजन के लिए ही कार्य करने लगेंगे तो वर्तमान का मनोरंजन कौन करेगा? कलाकार के लिए तो यही शुभ है कि वह अधिक-से-अधिक लोगों की भावनाओं को बढ़ावा दे। इसलिए उठो, मेरे कवि, मानव के जीवन में से कोई एक मुट्ठी वस्तु

लेकर लोगों के सम्मुख फैला दो। इतने से ही सब को आनन्द प्राप्त हो जायगा, क्योंकि जीवित तो हैं सभी लोग, पर जीवन के रहस्य से कोई विरला ही परिचित है। यह चिन्ता भी मत करो कि जो-कुछ तुम व्यक्त करते हो सब-का-सब एकदम सत्य है। सत्य की एक चिनगारी, भूलों का एक उमडता सागर, लोगों के लिए यह भी काफी है।"...

पुस्तक से दृष्टि हटाकर वह आदिवासियों के लिए किये जा रहे अपने कार्य पर विचार करने लगा; इस पर वर्तमान की छाप स्पष्ट थी। कला-भारती इन लोगों के सम्मुख सत्य की उसी चिनगारी का एक रूप है जिसका संकेत महाकवि गेटे ने 'फॉउस्ट' में किया है। मेरा यह दावा कहाँ है कि मैं सत्य का अवतार बनकर उतरा हूँ। मैं तो लोगों के सामने लोगों का प्रतिनिधि बनकर कार्य कर रहा हूँ, ये लोग अब सोये नहीं रह सकते। मालगुजार के बेगारी बनकर तो ये लोग रह ही नहीं सकते। जो खेती करता है, जमीन उसी की है—यह विचार इन्हें छूकर रहेगा; मालगुजार उस समय एक क्षण के लिए भी नहीं रह सकेगा, अकाल ने इन लोगों की आँखे खोल दी हैं, इस बहाने पक्की सड़क भी बन गई और करंजिया का जबलपुर से सीधा सम्पर्क हो गया। करंजिया से डिंडौरी तक बस चलने लगी हैं; डिंडौरी से जबलपुर तक बस पहले ही चलती है। पक्की सड़क पर आजादी का आन्दोलन भी चला आयगा बस पर चढ़कर...

खिड़की से बाहर का दृश्य उसके सौन्दर्यबोध में नई हिलोर ला रहा था। उसने सोचा कि आजादी का आन्दोलन तो अन्दर से जन्म लेता है। हाँ तो आजादी का आन्दोलन चलेगा तो धनपाल सूखे पत्ते की तरह झड़ जायगा। उसे उस गीत का ध्यान आया जो उस दिन पूनम करमा में गाया जा रहा था : 'बादल गरजता है, मालगुजार गरजता है, फिरंगी के राज में पुलिस का सिपाही गरजता है, गांधी का राज होने वाला है ?' यह तो इन लोगों का अपना अनुभव है। अकाल की यातना से निकलकर तो ये लोग पहले से अधिक वेग से अग्रसर होंगे भविष्य की ओर। इनका भविष्य उज्ज्वल

है, क्योंकि इनका वर्तमान सत्य की एक छोटी सी चिनगारी से दीप्तमान हो उठा है···

सहसा उसे ध्यान आया कि अब तो गेटे के 'फॉउस्ट' से छुट्टी ली जाय और चलकर हाट-बाजार का दृश्य देखा जाय; शायद वहाँ लालाराम और मंडल से भी भेंट हो जाय।

उसने बाहर निकलकर देखा; सोम चला आ रहा था।

"कहाँ से आ रहे हो, सोम?"

"पंचायत से आ रहा हूँ, आनन्द! पंचायत में आज फैसला हो गया कि कोई मालगुजार की बेगार में नहीं जायगा।"

४४

टीकरा टोला में कला-भारती के नीचे मेला बड़े ठाट से लगा। यहाँ पहले कभी मेला न लगा था। इसलिए जब पंचायत में यह फैसला किया गया कि भीमकुण्डी में श्रीपाल की समाधि पर मेला नहीं लगेगा और मेले की तिथि से दस दिन पहले ही गाँव-गाँव में यह मुनादी कराई गई कि मेला करंजिया में लगेगा तो यह आशा न थी कि करंजिया वालों का निमन्त्रण सब को स्वीकार होगा। अब तो वह रंग जमा कि करंजिया वालों की खुशी का कोई ठिकाना न रहा। कहाँ तो मंडल को पंचायत में यह कहना पड़ा था कि दूसरे गाँवों वाले हमारे मेले में न भी आयें तो भी जहाँ करंजिया के बारह के बारह टोले मिलकर खड़े हो जायँगे वहीं मेला लग जायगा, इसलिए हमें डरने की जरूरत नहीं है, और कहाँ अब यह खबर आई कि भीमकुण्डी बहुत कम लोग पहुँचे हैं, लोगों का रुख करंजिया की ओर है।

करंजिया में मेला लगने की चर्चा इस बात को लेकर शुरू हुई थी कि किसी तरह धनपाल को नीचा दिखाया जाय। बेगार के विरुद्ध तो पहले

ही पंचायत का फैसला हो चुका था, अब पंचायत ने यह कदम उठाया कि भीमकुण्डी का मेला गोंडों की गुलामी को बनाये रखने के लिए शुरू किया गया था और भीमकुण्डी में श्रीपाल की समाधि पर माथा टेकना या फूल चढ़ाना ऐसे है जैसे कोई अपनी बेड़ियों और हथकड़ियों की पूजा करता रहे। करंजिया वालों की खुशी यही थी कि उनकी लाज रह गई, नहीं तो यदि मुनादी कराने के बाद भी लोग भीमकुण्डी के मेले को ही सामने रखते तो करंजिया वालों की नाक कट जाती। इसी भय से करंजिया में कुछ लोगों ने पंचायत के फैसले का विरोध भी किया था, पर अब तो वे भी खुश थे।

आज सवेरे ही आकर मंडल कह गया था, "मेला जरूर देखने आइए, बड़े राजा!"

"मैं जरूर आऊँगा, काका!" आनन्द ने छूटते ही कहा था। और अब वह सोच रहा था कि देर से पहुँचना तो न पहुँचने के बराबर है।

कला-भारती के पश्चिमी द्वार में खड़े होकर आनन्द ने मेले के ठाट पर दृष्टि डाली; चुन्नू मियाँ और शिवराम अहीर कभी के मेला देखने जा चुके थे। कई बार उसके जी में आया कि वह भी नीचे जाकर मेले की भीड़ में सम्मिलित हो जाय, पर यहाँ से यह दृश्य अधिक सुन्दर लग रहा है, यह सोचकर वह वहीं खड़ा रहा। उसके हाथ में एक पत्रिका थी जिसमें उर्दू कवि फ़ैज की एक कविता प्रकाशित हुई थी; यह कविता उसके हृदय के तार हिला गई थी और उसने इसे इतनी बार पढ़ा कि यह उसके स्मृति-पटल पर अंकित हो गई। पत्रिका का वह पृष्ठ निकाले बिना ही वह उस कविता के बोल गुनगुनाने लगा :

'बामोदर खामुशी के बोझ से चूर
आस्मानों से जूए दर्द रवाँ
चाँद का दुख-भरा अफ़सानाये नूर
शाहराहों की खाक में गुलताँ
ख्वाबगाहों में नीम तारीकी

मुज़महिल लिये रबाब हस्ती की
हलके-हलके सुरों में नूहाकनाँ'

उसे ख्याल आया कि नीचे इतनी रौनक है और यहां खड़ा मैं उदास रात के गान में उलझ रहा हूँ; जैसे दुर्भिक्ष की वेदना से अभी तक उसका हृदय पूरी तरह मुक्त न हो पाया हो। वह कहना चाहता था कि कविता का सामाजिक महत्त्व ही सर्वश्रेष्ठ है; कवि अपने जीवन के चतुर्दिक दृष्टि डाल कर जो देखता है वही लिखता है; जब उसकी रचना पाठक तक पहुँचती है तो वह भी इसके मर्म तक पहुँचने में उसी दशा में सफल होता है जब वह इसे अपने भीतर-बाहर के छवि-अंकन में समोकर देख सके।

पश्चिमी द्वार से हटकर वह उस पत्रिका को मेज़ पर रख आया, और यह सोचता हुआ मेले में जाने के लिए नये वस्त्र पहने लगा की अब तो गोंड जीवन पर दुर्भिक्ष की मृत्यु की सी शान्ति नज़र नहीं आती, वेदना की सरिता को बहने के लिए अब इधर कोई पथ नहीं मिल सकता—कमंडल नदी ही बहती रहे—रास्तों की धूल में उदास चाँदनी को लोगों की आवश्यकता नहीं, आदिवासियों की झोंपड़ियों में अंधेरा जीवन का उदास वाद्य-यन्त्र लिए हुए हलके स्वरों में रुदन करता रहे, इसका तो अब प्रश्न ही नहीं उठता।

शीघ्र से शीघ्र नीचे जाकर वह भीड़ में मिल जाना चाहता था। वह भीड़ में अलग तो न था; जन समूह का एक रंग वह भी था, पूरे गीत का एक स्वर। उसी में उसे वास्तविक आनन्द का अनुभव हो सकता था; जनता से कटकर तो मानव का वही हाल होता है जो कटी हुई पतंग का होता है।

पश्चिमी द्वार में आकर उसने फिर एक बार विहंगम दृष्टि से मेले का

१. छत और द्वार खामोशी के बोझ से चूर हैं; आकाश से वेदना की सरिता बह रही है। चाँद की दुख-भरी प्रकाश-गाथा राजमार्गों की धूल में लोट रही है। शयनागारों में हलका अंधेरा जीवन का उदास रबाब लिए हुए हलके-हलके स्वरों में रो रहा है।

दृश्य देखा। अब यहाँ खड़े रहने को मन न हुआ। वह शीघ्र से शीघ्र आनन्द-प्रवाह में वह जाना चाहता था। वह अपनी स्थिति जन-जीवन के स्तर-सप्तक में एक स्वर से अधिक नहीं समझता था। इसी सप्तक में जीवन का समारम्भ है, इसी में जीवन की महाउपलब्धि !

जाड़े का आरम्भ हो चुका था। आनन्द ने गरम कोट पहन लिया और टीकरे से नीचे उतरने लगा; वह जानता था की प्रत्येक मेला पुरानी परम्परा पर नये रंग की कूची फेरता है। टीकरा टोला का मेला तो बिल्कुल नया था।

नीचे जाकर भीड़ में प्रवेश करते समय आनन्द को लगा कि सब की आँखें उसी की ओर उठ गईं, जैसे प्रत्येक आँख उससे पूछ रही हो —तुम इतनी देर से क्यों आये ?

मेले का प्रत्येक रंग आवाज़ दे रहा था—पहले मुझे देखो ! यौवन में तुल रहा था सौन्दर्य, उल्लास में झलक उठा था जीवन का जयघोष ! बचपन की सखियाँ बाँह-में-बाँह डाले घूम रही थीं, जैसे कह रही हों—मेले में आकर तो मुस्कान को डिबिया में बन्द रखने की चीज़ नहीं समझा जा सकता। ऊपर था आकाश, नीचे रंगों की अठखेलियाँ।

गुब्बारे बेचने वाले खुश होकर गुब्बारे बेच रहे थे। एक ओर एक मदारी भालू को नचा रहा था। बालियाँ और झुमके, मूँगों की मालाएँ और काँच की चूड़ियाँ—शृंगार का सब सामान जैसे यहीं बिकने के लिए चला आया हो। मिठाई वाले मिठाई की प्रशंसा करते नहीं थकते थे। समय-समय पर देखे हुए मेले आनन्द की कल्पना में गड्ड-मड्ड होने लगे।

भीड़ को चीरता हुआ आनन्द आगे बढ़ता गया। यह मेला किसी नव-निर्माण का प्रतीक था; उल्लास की धरती में आशा के बीज बोये जा रहे थे; जैसे ये लोग अब कभी अकाल नहीं पड़ने देंगे। मेला भी क्या चीज़ है, उसने सोचा, मेला तो सुख की साँस है, इसका मूल स्वर है स्वतन्त्रता; इसकी गूँज बराबर बनी रहती है, जब तक घूमकर मेले का दिन दोबारा नहीं आ जाता। वह आगे बढ़ता गया, मानवता पर उसकी आस्था गहरी

होती गई। समस्त दुर्भाग्य को मिटाने के लिए आता है मेला, धरती का प्रेम चमकाने के लिए आता है मेला, आत्मा की कभी न बुझने वाली आग लेकर आता है मेला। उसे करंजिया की काली मिट्टी के भविष्य का ध्यान आया—इस मिट्टी से अब भूखे गुलाम नहीं उगेंगे! मालगुज़ारी व्यवस्था से छुट्टी लेकर रहेगी आदिवासी जनता। कहीं पास से गुजरती दुलहनों की पायलों की झंकार किसी की बाँसुरी के स्वर में खो जाती, कहीं दुकानदारों की आवाज़ें ग्राहकों के शोर पर तैरने लगतीं।

कोहरे की चादर से सिर निकालकर सूर्य भी जैसे मेले का यह दृश्य देखने के लिए उत्सुक हो उठा था। वह और आगे बढ़ा और भीड़ में खो गया। सामने लकड़ी का हिंडोला घूम रहा था। लकड़ी के घोड़े न हिनहिनाते थे, न दुलत्ती झाड़ते थे।

आनन्द लपककर वहीं चला गया जहाँ सोम और फुलमत खड़े हिंडोले का दृश्य देख रहे थे। फुलमत की गोद में दो महीने की बच्ची थी; अब वह माँ थी, उसके चेहरे पर मातृत्व का उल्लास था।

"हम तुम्हारी बाट जोहते रहे!" सोम ने आनन्द का स्वागत किया।

"मेला कैसा लगा?" फुलमत ने पूछा।

"मुझे तो आशा न थी कि पहली ही बार टीकरा टोला के मेले में इतनी रौकक देखने को मिलेगी।" आनन्द ने हिंडोले की ओर देखते हुए कहा।

हिंडोला घूम रहा था; उसके साथ आनन्द की कल्पना भी घूम रही थी। उसे सब कुछ नया-नया-सा लगा।

"कितनी प्यारी है रानी बिटिया!" आनन्द ने हिंडोले से नज़र हटाकर पुचकारा, "रानी बिटिया के जीवन में यह पहला मेला है।"

"करंजिया के जीवन में भी यह पहला मेला है।" फुलमत ने हँसकर कहा, "पहले तो यहाँ वाले भी भीमकुण्डी के मेले में ही जाते रहे।"

"आज तो भीमकुण्डी में कोई नहीं गया होगा।" आनन्द ने गर्व से

कहा, "धनपाल को मुँह की खानी पड़ी। शायद इस से उसका दिमाग़ ठीक हो जाय।"

"अब यह तो करंजियावालों की ग़लती थी कि भीमकुण्डी में मालगुज़ार की समाधि के मेले में जाते रहे!" सोम ने कहा, "मालगुज़ार की समाधि पर फूल चढ़ाना तो सचमुच ऐसे ही था जैसे कोई आदमी अपनी ग़ुलामी पर झुँझलाने की बजाय उलटा अपने मालिक की पूजा शुरू कर दे!"

सोम खुश था; फुलमत भी फूली न समाती थी। आनन्द को कई बार ख्याल आया कि काश उसे भी जीवन-साथी मिल गया होता।

सहसा हिंडोला घूमते-घूमते रुक गया। झूलन के पास वाले घोड़े से रूपी नीचे उतर आई; झूलन वहीं बैठा रहा। जल्दी-जल्दी कुछ लोग उतर आये, कुछ चढ़ गये; हिंडोला फिर घूमने लगा।

रूपी की पीली बुन्दकियों वाली मलगजी साड़ी एक तरफ को ढलक गई थी; जूड़े का लाल फूल जैसे गर्व से ऊँचा उठ गया हो। वह आकर आनन्द की बगल में खड़ी हो गई।

"अब के हम दोनों एक साथ हिंडोले पर घूमेंगे, मेहमान बाबू!" रूपी ने चुटकी ली।

आनन्द कुछ न बोला। उसकी दृष्टि रूपी के जूड़े पर लगे लाल फूल की ओर उठ गई। उसकी कल्पना में यूनानी देवकथा में वर्णित उस पक्षी का चित्र घूम गया जिसके बारे में कहा गया था कि वह जलकर मर जाता है तो उसके भस्मावशेष से एक नया पक्षी जन्म लेता है; उसे लगा जैसे अकाल के पश्चात् करंजिया ने नया जन्म लिया है।

"तो क्या हिंडोले में मेरे साथ बैठकर घूमने का इरादा नहीं है?" रूपी ने आनन्द को अन्यमनस्क-सा पाकर पूछा।

४५

श्रीपाल की समाधि पर मेला अवश्य लगा, पर उसकी रौनक नाम-मात्र को रही। भीमकुण्डी वालों ने ही भाग लिया। आस-पास के गाँवों के लोग सीधे करंजिया पहुँचे, बल्कि भीमकुण्डी के कुछ लोग भी करंजिया जाने से न टले और धनपाल की आँखों का काँटा बन गये।

मुन्शी दीनानाथ की सलाह तो यही थी कि भीमकुण्डी के उन लोगों की खूब पिटाई की जाय, जो धनपाल का अपमान करने के लिए करंजिया के मेले में सम्मिलित हुए थे, पर धनपाल ने यही उचित समझा कि लोगों को एक बार प्रेम से समझा दिया जाय। आस-पास के गाँव वालों को करंजिया के प्रभाव से बचाने का भी यही उपाय है, धनपाल यह खूब समझता था।

प्रेम का पहला प्रयोग करंजिया में ही किया जाय, यह तय पाया। भीमकुण्डी वालों को एक सहभोज देने का कार्यक्रम बनाया गया। उस दिन धनपाल ने सवेरे ही नर्मदा में स्नान किया, श्रीपाल की समाधि पर पूजा की और यह शपथ ली कि वह अपनी प्रजा को पथभ्रष्ट होने से रोक लेगा।

कुछ लोगों ने सहभोज में सम्मिलित होने से भी इन्कार किया।

धनपाल का क्रोध भड़काने के लिए यह मसाला आज से पहले काफ़ी होता, पर इस समय तो वह प्रेम की नीति से काम लेना तय कर चुका था।

सहभोज के पश्चात धनपाल ने भीमकुण्डी वालों के सम्मुख भाषण देते हुए कहा :

"भाईयो और बहनो, भीमकुण्डी के इतिहास में यह पहला अवसर है कि लोग अपने पुराने हितचिन्तक ठाकुर श्रीपालसिंह की समाधि का रास्ता छोड़कर करंजिया के टीकरा टोला में गये। वहाँ उन्हें क्या मिला? भीमकुण्डी के मेले में तो पुरानी परम्परा के अनुसार ठाकुर साहब का प्रसाद दिया जाता है। ठाकुर साहब हमारे पुरखा थे, पर वे आप लोगों के भी तो हितचिन्तक थे। मुझे भी आप लोगों का कुछ कम ध्यान नहीं है। भीमकुण्डी का रास्ता ही ठीक है, जिस पर आप लोगों के पुरखा चलते आये हैं, भीमकुण्डी के कुछ लोग आज के सहभोज में बुलाये जाने पर भी नहीं आये, इसका मुझे दुःख है।

"करंजियावालों ने बेगार न देने की आवाज़ उठाई है, पर बेगार मैं अपने लिए तो नहीं लेता। बाहर से बड़े लोग आते हैं तो वे मुझसे भी बेगार लेते हैं, पर यह बेगार नहीं सेवा है। सेवा तो बेगार नहीं है। जिन लोगों से बेगार ली जाय उनको थोड़ा-बहुत अवश्य दिया जाय, इसका मैं ध्यान रखता हूँ, वैसे बेगार को मिटाना उतना आसान नहीं जितना करंजिया वाले समझते हैं। इसके लिए तो सरकार ने पट्टा दिया, पीतल का पट्टा जिस पर सरकार का हुकुम खुदा हुआ है।

करंजिया वाले अपना किया भुगतेंगे। कानून तो किसी को माफ नहीं करता; कानून के लिए तो छोटे-बड़े बराबर हैं। कानून कभी नरमी नहीं बरत सकता। अब यह आप लोगों का काम है कि लोगों को समझायें। कानून का रास्ता ही सचाई का रास्ता है; उसी पर चलने में सब का भला है।"

लोग हतप्रभ-से बैठे धनपाल की बातें सुनते रहे। फिर धनपाल ने उठकर

कहा, "भगवान् करे आप लोग सचाई का रास्ता न छोड़ें और ख्वाह-म-ख्वाह कानून की जद में न आयें। कानून तो आप के लिए भी वैसे ही है जैसे मेरे लिए है। कानून से डरिये, कानून की मार से डरिये। कानून किसी पर जुल्म नहीं करता, लेकिन यह देखना तो कानून का कर्तव्य है कि दुनियाँ ठीक रास्ते पर चल रही है या नहीं। नरमी करना कानून को एक आँख नहीं भाता, क्योंकि कानून तो न्याय चाहता है। जो अधिकार जिसके पास है उसकी रक्षा चाहता है। हर कोई कानून को अपने हाथ में लेने लगे तो दुनियाँ का कारखाना एक ही दिन में बन्द हो जाय!"

लोगों से विदा लेकर धनपाल अपने ड्राइँग-रूम में पूर्व की ओर खुलने वाली खिड़की के पास आ बैठा और उसने हाथ बढ़ाकर मेज से नीली जिल्द वाली डायरी उठा ली। इधर कई दिन से उसने डायरी में न किसी कवि की किसी कविता का उद्धरण लिखा था न किसी साहित्यकार का कोई विचार। 'जय भीमकुण्डी' में भी दो-तीन नये अध्याय जोड़ने का काम बीच में पड़ा था।

वह डायरी के पृष्ठ पलटने लगा। सहसा उसकी दृष्टि अन्तिम पृष्ठों पर पड़ी, जहाँ आनन्द ने एक लेख ही लिख डाला था। उसे बहुत क्रोध आया। आनन्द को वहाँ कुछ लिखने की आज्ञा किसने दी? अब उसे पता चला कि आनन्द के विचार क्या हैं; फॉसिज़्म के विरुद्ध उसने बहुत कीचड़ उछाला था।

धनपाल की नई पत्नी रंगली ने ड्राइंग-रूम में प्रवेश किया; धनपाल ने डायरी बन्द कर दी।

"क्या पढ़ रहे थे?" रंगली ने पास आकर पूछा।

"तुम्हारे आनन्द जी को ही पढ़ रहा था!" धनपाल ने चुटकी ली, "विश्वास न हो तो डायरी में देख लो; तुम भी तो आनन्द जी की कला-भारती में पढ़ती रही हो।"

धनपाल ने डायरी में से वह पृष्ठ निकालकर कहा, "लो पढ़ो, रंगली!"

रंगली ने डायरी में आनन्द की लिखी हुई वे पंक्तियाँ पढ़ीं और कहा,

"यह तो आनन्द जी की ही सिखाई है, मेरे लिए इसमें कोई नई बात नहीं है। आनन्द जी कला-भारती में हमेशा ऐसी बातें सुनाया करते थे।"

"तो तुम इन्हें ठीक समझती हो, रंगली ?"

"मुझे तो इनमें कोई बुराई नज़र नहीं आती !" रंगली ने डायरी को मेज़ पर रखते हुए कहा।

धनपाल ने इसका कोई उत्तर न दिया। रंगली उसे अनमना-सा देख-कर ऊपर चली गई।

धनपाल को आनन्द पर बहुत क्रोध आ रहा था। गोंडों के शान्तिमय जीवन में यह आनन्द का बच्चा विरोध की आग भड़का रहा है; मेरा नाम भी धनपाल नहीं, यदि मैं उसे मज़ा न चखा दूँ। मैंने तो अपना हाथ अभी दिखाया ही नहीं। मैं तो उसे मित्र समझता रहा। अब मैं उसे मित्र समझने की भूल नहीं कर सकता। मैं उसे अपनी आस्तीन का साँप नहीं बनने दूँगा। इससे पूर्व कि वह मुझे डस ले, मैं उसे ज़मीन पर पटक दूँगा, उसका सिर कुचल दूँगा; या मैं उसे यहाँ से भगा दूँगा। उसकी कला-भारती को भी करंजिया से उखाड़ फेंकना होगा; उसे इस बात की खुली छुट्टी नहीं दी जा सकती कि वह लोगों को कानून के विरुद्ध भड़काये। आखिर कानून भी कानून है; कानून को तो धरती और आकाश का वरदान प्राप्त है; कानून के बिना तो दुनियाँ में पत्ता भी नहीं हिल सकता। कानून का हाथ देखा नहीं आनन्द ने, नहीं तो वह कानून के मुँह आने की बात न करता। चला है फॉसिज़्म को बुरा-भला कहने; उसे मालूम होना चाहिए कि फॉसिज़्म भी कानून को कायम रखने पर ही ज़ोर देता है। कानून को कायम रखने के लिए बहुत नरमी तो नहीं बरती जा सकती। मैंने हिटलर बनकर आनन्द को नानी याद न करा दी तो मैं अपना नाम बदल लूँगा।

४६

अलाव जल रहा था। शम्भू किसी काम से चला गया; भूलन अकेला बैठा रहा; बराबर किसी सोच में डूबा हुआ। फिर वह मचान पर जा बैठा। कनस्तर पीट-पीटकर जंगली पशुओं को खेत से दूर रखने के लिए 'हो हो' करने लगा। 'हो हो' की प्रतिध्वनि जैसे उसकी मानसिक यातना से टकराने लगी, क्योंकि वह अपने जीवन से असन्तुष्ट था।

जब से आनन्द करंजिया में आया है, उसने मुझे कुछ कम नहीं सताया, उसने सोचा, रूपी पर तो उसने कोई जादू कर दिया है! न रूपी जबलपुर गई होती न उसमें इतना घमंड आया होता; न उसने दसवीं पास की होती, न आनन्द की बातें उसकी समझ में आई होतीं।

पहले जब वह कबूतर मार कर लाया करता था तो रूपी उसे देखते ही झपट कर उसके हाथ से कबूतर ले लेती और बड़े चाव से शोरबा बनाती और वे दोनों साथ मिलकर खाते, पर अब तो रूपी का दिमाग ही चढ़ता जा रहा है। उसे वह घटना याद आ गई जब वह कबूतर मारकर लाया था और लाख कहने पर भी रूपी शोरबा बनाने के लिए तैयार न

हुई थी; जब उसने खुद ही शोरबा बनाया तो रूपी से इतना भी तो न हुआ कि वह अपने झूलन का मन रखने के लिए थोड़ा-सा मुँह में डाल ले। शोरबा खाकर वह भी तो खाली हंडिया रूपी के सिर पर रखकर भाग निकला था; मज़ा आ गया था !

कनस्तर पीटते हुए 'हो हो' की आवाज़ गूँज उठती; रात्रि के समय मचान पर बैठकर खेत की रखवाली करते उसे कितने वर्ष हो गये; लाम-सेना का जीवन भी क्या जीवन है ! जब घर वाले आराम करते हैं, लाम-सेना को जाड़े की लम्बी रात मचान पर बैठकर काटनी पड़ती है।

रात्रि की निस्तब्धता घनी होती गई। जब वह ख़ामोश हो जाता तो जंगली पशुओं की आवाज़ दूर से तैरती हुई आती। सहसा उसे याद आया कि एक दिन जब रूपी अपनी माँ के साथ कला-भारती देखने जा रही थी, वह उन्हें रास्ते में मिल गया था और न जाने क्या सोचकर उसने पूछ लिया था—काकी, मैं भी चलूँ, और रूपी ने टका-सा जवाब दिया था कि हम अभी लौटकर आ रहे हैं। रूपी यह भूल गई थी कि वह अपने झूलन का अपमान कर रही है। और कौन ऐसी लड़की होगी, जो अपने लाम-सेना का अपमान कर सके ? उसे तो सचमुच बहुत घमंड हो गया है, अब मैं क्या उसकी पढ़ाई को लेकर चाटूँ ?...

कनस्तर पीटते-पीटते झूलन को उस दिन की याद आई जब रूपी एक दिन भोर से भी पहले उसके साथ कला-भारती गई थी, अभी तारे चमक रहे थे; कला-भारती में आनन्द को देखते ही रूपी मुझे भूल गई थी; पहले तो मैं खड़ा सोचता रहा था, फिर मैं शिवराम अहीर के पास जा बैठा था। मैं सोचता था कि रूपी मुझे बुलायेगी, पर रूपी तो आनन्द और सोम के साथ मटक-मटक कर, हँस-हँस कर बातें करती रही थी। उसने उन्हीं के साथ चाय भी पी ली थी; मुझे उसने कब इन्सान समझा था : उसे तो घर जाने की याद भी न रही थी। मैंने ही उठकर कहा था—रूपी, अब चलो, माँ नाराज़ होगी !

रात्रि की निस्तब्धता में कनस्तर पीटने की आवाज़ 'हो हो' की आवाज़ से गले मिलती रही; जंगली पशुओं की आवाज़ें वातावरण में भय का संचार करती रहीं। झूलन का क्रोध अशान्ति और आकांक्षा की लहरों पर डावाँडोल होता रहा। बीच-बीच में उसे रूपी की अच्छी बातें भी याद आ रही थीं; रूपी उसे पसन्द थी, उसमें सौ दोष सही, उसमें सौ घमंड सही, वह उसे छोड़ने के लिए तैयार न था।

शम्भू की और बात थी; उसे तो पिछले दिनों रंगली के बाप ने लाम-सेना होने के रुपये देकर छुट्टी दे दी थी, और रंगली भीमकुण्डी में माल-गुज़ार की रानी बन गई थी; अब यह असम्भव था कि रंगली उसे मिल सके। पर मेरी तो दूसरी बात है; अभी मेरी रूपी पर किसी ने अधिकार नहीं किया। रूपी मेरी है, वह मेरी ही रहेगी। उसे कोई मुझसे नहीं छीन सकता। नौवीं पास हो चाहे दसवीं पास, इससे तो कोई फर्क नहीं पड़ता। अब मैं तो बिल्कुल पढ़-लिख नहीं सकता; वह चाहेगी तो मुझे भी मेरा नाम लिखना सिखा देगी। नाम लिखना नहीं सिखायेगी तो न सही, मैं तो अँगूठा लगाकर ही काम चला सकता हूँ।

आनन्द ने करंजिया की जो सेवा की थी, उसके लिए वह आनन्द को भी अच्छा आदमी समझता था; अकाल के दिनों में तो आनन्द ने करंजिया वालों को ही नहीं, आस-पास के गाँव वालों को भी मौत के मुँह से बचाया था; पर इस खूबी के लिए वह अब आनन्द को यह छुट्टी तो न दे सकता था कि वह उस से उसकी रूपी छीन ले। आनन्द यह कोशिश करेगा तो उसे इसकी सजा मिलेगी।

जाड़े की रात लम्बी होती गई। झूलन की पलकों पर नींद का खुमार छा गया। मचान में सो सकना तो सम्भव न था। बार-बार 'हो-हो' करते हुए उसके सम्मुख रात्रि का अन्धकार घना होने लगता; कनस्तर की आवाज जैसे अन्धकार से होड़ लेने लगती। सहसा उसे खयाल आया कि अभी उस दिन करंजिया के मेले में रूपी आनन्द को देखते ही लकड़ी के हिंडोले से

उतर कर आनन्द के पास जाकर खड़ी हो गई थी; यदि हिंडोला दोबारा न चला दिया गया होता तो उसके तन-बदन को आग लग जाती और शायद वह वहीं जलकर खाक हो जाता; खैर आग तो बाद में भी कुछ कम नहीं लगी थी, क्योंकि आनन्द के साथ हिंडोले में बैठकर तो रूपी जैसे मुझे भूल ही गई थी। उस समय उसके जी में तो आया था कि हिंडोला रुकवाकर रूपी को नीचे उतरने को कहे, पर वह दाँत पीसकर चुप रह गया था। मैं अब इसे सहन नहीं कर सकता। आखिर मैं भी इन्सान हूँ। मैं हूँ लामसेना! लामसेना भी इन्सान होता है। लामसेना भी दिल रखता है, उसकी रूपी तो उसी की है।

४७

आनन्द ने दूर से हाट-बाजार का शोर सुना तो उसे लगा जैसे मधुमक्खियाँ भिनभिना रही हैं। सड़क के दोनों ओर वृक्षों की पंक्तियाँ बहुत भली प्रतीत हो रही थीं। आनन्द ने पीछे मुड़कर चुन्नू मियाँ की ओर देखा, जो गोद में सोम की बच्ची को उठाये चला आ रहा था; चुन्नू मियाँ के दाईं ओर थी फुलमत और फुलमत के दाईं ओर था सोम।

"लपक कर आओ, बड़े बाबा!" आनन्द ने पीछे मुड़कर पुकारा।

"आ तो रहे हैं, राजा बाबू!" चुन्नू मियाँ ने जल्दी-जल्दी पग बढ़ाते हुए कहा, "देखो तो सही हमारी रानी बिटिया कितनी खुश नजर आ रही है।"

"आओ, रानी बिटिया," आनन्द ने हाथ बढ़ाते हुए कहा, "हमारी गोद में आओ!"

रानी बिटिया रबड़ की गुड़िया प्रतीत हो रही थी—किलकारियाँ मारती हुई गुड़िया। उसका आनन्द केवल आज का है, केवल इसी क्षण का, यह कहना तो सहज न था; उसकी आँखों में कितनी चमक थी, यह चमक तो

जीवन की बहुत पहले से चली आ रही आनन्द-धारा का जयघोष कर रही थी। वह किलकारियों में खो गई।

"यह रानी है तो रानी की माँ तो महारानी हुई!" आनन्द ने चुटकी ली।

फुलमत मुस्करा कर रह गई।

सोम के मुख पर उल्लास की रेखाएँ और भी गहरी हो गईं।

आनन्द किलकारियाँ मारती बच्ची को उठाये चला जा रहा था। हाट-बाजार का शोर समीप आता गया, फिर लोगों के चेहरे दृश्य-पट पर यों उभरे जैसे लोग आनन्द-धारा में डुबकी लगाकर ऊपर आ गये हों।

हाट-बाजार में बड़ी रौनक थी, यों लगता था कि धरती माता ने अपनी उपज को टोकरों में भर-भर कर यहाँ भेज दिया है। आस-पास के गाँवों से अपनी-अपनी वस्तु लेकर स्त्रियाँ ही अधिक आई थीं। पूरा मोल, पूरा तोल। हिसाब तो आवश्यक था। यह सब तो पेट का धन्धा था, पेट की आग तो बुझानी हुई। फोकट में तो कुछ नहीं दिया लिया जा सकता। तकड़ी से कोई चीज तोली जा रही है, ग्राहक की ओर एक मुस्कान भी तो उछाली जा रही है; इस मुस्कान का किसी को कोई दाम नहीं देना पड़ता; मुस्कान तो धरती का स्पर्श लिये रहती है।

रविवार का दिन छः दिन बाट जोहने के बाद आता था। करंजिया को हाट-बाजार पर गर्व था। इस दिन बाजार टोला के दुकानदार भी खुश नजर आते, क्योंकि बाहर से अपनी-अपनी वस्तु बेचने के लिए आने वाले लोग उनसे अपनी आवश्यकता की वस्तुएं अवश्य खरीदते।

"लोगों के चेहरों पर फिर पहली-सी खुशी आ गई है, राजा बाबू!" चुन्नू मियाँ ने भीड़ की तरफ देखते हुए कहा।

"अभी तो और आयेगी बड़े बाबा, तुम देखते जाओ।"

फुलमत के सम्मुख अपने पिता का चित्र घूम गया। उसके हृदय पर चोट-सी लगी। उसने जैसे अपनी वेदना को व्यक्त करते हुए कहा, "हर

कोई तो खुश है, लेकिन मैं कैसे खुश नजर आ सकती हूँ, आनन्द बाबू ? आप से तो इतना भी न हो सका कि मेरे काका को छुड़ा लाते।"

आनन्द के चेहरे पर उभरती हुई मुस्कान दब गई; वह कुछ उत्तर न दे सका।

किसी के चेहरे पर कोई दर्द न था, किसी के हृदय में कोई काँटा न था। फुलमत उदास थी। सोम ने कई बार उसे अपने पिता की याद में आँसू बहाते देखा था। कई बार उसने फुलमत को ढाढ़स बँधाते हुए कहा था, "तुम्हारे पिताजी तो अब जल्दी ही आ जायँगे, शायद कैद पूरी होने से पहले ही आ जायँ। पर मेरे पिताजी तो अब पूरी कैद काट कर भी नहीं आ सकते। मैं तो अनाथ हूँ। तुमने आकर मेरे जीवन में खुशी की लहर न दौड़ा दी होती तो मैं वेदना की चट्टान के नीचे अबतक दम तोड़ चुका होता!" आज फिर सोम ने फुलमत के चेहरे पर वही व्यथा देखी। पर आनन्द और चुन्नू मियाँ की उपस्थिति में वह उसे समझा न सका।

"चित्र तो मैं पहले भी बनाता था, और चित्र मैं अब भी बनाता हूँ," सोम ने जैसे फुलमत का ध्यान पलटने के लिए कहा, "पर मेरे पहले के चित्र तो विषाद और वेदना के प्रतीक हैं। इधर वह वेदना दब चली है। मेरे दिल में खुशियों का हाट-बाजार लगा रहता है। जैसे एक रंग दूसरे रंग से कुछ खरीद रहा हो, जैसे एक रंग दूसरे रंग के हाथ कुछ बेच रहा हो।"

"वाह वाह!" आनन्द ने चुटकी ली, "यह हाट-बाजार की उपमा भी खूब रही।"

चुन्नू मियाँ रानी बिटिया के साथ खेलने में मस्त था, जैसे कोई जीता-जागता खिलोना उसके हाथ आ गया हो।

आनन्द भी उस जीते-जागते खिलोने की ओर सरक गया। बच्ची की आँखों में यह किस हर्ष की चमक थी, इसमें किस अज्ञात भविष्य की ओर संकेत था ? फिर पीछे से आकर सोम और फुलमत भी रानी बिटिया पर झुक

गये, जैसे समस्त भीड़ का हर्ष-उल्लास एक तरफ रह गया हो और इस बच्ची के रूप में उनका हर्ष एक तरफ थिरक उठा हो।

लोगों के चेहरों पर जैसे करंजिया की काली मिट्टी ने विभिन्न रंगों से उनके हर्ष-उल्लास को उभार दिया हो। इस उल्लास के पीछे जीवन की खुशियाँ सिर उठा रही थीं; इन खुशियों पर हाट-बाजार तैर रहा था। जैसे हाट-बाजार जोर से हाथ चलाते हुए अपना ढोल बजा रहा हो। होगा करमा का अपना ढोल, हाट-बाजार का ढोल भी तो कुछ कम न था; जैसे पूरा हाट-बाजार एक ढोलिया हो—अनेक हाथों से ढोल बजाने वाला ढोलिया!

४८

कंचन गौरी करंजिया के हस्पताल की नर्स थी। करंजिया के जीवन में उसका प्रवेश अकस्मात् हुआ। सरकार पर बार-बार जोर डालने से भी जब कुछ परिणाम न निकला तो आनन्द ने समझ लिया कि यही ग़नीमत है कि डॉ० वली मुहम्मद जी-जान से लोगों की सेवा कर रहे हैं और जहीर कम्पाउंडर भी सेवा-भाव में डॉक्टर से पीछे नहीं। पर एक दिन बाजार टोला में जब यह खबर उड़ी कि करंजिया हस्पताल के लिए सरकार ने कंचन गौरी को नर्स बनाकर भेजा है तो हर कोई बार-बार कह उठता था, "मैं कहता न था कि सरकार को हमारा बहुत ख्याल है।"

जैसा नाम वैसा रूप। शरीफ़ घराने की स्त्री थी; तनख्वाह के अलावा किसी से एक पैसा न लेती थी। सब से यही कहती, "मेरा तो जन्म ही सेवा के लिए हुआ है।" अपनी बात कम कहती, दूसरे की बात अधिक सुनती; दस बातें सुनकर एक बात कहती और सबका मन मोह लेती; पुरुष तो उसकी प्रशंसा करते ही थे, स्त्रियाँ भी उसका बखान करते न थकतीं। बीमार के प्रति उसकी सहानुभूति नदी के समान बहने लगती; उस समय उसका गोल

मुँह और भी सुन्दर प्रतीत होता। उसकी बड़ी-बड़ी आँखों में निकट-सम्पर्क की निष्कपटता यों उभरती जैसे घास पर ओस की बूँद चमकती है। अपनी वाणी से वह कभी किसी को आघात न पहुँचाती।

डॉक्टर और कम्पाउंडर भी कंचन गौरी के व्यवहार से प्रसन्न थे। रहस्यमय बनने की तो कंचन गौरी कोई आवश्यकता ही न समझती थी; उसका जीवन एक खुली हुई पुस्तक था जिसे हर कोई पढ़ सकता था; अपने बारे में वह किसी बात को छिपाकर रखना पसन्द नहीं करती थी; डॉक्टर और कम्पाउंडर से अपने वृद्ध माता-पिता के सम्बन्ध में हर छोटी-बड़ी बात बता दी थी; उसके नौकरी करने का एकमात्र कारण यही था कि वह अपने माता-पिता को अपने जीवन के अन्तिम दिनों में कोई कष्ट नहीं होने देना चाहती थी। उसकी छोटी बहन अभी पढ़ती थी, उसकी शिक्षा का भार भी कंचन गौरी पर था; छोटी बहन पढ़-लिख जाय और किसी काम लायक हो जाय, फिर यह प्रश्न उठता था कि वह अपने भावी जीवन के बारे में कुछ सोचे। तब तक तो कंचन गौरी के विवाह का प्रश्न ही नहीं उठता था।

आनन्द के प्रति कंचन गौरी का व्यवहार और भी मृदुता लिये हुए था, क्योंकि वह जानती थी कि यदि किसी ने करंजिया के हस्पताल के लिए सब से ज्यादा ज़ोर लगाया वह है आनन्द। इससे सैयद नूरअली को बड़ी चिढ़ लगती, वह तो चाहता था कि कंचन गौरी आनन्द को सन्देह की दृष्टि से देखे और हो सके तो मंडल के कान में यह आवाज़ डाल दे कि उसे अपनी बेटी रूपी को आनन्द से बचाकर रखना चाहिए। कभी आनन्द कंचन गौरी को खाने पर बुलाता तो नूरअली सोचता कि ज़रूर दाल में कुछ काला है, कभी वह सोचता कि रूपी का आकर्षण तो तभी तक था कि जब तक कंचन गौरी नहीं आई थी। अब रूपी दब जायगी; कंचन गौरी उभरेगी। पर कंचन गौरी सदा करंजिया वालों की विश्वासपात्र बनी रही, उसकी सच्चरित्रता का सिक्का हर कोई मान गया।

सफ़ेद वस्त्रों में लिपटा हुआ कंचन गौरी का शरीर और भी आकर्षक

प्रतीत होता। धनपाल ने उसे देखा तो उस पर मुग्ध हुए बिना न रह सका; उस पर डोरे डालने लगा। कंचन गौरी उसकी बातों में आने वाली न थी। उसने धनपाल के मुख से उसकी कहानी सुनी और झट फैसला कर लिया कि ऐसे व्यक्ति से जो दो पत्नियों के होते तीसरी पत्नी के रूप में एक अबोध गोंड-लड़की को फँसाने में सफल हुआ और जो सदैव दूसरों को पीड़ा पहुँचा कर खुश होता है, उसका दूर का भी सम्बन्ध नहीं हो सकता।

कंचन गौरी के स्थान पर यदि कोई दुर्बल प्रकृति की स्त्री होती तो करंजिया का हस्पताल छोड़कर भीमकुण्डी जाकर रहने लगती और उसका व्यक्तित्व बलि का बकरा बन जाता। शुरू-शुरू में दो-तीन बार वह धनपाल के यहाँ खाने पर अवश्य गई; अब तो उसने तय कर लिया था कि वह न आनन्द के यहाँ भोजन का निमन्त्रण स्वीकार करेगी न धनपाल के यहाँ; वह एक-दूसरे की ईर्ष्या से बचकर अपने कर्तव्य-पथ पर अग्रसर होगी, उसका यह निश्चय हर किसी को मालूम हो चुका था।

ऊपर जंगल, नीचे उपत्यका का छोर—कंचन गौरी को करंजिया का यह दृश्य पसन्द था; काली मिट्टी की सन्तान एकदम निष्कपट और सरल थी। कंचनगौरी अपने कर्तव्य से कभी विमुख न होती; डॉक्टर को 'जी हुजूर' कहने की आवश्यकता न थी, डॉक्टर तो उसके व्यक्तित्व से इतना प्रभावित था कि वह कई बार अनुभव करता कि गौरी तो कोई देवी है और करंजिया के दर्द सुनने के लिए काली मिट्टी पर चली आई है।

कंचन गौरी में कोई अन्तर्विरोध न था; आत्मविश्वास को वह कभी हाथ से न जाने देती। नर्स का काम उसे प्रिय था, फिर भी वह सोचने लगती कि ऐसी क्या बात थी जिसने उसे नर्स बनने के लिए आकर्षित किया। उसकी माँ अपने गाँव की सब से बड़ी सेवापरायण स्त्री थी; माता के व्यक्तित्व की यही छाप नर्स के रूप में उसके जीवन पर इतनी गहरी लगी कि अब कोई इसे उतार न सकता था; डाकघर की मोहर के समान सेवा-भावना की छाप अब किसी के मिटाये न मिट सकती थी।

महीने-के-महीने, तनख़्वाह मिलते ही वह अपने माता-पिता के लिए बँधी हुई रकम अवश्य भेज देती, छोटी बहन के लिए अलग रुपये भेजती। अपने खर्च के लिए अधिक न बचता; उसे यह इच्छा अवश्य होती कि तनख़्वाह थोड़ी बढ़ जाय, क्योंकि इतने में तो गुज़र होनी कठिन थी। तनख़्वाह मिलने में देर होती तो पिताजी की चिट्ठी-पै-चिट्ठी आती। रुपया जल्द भेजो!— यही इस चिट्ठी की टेक होती। जैसे वह रुपया बनाने की मशीन हो! उसे एक क्षण के लिए क्रोध आता; पर वह सँभल जाती और सोचती कि कर्तव्य तो निभाना ही होता है।

रूपी पर कंचन गौरी मेहरबान थी; रूपी जबलपुर से दसवीं पास कर चुकी है, यही बात उसे करंजिया की सभी लड़कियों से ऊपर उठाती थी। कला-भारती के सम्पर्क में आकर उसने अपनी शिक्षा को अधिक-से-अधिक उभारने की चेष्टा की थी, यह बात भी कुछ कम प्रशंसनीय न थी; लेकिन यह बात कि एक दिन रूपी झूलन-जैसे अनाड़ी के पल्ले बँध जायगी, इस आशंका से कंचन गौरी भयभीत हो उठती।

अभी अगले ही दिन रूपी ने कंचन गौरी को बताया था कि अब तो झूलन रोज़ ही उसके माता-पिता से लड़ने लगता है, कहता है—मेरा फैसला जल्दी करो; मेरी रूपी मुझे दो! आँखों में आँसू भरकर रूपी ने कंचन गौरी से कहा था, "मुझे तो उस पशु-सरीखे युवक से घृणा हो चली है, दीदी! अब झूलन मेरा लामसेना है तो मैं क्या करूँ? मैं तो अपना जीवन एक पशु को नहीं सौंप सकती।"

कंचन गौरी ने तो रूपी को यही सलाह दी थी, "रूपी, बहुत सोचकर चलो; अपने व्यक्तित्व का सबसे अधिक ख़्याल रखो; एक बार नष्ट होकर व्यक्तित्व दोबारा नहीं मिलता।" यह परामर्श सुनकर रूपी का चेहरा तमतमा उठा था। फिर उसकी आँखों से आँसू बहने लगे; समवेदना से कंचन गौरी की आँखें भी तो गीली हो गई थीं। यों लगता था कि रूपी और कंचन गौरी के आँसुओं से करंजिया की साँझ गीली हो गई है; दोनों खोई-

खोई-सी बैठी रही थीं।

कुछ दिनों से तो रूपी का जीवन किसी कुहासे में खोता जा रहा था; कंचन गौरी उसे इस कुहासे से निकाल लाना चाहती थी। एक दिन सवेरे ही रूपी ने आकर कहा, "सुनो, गौरी दीदी ! मेरे काका ने कल रात झूलन को टका-सा जवाब दे दिया। उन्होंने कहा—देखो, रूपी की इच्छा नहीं होगी तो मैं कभी उसे तुम्हारे साथ ब्याह करने के लिए मजबूर नहीं कर सकता। तुम चाहो तो उतने बरसों की नौकरी के रुपये खरे कर लो जितने बरसों से तुम हमारे घर में लामसेना बनकर रहते हो !" इसके उत्तर में कंचन गौरी ने कहा था, "यह तो बहुत ही खुशी की बात है। इसके बिना तुम्हारा कोई इलाज नहीं, रूपी ! समझो तुम बच गईं।" "मेरा इलाज या झूलन का?" रूपी ने चुटकी ली थी। और फिर रूपी ने कहा, "गौरी दीदी, झूलन को यह सन्देह हो गया है कि मैं आनन्द के चक्कर में पड़ गई हूँ; पर मैंने आज तक तो आनन्द से इस विषय में बात नहीं की। क्या ही अच्छा हो गौरी दीदी, कि मैं भी तुम्हारे समान आजीवन अविवाहित रहने की शपथ ले लूँ !" इस पर गौरी ने कहा था, "झूलन से ब्याह करो चाहे आनन्द से चाहे किसी और से, ब्याह से बचना तो सहज नहीं, इससे बचने की शपथ भी भयानक है, पर एक बात का सदा ध्यान रहे—यही कि तुम्हारा भी व्यक्तित्व है, रूपी !" कंचन गौरी के इस परामर्श में यथेष्ट स्पष्ट-वादिता थी।

कुछ दिनों से रूपी मिलने नहीं आई थी; कंचन गौरी भी तो उसके यहाँ नहीं जा पाई थी। रूपी के चित्र में उसने कल्पना से कई ऐसे रंग भी भर दिये थे, जिनका स्वयं रूपी में अभाव था। कंचन गौरी ने उसे एक निर्भीक लड़की के रूप में ही नहीं एक संघर्षमयी के रूप में अंकित किया; जैसे इस मूर्ति का निर्माण पत्थर की दीवार छीलकर किया गया हो। रूपी के व्यक्तित्व में कंचन गौरी ने अपने व्यक्तित्व का सम्मिश्रण करना उचित समझा।

रथ के पहिये

साँझ का समय था। हस्पताल से आने के बाद आज कंचन गौरी अनमनी-सी बैठी थी, जैसे चतुर्दिक् निस्तब्धता का साम्राज्य हो, आज वह मूक और निरुत्साह-सी क्यों थी, यह तो स्वयं उसके लिए भी एक पहेली थी। कभी-कभी तो वह टहलने की इच्छा से यन्त्रवत् घर से निकल जाती थी; आज तो जैसे उसे काठ मार गया हो।

सामने से ज़हीर कम्पाउंडर दौड़ा चला आ रहा था। पास आकर उसने कहा, "ग़ज़ब हो गया!"

"ऐसी क्या खबर है?"

"वह मंडल पटेल की लड़की है न···"

"हाँ हाँ, रूपी; उसे क्या हुआ?"

"रूपी पोखर में गिर गई।"

४६

तारे टिमटिमा रहे थे, जैसे यही मानव के पथ-प्रदर्शक हों। आनन्द तारों की छाया में रूपी के घर की ओर चला जा रहा था। रूपी पोखर में गिर गई—यह खबर बड़ी दुःखद थी। वह सोच रहा था कि काश, रूपी बच गई हो! उसने रूपी को कई बार समझाया था कि हर समय पोखर के किनारे बैठे रहना बहुत घातक सिद्ध हो सकता है, फिर रूपी की यह आदत भी तो थी कि वह सदा किसी गहरी सोच में डूबी रहती थी। उसकी आँखों में बिजली के कौंदे के समान उस घटना का स्मरण हो आया जब अकाल के दिनों में एक बार रूपी ने उससे कहा था कि उसे सिगरेट से घृणा है। उसने इतनी-सी बात पर सिगरेट पीना छोड़ दिया था। उसके बाद से उसने भूलकर भी सिगरेट को हाथ नहीं लगाया था।

जल्दी-जल्दी पग उठाते हुए उसने सोचा कि रूपी बच गई तो वह उसे सख्त ताकीद करेगा कि पोखर के किनारे बैठे रहने की आदत को सदा के लिए प्रणाम कर दो। पोखर काफी गहरा है। इसमें गिरकर कई बच्चों की जान चली गई है। उसका हृदय जोर-जोर से धड़कने लगा।

रात्रि के अन्धकार में हाथ को हाथ सुझाई नहीं दे रहा था। अब तो वह नदिया टोला पहुँचकर दम लेगा। कई बार वह गिरते-गिरते बचा। यह रास्ता उसका जाना-पहचाना रास्ता था, पर आज जैसे वह पहली बार उधर जा रहा हो। इतने अन्धकार में तो कभी उसने यह रास्ता तय नहीं किया था।

यदि रूपी को कुछ हो गया तो मेरे लिए करंजिया के जीवन में कुछ भी आकर्षण नहीं रह जायगा, यह सोचकर उसका हृदय और भी तेज़ी से धड़कने लगा। तो क्या वह यह सोचकर यहाँ आया था कि यहाँ उसे रूपी मिल जायगी? वह रूपी पर अधिकार नहीं चाहता था। फिर भी रूपी के प्रति उसके हृदय में इधर कई वर्षों में जो स्थान बन गया था वह भी तो सत्य था और उसे झुठलाना सहज न था।

उसका मन अनेक आशंकाओं में डूबता-उभरता संकटासन्न वीथिका से गुज़र रहा था; नदिया टोला का वह पोखर अब समीप ही होना चाहिए; उससे लगा हुआ है मंडल पटेल का झोंपड़ा।

झोंपड़े के एक कोने में दीये के प्रकाश में रूपी को खाट पर कपड़ा बिछाकर लिटाया गया था; सिरहाने की ओर कंचन गौरी बैठी थी। सामने चौकियों पर डाक्टर वली मुहम्मद और ज़हीर कम्पाउंडर बैठे थे।

"लाख-लाख धन्यवाद कि रूपी बच गई!" आनन्द ने रूपी की ओर देखकर कहा।

"अल्ला पाक बचाने वाले हैं!" डॉक्टर वली मुहम्मद ने कहा, "हम सबसे ज्यादा अहसानमन्द तो झूलन के हैं जो अपनी जान की परवाह न करते हुए रूपी को पोखर से निकाल लाया।"

"वाकई झूलन ने बड़ी बहादुरी का काम किया।" ज़हीर ने बढ़ावा दिया।

"झूलन तो बड़ा तैराक है!" आनन्द ने स्वर मिलाया।

पास ही झूलन खड़ा था। वह कुछ न बोला।

"रूपी बच गई !" आनन्द ने कहा, "यह हमारा सौभाग्य है।"

"कंचन गौरी ने भी बड़ा काम किया !" डॉक्टर वली मुहम्मद ने कहा, "वह समय पर न आ पहुँची होती तो बहुत नुकसान होता, जहीर मुझे बुलाने दौड़ा, पर कंचन गौरी घोड़े पर सवार होकर यहाँ आ पहुँची।"

रूपी खामोश थी। फिर उसने धीरे से आँखें खोलकर कहा, "आ गये मेहमान बाबू !"

"आराम करो, रूपी !"

"मेहमान बाबू को देखे बिना मैं मर भी तो नहीं सकती थी !" रूपी ने निस्संकोच भाव से कहा।

आनन्द खड़ा रूपी की ओर देखता रहा। उसकी आँखों में करंजिया का भविष्य घूम गया; जैसे रूपी को बिना वह करंजिया की कल्पना ही न कर सकता हो, जैसे रूपी के मुख पर ही उसे करंजिया की आशाओं का उज्ज्वल इतिहास नजर आ सकता हो।

"बैठ जाओ, मेहमान बाबू !" रूपी की माँ ने धीरे से कहा।

"आज तो मिठाई खिलाओ काकी !" आनन्द ने गम्भीर होकर कहा, "रूपी का यह दूसरा जन्म समझो।"

"तो क्या मेरा तीसरा जन्म भी होगा, मेहमान बाबू ?" रूपी ने गम्भीर होकर कहा।

"हमें नहीं चाहिए तीसरा जन्म," झूलन ने बिगड़कर कहा, "पोखर के पास बैठी तुम न जाने क्या सोचती रहती हो, रूपी !"

"पोखर के पास मत बैठा करो, रूपी !" आनन्द ने हँसकर कहा "हमें तुम्हारी जरूरत है।"

"तुम कहते हो तो नहीं बैठा करूँगी पोखर के किनारे", रूपी ने आह भरकर कहा, "अपने मेहमान बाबू का कहना मैं कैसे टाल सकती हूँ !"

झूलन कुछ न बोला; उसके शरीर में जैसे काटे से लहू न हो !

५०

कर्नल साहब ठीक समय पर भीमकुण्डी पहुँच गये थे। धनपाल ने उनके स्वागत में कागज़ की नीली झंडियाँ लगाकर भीमकुण्डी में अपनी कोठी को खूब सजाया था। श्रीपाल की समाधि के प्रवेश-द्वार पर फूल-पत्तियों की मेहराब लगाई गई थी। कर्नल साहब ने भीमकुण्डी में नर्मदा के कई फोटो लिये और यहाँ के प्राकृतिक सौन्दर्य की बहुत प्रशंसा की। श्रीपाल की समाधि के भी कर्नल साहब ने दो-तीन फोटो लिये, और वह कहानी अपनी डायरी में नोट कर ली जिसमें ठाकुर साहब को अन्न-देवता का समवयस्क सिद्ध किया गया था। "हम इस पर दुनिया को बटायेगा" कर्नल साहब ने डायरी बन्द करते हुए कहा।

कर्नल साहब से धनपाल की भेंट जबलपुर में हुई थी। कर्नल साहब बड़े रंगीले प्राणी थे, इसीलिए धनपाल ने उन्हें विशेष रूप से कबीर चबूतरा के जंगल में शेर के शिकार का निमन्त्रण देते हुए कहा था, "हिन्दुस्तानी लोग भी अब शिकार में दिलचस्पी लेने लगे हैं, पर शेर के शिकार का जो मज़ा अंग्रेज लोग लेते हैं उससे हिन्दुस्तानियों का क्या मुकाबला! अगले बसन्त में

भीमकुण्डी आइए; और शिकार का मज़ा लीजिए। आपके साथ ज़रा हम भी दो हाथ दिखाएँ गे!" कर्नल साहब ने अपना वचन निभाया और ठीक वसन्त में ही आये।

"हाँका लगाने के लिए तो बहुत से आदमी चाहिएँ" मुन्शी दीनानाथ ने चिन्तित होकर कहा, "करंजिया की बीमारी भीमकुण्डी में भी फैल गई। मैंने लाख कहा, पर कोई आदमी चलने के लिए तैयार नहीं।"

"तो पहले क्यों न बताया?" धनपाल ने क्रुद्ध होकर कहा, "कर्नल साहब शिकार के लिए तैयार बैठे हैं और तुम अभी हाँका लगाने वालों को ढूँढ रहे हो, दीनानाथ।"

"मालिक, मैं क्या कर सकता हूँ?" मुन्शीजी ने हाथ बाँधकर कहा, "ज़माने की हवा बदल रही है। जहाँ पहले पक्षी भी पर नहीं मार सकते थे, वहाँ अब कीड़े-मकोड़े सिर उठा रहे हैं। हज़ूर, यह सब बड़े लोगों की नरमी का नतीजा है। जब राजा लोग भी महात्मा गान्धी के असूलों पर चलेंगे तो प्रजा को राजा का क्या भय रहेगा?"

"यह उपदेश कभी फिर सही दीनानाथ!" धनपाल ने मौके की नज़ाकत देखकर कहा, "मेहमान के सामने तो हमारी पत रहनी चाहिए।"

"मालिक, मैं तो कहता हूँ कि मेहमान के सामने हम अपनी तकलीफ़ को खोलकर बतायें, फिर हमारा मेहमान तो अंग्रेज़ बहादुर है। अगर हम आज भी इन लोगों से बेगार नहीं ले सकते तो हमारे से ज्यादा तो यह अंग्रेज़ का ही अपमान है।"

"बेगार पर लोग नहीं आते तो उन्हें मजदूरी पर लाओ।"

"मालिक, हाँका लगाने के लिए तो कोई मजदूरी पर भी आने को तैयार नहीं। मैंने पहले ही पूछ लिया। तीन दिन पहले ही तो इनकी पंचायत ने फैसला किया था कि भीमकुण्डी की धरती से बेगार का नाम-निशान मिटा देंगे।"

"खैर छोड़ो ये बातें। इन लोगों को सीधा करने के गुर मुझे याद हैं।"

"हाँ, मालिक ! राजा की प्रजा राजा से भागकर कहाँ जायगी ?"

"अबका इलाज सोचो, कर्नल साहब के सामने यह बात न खुलने पाये।"

"मालिक, एक बात याद आ गई। करंजिया में तो शायद मजदूरी पर ही कुछ लोग मिल जायँ, नहीं तो जगतपुर में देखेंगे।" "जगतपुर तो जंगल-विभाग का गाँव है, वहाँ से तो बेगारी भी मिल सकते हैं ?"

"फॉरेस्ट रेंजर कासिमी साहब के हुक्म के बिना तो हम कुछ नहीं कर सकते।"

"कर्नल साहब के काम में तो कासिमी साहब भी न नहीं कर सकेंगे। मैं चिट्ठी देता हूँ, फौरन लेकर कासिमी साहब के पास जाओ।"

"मालिक, यह भी अच्छा हुआ कि हमारे कर्नल साहब अंग्रेज हैं।"

यह कार्यक्रम तय हुआ कि कर्नल साहब को लेकर धनपाल सीधा कबीर चबूतरा के गेस्ट हॉउस की तरफ चल पड़े; दीनानाथ के जिम्मे यह काम लगाया गया कि वह जगतपुर से बेगारी इकट्ठे करके रात से पहले-पहले कबीर चबूतरा पहुँच जाय।

अगले दिन कर्नल साहब यह देखकर बहुत गरम हुए कि व्यर्थ ही उन्हें परेशान किया गया, क्योंकि हाँका लगाने के लिए अभी तक कोई आदमी नहीं पहुँचा था।

दोपहर के समय दीनानाथ आया तो उसके साथ केवल दस-बारह आदमी थे।

उनमें से एक ने कहा, "हाँका हम जरूर देंगे, लेकिन मजदूरी हम पहले रखा लेंगे।"

"तमीज से बात करो !" धनपाल ने गरम होकर कहा।

कर्नल साहब के सम्मान पर गहरी चोट लगी। उन्हें मालूम हुआ तो आगबबूला होकर बोले, "हम बोलटा, हम शेर का शिकार पीछे खेलटा, पहले इस आडमी लोग का शिकार खेलटा !"

कर्नल साहब का क्रोध देखकर हाँका लगाने के लिए आये हुए लोगों

ने इस काम से साफ़ इन्कार कर दिया।

धनपाल के चेहरे पर एक रंग आता था, एक जाता था; एक समय था कि किसी को उसके सामने आँख उठाने की हिम्मत न होती थी।

"जाओ, पहले इन लोगों को चाय पिलाओ!" धनपाल ने नरम होकर कहा, "आखिर ये हमारे आदमी हैं, हमसे भागकर कहाँ जायँगे?"

"आप तो इनके माई-बाप हैं," मुन्शी जी ने बुद्धिमत्ता से काम लेते हुए कहा, "आप ठहरे राजा, यह आपकी प्रजा। राजा से प्रजा कैसे नाराज़ हो सकती है?"

दीनानाथ उन लोगों को रसोई की तरफ़ ले गया।

"कबीर चबूतरा की तारीफ़ तो हर अंग्रेज़ साहब बहादुर ने की है, कर्नल साहब!" धनपाल ने कर्नल साहब को बातों में लगाते हुए कहा, "आपको यह जगह कैसी लगी।"

कर्नल साहब कुरसी पर जा बैठे थे, और उनकी आँखें अख़बार पर गड़ गई थीं।

"शेर का शिकार ही सब से बड़ा शिकार है, कर्नल साहब!" धनपाल ने जैसे गप हाँकने के अन्दाज़ में कहा, "लार्ड लिनलिथगो के साथ मैं ही आया था। उस समय डेढ़ सौ लोग हाँका लगाने के लिए आये थे!"

"और अब हमारे लिए डस आडमी आये और वह भी काम पर जाना नहीं माँगटा!" कर्नल साहब ने क्रोध में आकर कहा।

"हम लोगों की ताकत तो अंग्रेज़ साहब बहादुरों की ताकत है, कर्नल साहब!" धनपाल ने नरम होकर कहा, "मैं कई बार अफ़सरों को लिख चुका हूँ। आप भी जोर डालेंगे तो फिर सब ठीक हो सकता है। बेगार मिट गई तो अंग्रेज़ साहब बहादुरों को ही सबसे ज्यादा तकलीफ़ होगी!"

"तो शेर का शिकार होगा या नहीं!" कर्नल साहब ने झुँझलाकर पूछा।

अभी धनपाल कुछ उत्तर नहीं दे सका था, उधर से दीनानाथ ने आकर कहा "मालिक, वे लोग चाय पीकर नीचे भाग गये!"

५१

जनता ने अपनी शक्ति देख ली थी; भीमसेन की कहानी का मर्म गोंडों की समझ में आ गया था। कपिलधारा से नहर निकालने की बात कभी उनकी समझ में न आती, यदि भीमसेन की कहानी सामने न होती। कपिलधारा पर भीमसेन ने नर्मदा को रोकने का यत्न किया था, यह बात प्रत्येक गोंड जानता था; लेकिन भीमसेन ने नर्मदा को कपिलधारा पर क्यों रोका था, यह बात उनकी समझ में पहले नहीं आई थी। अब तो हर कोई समझ गया था कि भीमसेन ने कपिलधारा पर नर्मदा को इसीलिए रोका था कि वह करंजिया के रास्ते से आगे बढ़े।

आनन्द ने यही सोचकर लोगों को समझाया कि भीमसेन ने जिस काम को पूरा करने का प्रयत्न किया था उसे अब हम मिलकर कर सकते हैं। लालाराम का भी इस बात में काफी हाथ था; उसने घर-घर जाकर लोगों को समझाया, "नहर खोदने के काम को कोई आदमी बेगार न समझे, क्योंकि यह तो ऐसे हैं जैसे हाथ-मुँह में कौर डाले और इससे तो सब का लाभ होगा। अगर नहर निकल आई तो फिर करंजिया को कभी अकाल

का सामना नहीं करना पड़ेगा।"

लोगों ने लालाराम की बात पर इसलिए भी ध्यान दिया कि इसमें तो सबका लाभ था। दो महीने से नहर खोदने का काम चालू था। काम काफी आगे बढ़ आया था; कपिलधारा से आधी फरलाँग इधर से ही काम शुरू किया गया था; जबलपुर के एक रिटायर्ड इंजिनीयर को सलाह-महशरे के लिए बुला लिया गया था।

शुरू में तो नूरअली ने नहर के काम के विरुद्ध प्रचार किया, पर अपनी बात का प्रभाव न होने पर वह सोच में पड़ गया। उसने सोचा कि वह भी तो किसान है, पुराना कम्पाउंडर नहीं है। वह जानता था कि अकाल के दिनों में किसानों को मुसीबतों का सामना करना पड़ता है। एक दिन वह भी जैसे सोते से जगा और कुदाल उठाकर नहर की ओर चला गया।

"आओ, नूरअली!" आनन्द ने उसका स्वागत करते हुए कहा, "मुझे पहले से मालूम था कि तुम जरूर आओगे।"

नूरअली जानता था कि नहर का काम शुरू होने पर आनन्द ने ही सब से पहले कुदाल चलाई थी और अब भी वह कुदाल चलाने से संकोच नहीं करता था, बल्कि वह तो आज भी गोंडों से भी अधिक उत्साह से कुदाल चलाता था। उसने देखा कि सोम भी तूलिका छोड़कर कुदाल चला रहा है।

लोगों में बड़ा उत्साह था; अब तो भीमकुण्डी के लोग भी करंजिया वालों के साथ मिल गये थे। सभी जानते थे कि कमण्डल नदी को धारा तो इतनी नीची है कि उसका पानी व्यर्थ ही चला जाता है; भीमकुण्डी पर नर्मदा की धारा भी नीची थी, उससे खेतों की सिंचाई का काम न लिया जा सकता था। अब इस नहर से करंजिया और भीमकुण्डी का समान रूप से लाभ होगा, यह स्पष्ट था।

यों लगता था कि आनन्द में भीमसेन की शक्ति आ गई है; उसे

कुदाल चलाते देखकर तो इंजिनीयर रामस्वरूप कौशल भी किसी गोंड के हाथ से कुदाल लेकर खुदाई के काम में जुट जाते। कोई किसी को कहने वाला न था, न रोकने वाला; यह तो जनता का काम था, स्वयं जनता ने इसे हाथ में लिया था।

आनन्द की कल्पना में वह दृश्य घूम जाता जब नहर का काम करंजिया तक जा पहुँचेगा, और फिर इसे भीमकुण्डी तक पहुँचा दिया जायगा; वह उस समय की बाट जोहने लगता जब कपिलधारा की ओर आध फरलाँग की खुदाई का काम शुरू होगा।

नहर आधी से अधिक खोदी जा चुकी थी। अब करंजिया रिलीफ़-कमेटी के फण्ड के बचे हुए रुपये से कपिलधारा पर नहर का पक्का डैम और गेट बनाया गया जिससे पानी को आवश्यकतानुसार कम या ज्यादा करना या बन्द करना सम्भव हो सके।

धनपाल ने भीमकुण्डी के लोगों को शुरू से ही करंजिया वालों का साथ देने से रोकने का यत्न किया, जो असफल रहा; अब जबकि नहर करंजिया की सीमा से पाँच फरलाँग रह गई थी, वह भी एक दिन नहर देखने आया और लोगों को काम करते देखकर उसने अपने मुन्शी से कहा, "अब क्या यह बेगार नहीं है?"

"मालिक, हमें इसकी रिपोर्ट करनी चाहिए," मुन्शी दीनानाथ ने घनी मूछों पर ताव देते हुए कहा, "मेरा तो ख्याल नहीं कि इन लोगों ने मंजूरी ली है।"

"ऐसा तो नहीं हो सकता, दीनानाथ! मंजूरी न ली होती तो इंजिनीयर कैसे आता?"

आगे बढ़कर धनपाल ने आनन्द के समीप जाकर कहा, "कला-भारती छोड़कर नहर के काम में उलझ गये, आनन्द जी?"

"कला-भारती भी चल रही है, धनपाल जी," आनन्द ने व्यंग्य से कहा, "हम तो यहाँ आपका ही काम कर रहे हैं, क्योंकि खेती के लिए पानी

मिलेगा तो कभी अकाल नहीं पड़ेगा और लगान भी आपको मिलता ही रहेगा।"

धनपाल निरुत्तर हो गया।

पास ही सोम भी कुदाल चला रहा था। धनपाल यह देखकर चकित रह गया। आनन्द की ओर उसने घूरकर देखा जैसे पूछ रहा हो—तुम मेरे मित्र हो या शत्रु? पर आनन्द के मुख पर उसे मित्रता का कोई चिह्न दिखाई न दिया; उसने पीछे हटते हुए मन-ही-मन बड़बड़ाते हुए कहा—आनन्द निश्चय ही मेरा शत्रु है, और यह सोम भी, जो अब देशसेवक का ढोंग रचा रहा है। इसने भी तो मेरा क्या नहीं बिगाड़ा!

धनपाल अपने मुन्शी के साथ घोड़े पर सवार होकर चला गया। लोगों ने उसे न आने को कहा था न जाने को; वे तो कुदाल चला रहे थे और भीमसेन का सपना सत्य कर दिखाने के लिए खून-पसीना एक कर रहे थे।

नहर खोदते समय लोगों की कुदालें यों चल रही थीं जैसे एक साथ समूह-गान के स्वर उठ रहे हों। लोगों का उत्साह धरती के समान था जो सूर्य की किरणें पीकर बीज से कहती है—कब तक सोये रहोगे, अब तो कोंपलों में आँखें खोलो! सबके मन हर्ष के झूले पर झूम रहे थे; हाथों में नया रक्त प्रवाहित हो रहा था; कुदालें पथरीली धरती को छीलती चली जा रही थीं। उज्ज्वल भविष्य की कल्पना में अकाल के लिए कोई स्थान न था; अकाल को भगाने के लिए तो नहर निकाली जा रही थी।

एक दिन मुन्शी दीनानाथ अकेला इधर आ निकला। लोगों ने उसके हाथ में कुदाल देकर कहा, "आज तो नहर खोदनी होगी, मुन्शी जी!"

"मेरे हाथ इस काम में नहीं चल सकते।" मुन्शी जी ने गरम होकर कहा।

"तो इधर क्या करने चले आये?" मंडल ने पास आकर कहा, "अब आये हो तो दिखा दो दो हाथ।"

"मैं तो ऐसे ही चला आया था, मंडल भैया!"

"तो हाथ तो नहीं घिस जायँगे मुन्शी जी; दिखा दो दो हाथ !"

"जय भीमसेन !" आनन्द ने पास आकर कहा, "भीमसेन के काम में कौन इन्कार कर सकता है ?"

"तो मुझसे जरूर बेगार लोगे, आनन्द बाबू ?"

मुन्शी जी से खूब काम लिया गया; यहाँ तक कि बेचारों का पसीना छूटने लगा। मंडल हँस-हँसकर कहता रहा, "यह काम है मुन्शी जी; यह बेगार नहीं है !"

५२

रंगली बात-बात में धनपाल को समझाती कि आनन्द जी बुरे नहीं हैं। धनपाल दाँत पीसकर रह जाता; कभी-कभी तो वह इतना विष उगलता कि रंगली कहती, "आप कुछ भी कहें, मैं आनन्द जी को बुरा नहीं कह सकती।"

रंगली के मन पर आनन्द की छाप थी; आखिर वह कला-भारती में शिक्षा पा चुकी थी। जब उसे आनन्द जी की बातें याद आतीं, वह सोचती कि उसने मालगुजार की पानी बनकर अच्छा नहीं किया। वह जानती थी कि मालगुजार ने करंजिया पर कुछ कम जुल्म नहीं ढाये। विवाह के पश्चात् लाज के मारे वह एक बार भी तो करंजिया नहीं गई थी। अच्छा खाना और अच्छा पहनना ही सब कुछ नहीं है, वह सोचती, क्यों न मैं यह सब छोड़कर भाग जाऊँ; लेकिन मालगुजार की कोठी का वैभव उसके हाथों में हथकड़ियाँ, पैरों में बेड़ियाँ डाले रखता। यह घर एक पिंजरे के समान था और उसके पंखों में उड़ने की शक्ति नहीं रह गई थी; पिंजरे की खुली खिड़की देखकर भी तो वह बाहर नहीं निकल सकती थी; वह पंख फड़फड़ा-

कर रह जाती।

एक दिन नर्वदिया मिलने आई तो उसने रंगली से कहा, "तुम तो भाग्यवान् हो, रंगली! मैं तो मालगुजार के बड़ी-बड़ी मूँछों वाले मुन्शी की पत्नी ही बन सकी। तुम हो मालगुजार की रानी।"

"रानी बनने में भी कौन सा सुख है, नर्वदिया?" रंगली ने अपने असन्तोष से पर्दा-सा उठाते हुए कहा।

नर्वदिया सदैव सोचती कि वह आई थी मालगुजार की रानी बनने के लिए और बनी मुन्शी की घरवाली; उसे एक शिकायत यह भी थी कि उसके पति की पहली पत्नी से दो लड़कियाँ हैं; जिनमें से एक तो उसी की उम्र की थी। जब मुन्शी जी अपनी लड़कियों की उपस्थिति में भी उसे प्यार से बुलाते तो वह लाज से मर ही तो जाती। उस समय वह घर की दीवारों से पूछती—मैं एक बूढ़े के साथ क्यों ब्याही गई? उस समय उसे अपना लामसेना याद आता जिसका शरीर लाठी की तरह सीधा था और जिसकी आँखें यों चमक उठतीं जैसे एक ही क्षण में उसके मन का भाव जान लेंगी।

आज नर्वदिया अपने लामसेना की बातें रंगली के सामने भी ले बैठी तो रंगली को भी अपने शम्भु का स्मरण हो आया। उसकी आँखों में अपने किये पर पश्चाताप की भावना उभरी; अब तो वह पीछे न जा सकती थी। रंगली ने नर्वदिया से कहा, "लामसेना की बात न किया करो, नर्वदिया! मन पर चोट लगती है। घाव हरा हो जाता है।"

फिर रंगली ने आनन्द जी की प्रशंसा आरम्भ कर दी तो नर्वदिया ने कहा, "तुम भी वह भूला सपना क्यों याद करती हो?"

"आनन्द जी तो करंजिया में हैं और करंजिया में ही है कला-भारती!"

"चलो एक दिन हम वहाँ हो आयें, रंगली।"

नर्वदिया और रंगली बैठी करंजिया का बखान करती रहीं। रंगली

ने गीत का वह बोल गुनगुनाया—करंजिया चाँद-सा प्यारा है !

"करंजिया बाहें फैलाकर हमें बुला रहा है ।" रंगली ने उदास होकर कहा, "लेकिन हम वहाँ किस मुँह से जायँ !"

"करंजिया में तो अब बहुत रौनक होगी ।"

"अकाल के पश्चात् करंजिया में नये जीवन की लहर दौड़ गई है, नर्वदिया ! मेरा सिर यह सोचकर झुक जाता है कि मेरा विवाह अकाल के दिनों में हुआ जब घर-घर से लाशें उठ रहीं थीं ।"

"अपने माता-पिताकी सहायता के लिए ही तो तुमने मालगुजार की पत्नी बनना स्वीकार किया था, रंगली !"

"जब मैं भीमकुण्डी आ रही थी तो मेरा शम्भु उदास था और गीली आँखों से मुझे देख रहा था, जैसे उसका सर्वस्व ही लुटा जा रहा हो !"

"शम्भु को तुम कभी नहीं भूल सकोगी, रंगली !"

"जब मैं उदास होती हूँ, मुझे लगता है कि मेरा शम्भु मुझे सान्त्वना दे रहा है ।"

"फुंलमत का विवाह भी तो अकाल में ही हुआ," नर्वदिया ने रंगली के कान के पास मुँह ले जाकर कहा ।

"उसने अधिक मूल्य पर बिकना स्वीकार न किया; मेरी कल्पना में फुलमत यों मुस्कराती है जैसे कह रही हो—तुमने भूल की, रंगली ! शम्भु जैसा वर तुम्हें कहीं नहीं मिल सकता !" और मेरा सिर यह सोचकर झुक जाता है कि मुझ से तो फुलमत ही अच्छी निकली, आखिर वह सती साध्वी है ।"

जब से करंजिया में नहर निकल आई थी, नर्वदिया और रंगली करंजिया की बातें करते-करते एक गर्व-सा अनुभव करने लगी थीं । कपिलाधारा जाकर वे इस नहर का डैम देख आई थीं; भीमकुण्डी में इस नहर का अन्तिम छोर था, जहाँ बचा हुआ पानी नर्मदा में गिराने के लिए व्यवस्था की गई थी ।

एक दिन धनपाल ने रंगली से पूछा, "तुमने कहीं मेरा बेगार का पट्टा

देखा है ?"

"कौन सा पट्टा ? बेगार तो बन्द हो गई !"

"पीतल का पट्टा है बेगार का, जिस पर सरकार का हुक्म खुदा हुआ है कि हमें बेगार लेने का अधिकार दिया जाता है। वह पट्टा मिल नहीं रहा।"

"पट्टा मिलने से क्या होगा ? बेगार तो अब मिलने से रही।"

"मैं सरकार से इसकी शिकायत करूँगा। सरकार को पट्टा दिखाना तो जरूरी है।"

"मैंने तो देखा नहीं।" यह कहकर रंगली ड्राइंग रूम से निकलकर जीने की ओर चली गई।

धनपाल देर तक पट्टा ढूँढता रहा। आनन्द के विरुद्ध उसके मन में तरह-तरह के विचार आते रहे; उसका कोई भी काम धनपाल को पसन्द न था, नहर के विरुद्ध भी वह बहुत कुछ कह चुका था, भले ही हर कोई यही उत्तर देता कि इससे तो आपका ही भला हुआ है। आनन्द का नाम और काम उसके मन में काँटे के समान चुभता रहता।

उसने प्रत्येक कमरे की तलाशी ली; और ड्राइंग रूम की एक-एक चीज उलट-पुलट कर देखी। पट्टा कहीं नजर न आया।

रंगली ने दोबारा ड्राइंग रूम में आकर कहा, "नहीं मिलता तो न मिले, हमारे आनन्द जी के रहते बेगार तो मिलने से रही !"

५३

"आज ये मुट्ठी-भर लोग बेगार के विरुद्ध ऊधम मचा रहे हैं, कल यही लोग लगान के विरुद्ध आग लगाते फिरेंगे, मालिक ! मैं कहता हूँ अब तो इन्हें ठीक करने के लिए सरकार से कहना चाहिए ।"

"अपनी आई पर आ जाऊँ तो मैं इन्हें आज ही सीधा कर दूँ, दीनानाथ !"

"तो कीजिए न, मालिक ! अब और नरमी दिखाने से तो मामला बिगड़ जायगा । हमारे कर्नल साहब भी जबलपुर जाकर सो गये । मेरा तो ख्याल था कि वे समझ गये होंगे और कलक्टर से कहकर हुकम भिजवायेंगे । मालूम होता है अब अंग्रेज भी ढीले पड़ रहे हैं ।"

"अरे दीनानाथ, तुम भी बस वह हो । अरे अंग्रेज को ढीला करने वाला आज तक तो कोई पैदा नहीं हुआ ।"

"हाँ महाराज, अंग्रेज को ढीला नहीं होना चाहिए । अंग्रेज ढीला हो गया तो ये लोग हमें न बेगार देंगे न लगान, हमारी इज्जत-आबरू पर

आँच आयगी, फिर हम जैसे लोगों का जीना दूभर हो जायगा।"

"अरे फिक्र क्यों करते हो, मुन्शी जी! हम सब ठीक कर लेंगे। आखिर ठाकुर श्रीपालसिंह की सन्तान ऐसी-वैसी सन्तान नहीं है। अरे यहाँ तो बड़े-बड़े अफ़सरों तक पहुँच है। बस हमारे ज़बान खोलने भर की देर है। अरे हम एक लिफ़ाफे में एक चिट्ठी लिख दें तो कलक्टर साहब भागे चले आयें। यह तो हम सोचते हैं कि क्यों उन लोगों को परेशान करें। घर में इलाज हो जाय तो डाक्टर को क्यों बुलाया जाय!"

"मालिक, यह इलाज घर में होने वाला तो मालूम नहीं होता। इसके लिए तो डाक्टर को बुलाना ही होगा।"

"अरे चुप भी रहो, दीनानाथ! छोटी बीमारी का इलाज तो घर में ही करना होता है। एक बात याद रखो। जैसा ज़माना हो वैसे बन जाना चाहिए। अब नरमी का ज़माना है; नरमी से काम चलाओ, लोगों के साथ नरमी से व्यवहार करो। गुड़ देने से काम निकल आय तो विष क्यों दें? जिसकी जो ज़रूरत हो पूरी करो, फिर वह जन्म-भर तुम्हारा होकर रहेगा।"

"मालिक, नरमी से भी कभी हुकूमत चला करती है? इससे तो ये लोग और भी सिर चढ़ेंगे। आगे आपकी जैसी मरजी!"

धनपाल इसका कुछ उत्तर न दे सका। मुन्शी जी ठीक तो यह कह रहे थे। वह जानता था कि मुन्शी जी अनुभवी प्राणी हैं और अनुभवी प्राणी के परामर्श से लाभ उठाना चाहिए। अब वह क्या करता? बेगार का पट्टा भी तो नहीं मिल रहा था। वैसे भी वह कुछ डर गया था। आनन्द के बढ़ते हुए प्रभाव से लोगों को बचाने का एक ही उपाय था कि लोगों का विश्वास फिर से प्राप्त किया जाय; इसके लिए तो लोगों के साथ नरमी बरतना और भी आवश्यक था।

मुन्शी दीनानाथ को लोगों से अधिक अपने मालिक पर क्रोध आता। मालिक चुप क्यों बैठे हैं, इसका कारण उसकी समझ में न आता। एक तरफ़ आनन्द लोगों में आग फैला रहा था और खुल्लमखुल्ला उन्हें बता

रहा है कि मालगुज़ार से डरना छोड़ दो और दूसरी तरफ मालगुज़ार साहब हैं कि उन्हें क्रोध नहीं आता और महात्मा गाँधी के शिष्य बनने की सोच रहे हैं। हे भगवान्! कैसा समय आ गया!

"इस तरह तो बाजी हमारे हाथ से निकल जायगी, मालिक!" दीनानाथ ने साहस बटोरते हुए कहा, "आज बड़े मालिक होते तो वे बुरी तरह बिगड़ते आप की नीति पर। मालिक को तो विजेता की नीति पर चलना चाहिए।"

"और हम क्या हारे हुए आदमी की नीति पर चल रहे हैं?" धनपाल ने ड्राइंग रूम में इधर-उधर देखा और हंसकर कहा, "आज हमारे पिताजी भी होते तो यही नरमी की नीति अपनाते। अरे दीनानाथ, आम खाने से मतलब है न कि पेड़ गिनने से।"

"आप मालिक हैं, हज़ूर! पर मैं तो यह नहीं समझता कि नरमी बरतने से यह गुत्थी सुलझ जायगी।"

"तो क्या इससे हमारी गुत्थी और भी उलझेगी, दीनानाथ?"

"जी हज़ूर!"

धनपाल को लगा जैसे दीनानाथ ने उनके मस्तिष्क की किसी जालीदार खिड़की से झाँक कर उसकी आन्तरिक दुर्बलता को देख लिया है।

"जब ज़मीन पर आपका अधिकार है तो आपको अपने पुरखाओं के सम्मान का कुछ तो ध्यान रखना होगा, मालिक! इस तरह तो लोग कहने लगेंगे, जमीन भी उसी की है जो इस पर हल चलाता है।" मुन्शीजी ने आँखें घुमाकर कहा।

धनपाल के चेहरे पर मानसिक वेदना के चिह्न स्पष्ट नज़र आ रहे थे, पर ऊपर से वह हँसता रहा।

मुझे अपना वह अपमान याद रहेगा, मालिक! मैं एक बार नहर की खुदाई देखने चला गया था और लोगों ने मुझसे जबरदस्ती कुदाल चलाने का काम लिया था। हे भगवान्! कितना उलटा ज़माना आ गया!"

"नहर से तो हमारा ही अधिक लाभ हुआ है, मुन्शी जी ! तुम्हें भी कुशल से दो हाथ चलाने पड़ गये थे तो क्या हुआ। एक बात कहूँ ? मैंने एक महापुरुष का वाक्य कहीं पढ़ा था और उसे मैंने डायरी में भी लिखा था—'क्रोध से इन्सान का मस्तिष्क खोखला होता है !' हाँ तो एक लाख रुपये की बात है—क्रोध मत करो।"

मुन्शी जी अवाक खड़े रहे।

धनपाल को क्रोध न आ रहा हो, यह बात नहीं, पर उसने अपने क्रोध पर शान्ति का पर्दा डाल लिया था। वह लोगों के घर जमीन पर अपना अधिकार समझता था; फिर लोगों का यह साहस कि बेगार देने से इन्कार कर दें, सचमुच इससे उसे मानसिक कष्ट हो रहा था। आनन्द पर ही उसे सबसे अधिक क्रोध आ रहा था; न आनन्द इधर आता न लोगों को मालगुजार के विरुद्ध भड़काता। उसके भीतर का घाव तो हरा था; आनन्द को नीचा दिखाये बिना यह घाव भर न सकता था, पर ऊपर से धनपाल हंस रहा था। उसे विश्वास था कि एक दिन आयगा जब वह आनन्द पर अपनी ताकत आजमायगा; इसमें जालसाजी बरतनी पड़े चाहे घूस देनी पड़े, वह उससे बदला जरूर लेगा, लेकिन अब यह बात खुलकर कहने की तो न थी।

"वह जमाना याद करो, मालिक," मुन्शी जी ने जैसे पुरानी स्मृति पर रंग की कूची फेरते हुए कहा, "बड़े ठाकुर साहब को प्रजा को काबू में रखने के गुर आते थे, प्रजा न केवल उनसे डरती थी बल्कि उनकी इज्जत भी करती थी; उनके दर्शन करके उनकी प्रजा समझती थी कि भगवान् के दर्शन हो गये। वे एक बार जिधर से निकल जाते थे लोग उनके सामने बिछ जाते थे। हे भगवान्! वह जमाना कहाँ चला गया ?"

"अरे मुन्शी दीनानाथ, वह जमाना कहीं चला नहीं गया," धनपाल ने पास वाली मेज से पुस्तक उठाकर कहा, "यह है 'जय भीमकुण्डी'—मैंने अपनी इस पुस्तक में उस जमाने का चित्र प्रस्तुत किया है। मैं तो समझता

हूँ कि हमारी प्रजा हमारी रहेगी; आनन्द को भी हम अपनी तरफ कर लेंगे। साम दाम दण्ड भेद—जैसी भी नीति अपनानी पड़े। हाँ बस यह ज़माने की माँग अवश्य है कि हम नरमी से काम लें। सच पूछो तो उस दिन कबीर चबूतरा में मैंने कर्नल वुल्फ को भी यही बात समझाई थी। मैं साथ न होता तो कर्नल वुल्फ ने लोगों पर गोली दाग दी होती। मैंने कहा था—'देखो कर्नल वुल्फ, क्रोध से तो इन्सान का दिमाग खोखला हो जाता है।' वे बोले—'टो हमसे क्या करना माँगटा, ढनपाल!' मैंने कहा—'जब प्रजा को क्रोध आ जाय, कर्नल वुल्फ, तो राजा को शान्ति का प्रमाण देना होता है, यह बात हमारे शास्त्रों में लिखी है।' कर्नल वुल्फ बहुत क्रोध में थे; मैंने तो कभी किसी को इतने क्रोध में नहीं देखा था; उनकी आँखें अँगारों की तरह दहक रही थीं; साँस बुरी तरह फूल गई थी, जैसे बरतानियाँ के हाथ से हिन्दुस्तान छूटा जा रहा हो। उस समय मुझे महात्मा गाँधी के 'हिन्दुस्तान छोड़ो' प्रस्ताव की याद हो आई। लेकिन मैं इतना मूर्ख तो न था कि कर्नल साहब के सामने महात्मा गाँधी का नाम लेता; इससे तो वह उलटा यही सोचता कि मैंने लोगों को सिखा-पढ़ाकर वह व्यवहार करने को कहा था। क्या आश्चर्य यदि कर्नल वुल्फ ने इसका यही अर्थ लगाया हो।"

"तो इसका भी क्या ठीक, मालिक, कि कर्नल साहब ने वापस जाकर अपने विरुद्ध ही सरकार को भड़काया हो।"

"मुझे यह आशंका नहीं है मुन्शी जी, कर्नल साहब अच्छे आदमी हैं। उनका क्रोध उतर गया था। यही तो अंग्रेज़ की खूबी है, मुन्शी जी अंग्रेज़ को क्रोध बहुत जल्द आता है और बहुत जल्द उतर जाता है अंग्रेज़ का क्रोध।"

"तो मालिक हमारा भविष्य क्या होगा?"

"अभी तो कुछ नहीं कहा जा सकता मुन्शी जी! हम नरमी बरतेंगे तो विजय हमारे हाथ होगी।"

"मालिक, मुझे तो नरमी की नीति से और भी डर लगता है। सब

उस शैतान आनन्द का दोष है, ! जी में तो आता है कि आनन्द के सिर पर एक लट्ठ जमाऊँ कला-भारती पहुँचकर। मैं कहता हूँ उसे डरा-धमका कर यहाँ से भगा न दिया गया तो पता नहीं वह कब तक करंजिया से चिपका रहेगा; जितनी देर वह यहाँ रहेगा इसमें हमारा ही नुक़सान है, मालिक !"

"मुन्शी जी, तुम हर समय यही सोचते रहोगे तो पागल हो जाओगे।"

"जो आज्ञा, हजूर!" दीनानाथ ने स्वाभाविक स्वामिभक्ति के स्वर में कहा।

"यह सब हमारे भाग्य का फेर है, दीनानाथ!" धनपाल ने प्रयत्नपूर्वक अपनी मानसिक उलझन पर पर्दा-सा डालते हुए कहा, "आनन्द का कोई दोष नहीं!"

"आनन्द का कोई दोष नहीं?" दीनानाथ ने जैसे धनपाल के धार्मिक दृष्टिकोण से चिढ़कर कहा, "आनन्द का कोई दोष नहीं मालिक? यह तो झूठ है मालिक, बिल्कुल झूठ! आनन्द के आने से पहले कभी किसी ने आँख उठाकर भी नहीं देखा था आपकी तरफ़, मालिक! आनन्द ने आकर आग लगाई। जब वह नहीं आया था तो गोंड समझदार बैलों के समान हमारे सामने खड़े रहते थे। हम गालियों से उनका स्वागत करते, वे जबान न खोलते। हम उन पर हाथ उठाते, वे चुपचाप सब सह लेते। हम चपत लगाते और वे लोग उफ़ न करते। लेकिन अब तो वह बात नहीं, मालिक! कुछ तो इलाज करो, हमारे अपमान का कुछ तो इलाज करो, मालिक!"

"अच्छा अच्छा, मैंने सब सुन लिया!" धनपाल ने चिढ़कर कहा, "अब तुम जा सकते हो, दीनानाथ!"

कहने को तो धनपाल यह कह गया, पर दीनानाथ की बातों पर विचार करते हुए देर तक उसी मुद्रा में बैठा रहा।

५४

आनन्द के सिर पर गहरा घाव लगा था; कंचन गौरी और रूपी ने उसकी सेवा में कोई बात उठा न रखी थी। आनन्द जैसे सहृदय और सज्जन व्यक्ति पर कोई आक्रमण करने की बात सोच भी सकता है, इस पर रूपी से अधिक कंचन गौरी को आश्चर्य हो रहा था। रूपी यह सोचकर लज्जित थी कि आखिर करंजिया में उसका लामसेना झूलन ही रह गया था जो धनपाल की शह पाकर पाप की दलदल में धँस जाय। आनन्द के तो करंजिया पर बहुत अहसान थे, यह फैसला करना कठिन था कि कला-भारती की स्थापना उसका सबसे बड़ा अहसान है या कपिलधारा से निकाली हुई नहर। अब यदि आनन्द ने लोगों को इस बात के लिए उकसा दिया था कि वे बेगार के रूप में चली आने वाली गुलामी की प्रथा से हमेशा के लिए छुटकारा पा लें तो यह तो कोई जुर्म न था। इसी से बिगड़ कर धनपाल ने झूलन को इस बात के लिए तैयार कर लिया था कि वह आनन्द या सोम में से किसी एक को खत्म कर डाले।

रात के समय झूलन ने आनन्द के सिर पर प्रहार किया था। चुन्नू

मियाँ और सोम ने मिलकर उसे पकड़ लिया तो उसने साफ-साफ बता दिया था कि धनपाल ने उसे भीमकुण्डी बुलाकर इस बात के लिए राजी कर लिया था कि वह किसी तरह आनन्द और सोम में से किसी एक को मिटा डाले, क्योंकि धनपाल का विश्वास था कि एक का अन्त होने पर दूसरा तो वैसे ही दुम दबाकर भाग जायगा। बल्कि धनपाल का संकेत तो यह था कि सोम को खत्म किया जाय, क्योंकि फुलमत के मामले के कारण धनपाल सोम से भी कुछ कम नाराज न था। अब झूलन तो आनन्द से चिड़ा हुआ था, क्योंकि उसका सोलह आने यही विचार था कि वह उसकी रूपी को छीन रहा है।

उसी रात अब्दुल मतीन थानेदार ने झूलन को पकड़कर हवालात में दे दिया। यह खबर हर किसी की जबान पर थी कि उसी रात धनपाल के रुपयों की पोटली चुपके-से अब्दुल मतीन के यहाँ आ पहुँची थी। यह शायद उन्हीं रुपयों की गरमी का परिणाम था कि अब्दुल मतीन ने झूलन के बयान में धनपाल का नाम नहीं आने दिया था, क्योंकि बयान देने से पूर्व थाने में झूलन की पिटाई कराने के बाद थानेदार ने उसे समझा दिया था कि वह उसी अवस्था में बच सकता है जबकि वह धनपाल का नाम बीच में न डाले, और इसी बात पर जोर दे कि वह केवल यह सोचकर चिड़ गया था कि जब वह रूपी का लामसेना है तो रूपी आनन्द से क्यों मिलती है।

कंचन गौरी पर आनन्द की शान्त मुद्रा का सबसे अधिक प्रभाव पड़ा। जब मिसिज़ कासिमी झूलन को बुरा-भला कहती, आनन्द ज़ोर देकर कहता, "कोई आदमी इतना बुरा तो नहीं होता कि हम यह समझ लें कि वह हमेशा के लिए बुरा है, और अब उसके अच्छा होने की कोई सम्भावना नहीं है।"

रूपी सिर झुकाये बैठी रहती, जैसे झूलन के दुष्कर्म के नीचे से अब उसका सिर ऊँचा न उठ सकता हो।

"तुम्हारा तो कोई दोष नहीं, रूपी!" आनन्द उसे पुचकारता, "और

दोष तो झूलन का भी नहीं है।"

कंचन गौरी और रूपी चकित होकर आनन्द की ओर देखने लगतीं।

एक दिन मंडल आनन्द का समाचार पूछने आया तो उसने जोर देकर कहा, "झूलन तो मूर्ख निकला, बड़े राजा!"

मंडल चला गया तो चुन्नू मियाँ ने आकर कहा, "मंडल कह रहा था कि झूलन को उसकी नौकरी के रुपये दे देगा।"

"तो झूलन से रूपी का विवाह नहीं होगा?" कंचन गौरी ने चकित होकर कहा, "बड़े बाबा, यह तो रूपी की इच्छा पर निर्भर है!"

रूपी का सिर ऊपर न उठा।

"रूपी इतनी मूर्ख तो नहीं, बीबी जी!" चुन्नू मियाँ ने कहा, "रूपी कभी एक मुजरिम के साथ विवाह नहीं करेगी।"

आनन्द ने आँख के संकेत से चुन्नू मियाँ को बाहर जाने के लिए कहा!

चुन्नू मियाँ बाहर चला गया तो आनन्द ने सोम से कहा, "तुम डिंडौरी हो आओ, सोम!"

"किस लिए?"

"कोशिश करो कि झूलन छूट जाय; हो सके तो तुम उसकी जमानत दे देना।"

रूपी आनन्द की ओर देखकर मुस्कराई, जैसे कह रही हो—तुम इन्सान नहीं, देवता हो!

५५

"तेरा मन तो झूलन की तरफ से पहले ही फटा-फटा रहता था, रूपी !" फुलमत ने चुटकी ली, "झूलन भी कर्म का खोटा निकला ।"

रूपी ने कुछ उत्तर न दिया; उसके जी में आया कि इस प्रसंग पर मुँह न खोले ।

सनमत बकरी के मेमने के पीछे भाग रही थी; आँगन में रानी बिटिया देख-देखकर किलकारियाँ मार रही थी । फुलमत की आँखों में उल्लास की रश्मियाँ थीं, जैसे कह रही हो—रानी बिटिया तो गृहस्थ का प्रसाद है ! रूपी को भी अपने जैसी देखने की लालसा से उसने गद्गद् कंठ से कहा, "मैं पूछती हूँ, अब तेरा मन कहाँ पर है, रूपी ? झूलन तो अब तेरे हाथ से निकल गया, रूपी ! अब तो काका तुझे झूलन से ब्याहने से रहे ।"

रूपी ने यों घूरकर फुलमत की ओर देखा, जैसे कह रही हो—चुप भी रह् फुलमत !

मेमना मस्तानी अदा से उछल रहा था; कभी वह सनमत के हाथ में

आ जाता, कभी छूटकर निकल भागता। रानी बिटिया की किलकारियाँ जैसे आज बन्द न हो सकती हों। सिर पर दोपहर का सूरज था; बगूलों से होड़ लेने वाली लू चल रही थी। लेकिन बचपन को गरमी की क्या परवाह थी?

"कुछ तो बोल, रूपी!"

"सब सुन रही हूँ।"

"खुलकर ब्याह की बात कर। दूध-पीती बच्ची तो नहीं कि लाज आती है। मैं कहती हूँ तेरा मन कहाँ पर है?"

"तुम तो जानती हो।"

"जानती तो मैं सब हूँ।"

सनमत के उलझे हुए बाल मैले हो रहे थे; रानी बिटिया के बाल ताजे धुले थे, उन्हें तेल भी दिखाया गया था। रानी बिटिया यों किलकारियाँ मार रही थी, जैसे उसकी बाँहों में भी मेमने को पकड़ने की शक्ति हो।

"करंजिया के तो भाग्य जाग उठे," फुलमत ने बेलन पर से कपास के बिनौले अलग करते हुए कहा, "अब करंजिया वालों की जूती जाती है मालगुजार को सलामी करने। नहर के पानी से सिंचाई होने लगी है, सब के घर में अनाज है; फिर कोई क्यों न मालगुजार को ठूँगा दिखाये। वह लगान लेता है तो नजराना कैसे वसूल कर सकता है? अब करंजिया की छाती पर मालगुजार पैर में जूता डालकर नहीं चल सकता। करंजिया का सिर किसने ऊँचा किया? आनन्द बाबू ने!—हाँ तो, रूपी, मैं कहती हूँ, अब मौका है।"

रूपी ने लजाकर सिर झुका लिया।

"यह तो तेरा सौभाग्य है कि आनन्द जी बच गये। सिर पर घाव तो छोटा नहीं आया था; झूलन का कहीं भला नहीं होगा रूपी, जिसने ऐसे देवता पुरुष पर वार किया!"

सनमत को अपनी ही पड़ी थी; मेमने के साथ खेलना उसे कितना प्रिय था। फुलमत ने डाँटकर कहा, "अरी तुझे कुछ पढ़ने-लिखने की भी फिक्र है या नहीं, सनमत? मेमने के साथ फिर खेल लेना। अरी मेमने की कुर्की

तो नहीं हो रही !"

रानी बिटिया डरकर माँ की गोद में चली आई; सनमत पुस्तक खोलकर बैठ गई।

"वह जो कहते है—जैसा खावे अन्न, वैसा उपजे मन ! इस हिसाब से तो तेरा मन ठीक ही होना चाहिए, रूपी !

"मेरे मन को क्या हुआ है ?"

"तुमने वह बोल भी तो सुना होगा, रूपी !—प्रीत न जाने जात कुजात, भूख न जाने बासी भात; नींद न जाने टूटी खाट, प्यास न जाने धोबी घाट ! हाँ तो, जो तेरे मन में है, काका से बोल दे साफ-साफ। मैं कहती हूँ, अब तेरे ब्याह में देर ठीक नहीं।"

एक तरफ रुई गिर रही थी, एक तरफ बिनौले; बेलन की आवाज बचपन की सखियों के वार्तालाप में स्वर भरती रही।

"आज तुझे क्या हो गया, फुलमत !"

"हुआ कुछ नहीं रूपी ! जब उम्र होती है, बात की जाती है। मैं कहती हूँ, तू उस समय ब्याह करायेगी जब उम्र ढल जायगी ?"

"अब और भी कुछ रह गया तो वह भी कह डाल, फुलमत !"

"सुन रूपीः—बिन दरपन के बाँधै पाग, बिना नून के राँधै साग; बिना कंठ के गावै राग, न वह पाग न साग न राग। मैं कहती हूँ कि इसमें चौथी चीज और जोड़ लो—बिन साजन के हिय अनुराग !—हाँ तो साजन के बिना भी कैसा अनुराग ? अब तुझे लाज आती है तो तेरे लिए मैं पूछ देखूँ आनन्द बाबू से ? पर पहले इतना तो बता दे कि तेरा मन कहाँ है ?"

रूपी लाज-लजी-सी बैठी रही, जैसे फुलमत ने उसके मन की बात बूझ ली हो।

५६

जमानत पर रिहा होकर झूलन चकित रह गया; यह तो आज तक नहीं सुना था कि जिस पर हाथ उठाया जाय वही अदालत में पहुँचकर जमानत की अर्जी दे। आनन्द न आया तो सोम आ गया जमानत देने। जेल से बाहर आकर उसे पता चला कि सोम ने उसकी जमानत दी तो उसे जेल के बाहर की हवा लगी। शर्म के मारे उसके पैर नहीं उठ रहे थे। जैसे उसे अब तक विश्वास न आ रहा हो कि सोम ने ही उसकी जमानत दी।

बस निकल चुकी थी। बस का समय भी होता तो भी बस पर बैठने का तो प्रश्न ही नहीं उठता था; गाँठ में एक भी पैसा नहीं था। सोम ने जमानत दी और बस की तरफ लपका। वह चाहता तो झूलन को साथ ले लेता, पर वह उसे शर्मिन्दा नहीं करना चाहता था।

जेल से छूटने की खुशी तो थी ही, पर इससे झूलन के मस्तिष्क पर बड़े जोर का धचका लगा। मैंने ऐसे आदमी को मारना चाहा जिसने करंजिया को मौत के मुँह से बचाया, जिसने करंजिया को नये प्राण दिये। धनपाल

की बातों में आकर मैंने यह पाप कमाया। मुझे तो शर्म के मारे कहीं डूब मरना चाहिए; कहीं और नहीं तो नदिया टोला के पोखर में ही सही। फिर उसे ख्याल आया कि वह तो तैरना जानता है; वह कैसे पोखर में डूबकर आत्महत्या कर सकता है ?

उसे अपने मांसल अंगों में यौवन के उफान पर क्रोध आ रहा था; चिरई का धन चोंच! ठीक तो है, रूपी दसवीं पास कर आई है। अब वह मुझसे कैसे खुश रह सकती है? अच्छा है कि यह अनमेल ब्याह न हो। जोरू टटोले गठरी, माँ टटोले अँतड़ी! उसने सोचा कि इतने वर्ष बीत गये लामसेना बने, माँ जीवित होती तो उसे लामसेना न बनने देती। लामसेना बनकर भी उसे क्या मिला? कहाँ है जोरू जो उसकी गठरी टटोले? अरे रूपी तो अब आनन्द बाबू की गठरी टटोलेगी। उसकी मरजी। मन मरजी की ही तो सारी बात है। तलवार मारे एक बार, एहसान मारे बार-बार! लेकिन अब तो आनन्द बाबू के अहसान तले आ ही गये। जहाँ कोई एक चुटकी आटा नहीं देता किसी को, वहाँ आनन्द बाबू एक मुट्ठी अहसान कर डालते हैं मज़े से।

पतुरिया रूठी, धरम बचा! रूपी मुझसे रूठ गई होगी। क्यों न मैं भी उसका ख्याल छोड़ दूँ? डिंडौरी से चलते-चलते साँझ हो गई थी। अब तो आकाश पर तारे चमक रहे थे, चाँद मुस्करा रहा था। उसे लगा जैसे चाँद-सितारे उसी पर हँस रहे हैं। न वह धनपाल की बातों में आया होता न उसने आनन्द पर हाथ उठाया होता। चार खूँट का एक खेत, कचरी घंनी मतीरा एक—यह चाँद सितारों की बुझौवल तो रूपी अब आनन्द से ही पूछा करेगी मज़े से! मुझ से काहे को पूछेगी? अब तो रूपी आनन्द की हो गई। अब मैं उसे अपनी कैसे समझ सकता हूँ? मन-भर का अह-सान किया है आनन्द बाबू ने मुझ पर। अब आनन्द बाबू की रूपी की ओर आँख उठाकर देखना भी नीच बनने के बराबर है।

उसने चाँद-सितारों की ओर देखकर शपथ ली कि चाहे कुछ हो जाय

वह आनन्द के सामने जाकर क्षमा माँग लेगा; मुकदमा तो खैर अभी चलेगा। जिसने जमानत दिलवाई वह चाहेगा तो मुझे बरी करा देगा।

वह पाँच वर्ष का था जब उसका काका मर गया; दस वर्ष का हुआ तो काकी भी मर गई; अनाथ के लिए भीमकुण्डी में कोई ठौर न थी। इसी-लिए तो मंडल पटेल के यहाँ चला आया था करंजिया में। धनपाल ने उसे भीमकुण्डी के नानस और आदरी का बेटा कहकर ही तो वीरता के लिए उकसाया था। आज उसकी काकी आदरी जीवित होती और उसने किसी पर कातिलाना प्रहार किया होता तो काकी उसके लिए घर का द्वार बन्द कर देती; उसका काका नानस भी शर्म से मुँह छिपा लेता।

यह तो उसने अच्छा किया कि रात से कुछ ही पहले डिंडौरी से चला। भिनसार के पहले करंजिया जा पहुँचेगा। धीरे-धीरे चलना चाहिए। दिन के प्रकाश में तो वह करंजिया में कैसे प्रवेश कर सकता है?

उसने यह भी शपथ ली कि मंडल काका से नौकरी के रुपये वसूल नहीं करेगा; काका रुपया देंगे तो वह कह देगा—ये रुपये आनन्द बाबू की कला-भारती को दे दो काका, मेरी तरफ से! हाँ, हाँ! कुछ प्रायश्चित तो होना ही चाहिए। जिधर गई रूपी उधर गये मेरी नौकरी के रुपये।

मैं अब कभी ब्याह नहीं करूँगा। रूपी भी क्या याद करेगी कि कोई भीमकुण्डी का छोरा उसका लामसेना बना था। आज वह अपराधी है तो क्या हुआ? उसे एक गर्व का अनुभव हुआ, गठे हुए शरीर की रगें तन गईं। सोम का तो ब्याह हो गया, मैं रह गया ठूँठ का ठूँठ!

चाँद-सितारे चमक रहे थे। वह तेज-तेज डग भरता करंजिया की ओर बढ़ा जा रहा था। यह सोचकर कि वह एक अपराधी है और एक प्रकार से उसी आदमी की जमानत पर छूट कर आ रहा है जिस पर उसने वार किया था, उसका सिर झुक गया···अब करंजिया बहुत दूर नहीं रह गया था। उसकी चाल धीमी पड़ गई, जैसे पैरों में किसी ने सीसा भर दिया हो, ठण्डा सीसा—अपराध और शर्मिन्दगी का प्रतीक!

५७

आनन्द बहुत परेशान रहने लगा था; उसका मानसिक सन्तुलन डाँवाडोल हो गया। यह कैसी कसक थी जो उसके अन्तरतम में काँटा-सा चुभोने लगती। वस्तुतः यह वही कसक थी जो उसे मोहेंजोदड़ो छोड़ने से पूर्व अनुभव हुई थी। पैर का चक्कर जोर मार रहा था। अब उसके लिए यहाँ रहना सम्भव न था। यह व्याकुलता उसकी कल्पना में अनदेखे पथ उभारती थी। उसके मस्तिष्क की दहलीज पर नये-नये प्रश्न माथा टेकते। रूपी यहीं रहेगी या कहीं और? मुझे इसकी चिन्ता क्यों हो? मुझे तो अपने ही पथ का ध्यान रहना चाहिए। सोम यहाँ रहेगा या कहीं और? कला-भारती तो चलेगी; सोम इसकी देखभाल नहीं करेगा तो कमेटी तो है; ब्रह्मचारी अचिन्तराम तो हैं जो इसमें सब से अधिक रस ले रहे हैं। अब मैं अपने हाथों से लगाये हुए पौधे का गुलाम होकर भी कैसे रह सकता हूँ?

नारी को वह एक पहेली तो नहीं समझता था, लेकिन यह बात रूपी के सम्मुख कहते तो वह झिझकता था; रूपी किसी हद तक अब भी उसके

लिए पहेली थी। सौन्दर्य के प्रति वह सजग था। सौन्दर्य को एक प्रकार की अग्नि समझता था जो जीवन की गति में वेग लाती है; प्रेम और सौन्दर्य के प्रति उदासीन रहने का तो प्रश्न ही नहीं उठता था। कई बार उसके जी में आया कि रूपी से कहे—प्रेम से तो उड़ने की क्षमता आती है! लेकिन उसके होंठ न हिले। प्रेम को गम्भीर बनाने वाला मस्तिष्क आड़े आ जाता; केवल हृदय होता तो वह रूपी के सम्मुख अपने मन की बात कह डालता।

जीवन में गतिमान वस्तुएँ ही अधिक हैं, वह सोचता, जो वस्तु स्थिर नज़र आती है उसमें भी निरन्तर परिवर्तन हो रहा है। पाताल फोड़कर निकले हुए ऊँचे वृक्षों की ओर देखकर वह मन-ही-मन कहता—तुम आकाश को चूमने का यत्न करते रहो, मैं तो धरती पर खड़ा हूँ, मुझे तो चलना है, एक जगह बँधकर बहुत रह लिया, अब तो यहाँ से जाना होगा। कहाँ जाना होगा? भविष्य का कौनसा पथ मुझे बुला रहा है? इन संघर्ष-शील मनुष्यों को छोड़कर मैं क्यों यहाँ से चल देना चाहता हूँ? इनके संघर्ष में इतने दिन साथ दिया, अभी तो इनका संघर्ष शेष है; फिर मैं इन्हें छोड़कर कहाँ चल देना चाहता हूँ? ये प्रश्न उसकी चेतना में गड्ड-मड्ड हो रहे थे। महाजनों के हथकण्डों के मारे बेचारे किसान कितने परेशान रहते थे; उनकी रास पर ये लोग दाँत लगाये बैठे रहते। लाल पगड़ी वालों का रंग तो कभी फीका नहीं पड़ सकता; कहते हैं, अंग्रेज चला गया, हिन्दुस्तान आज़ाद हो गया। कहाँ आई है आजादी? शायद शहरों में आ गई हो आजादी। करंजिया में तो लाल पगड़ी का राज है, जैसे पहले था; थानेदार अब्दुल मीतन की मूँछें तो पहले से ज्यादा बढ़ गई हैं। धनपाल अफसरों की मदद से बेगार को फिर से इन लोगों पर लादने का यत्न कर रहा है; शायद इन लोगों को लाल पगड़ी के डर से पंचायत का फैसला बदलना पड़े। बेगार फिर शुरू होगी तो बहुत बुरा होगा; इस से तो गुलामी बढ़ जायगी। क्या लाल पगड़ी गरीबों की गरदन पकड़ने के

लिए ही रह गई है? क्या आजाद हिन्दुस्तान में भी मालगुजार किसानों की छाती पर मूँग दलेंगे, मृत्यु का नाच नाचेंगे? ये प्रश्न बड़े विकट थे; उसकी आँखों में कई बार आँसुओं की फुहार-सी उठती, वह अधिक न सोच सकता। एक बात उसके सामने रहती—मुझे यहाँ से शीघ्र ही चल देना चाहिए।

उसने रंजना भाभी को लिखा था "बार एक करंजिया जरूर देख जाओ, भाभी! वह भी हमारे रहते-रहते।" अब देखें रंजना भाभी आती हैं या नहीं। आयें तो ठीक है, न आयें तो भी ठीक है; अब मैं तो अधिक दिन यहाँ नहीं रुक सकता।

एक दिन उसने सुना कि धनपाल ने करंजिया के बहुत-से किसानों के विरुद्ध बेदखली दायर कर दी है। अब उनका अपराध तो यही था कि वे बेगार नहीं दे रहे थे। उसने यह भी तो सुना था कि कुछ दिनों से थानेदार अब्दुल मतीन दुहरी तनख्वाह पर काम कर रहा है, एक तनख्वाह तो सरकार से लेता है, एक तनख्वाह धनपाल से; इसीलिए तो वह बेगार से इन्कार करने वालों पर झूठे इल्जाम थोपकर उन्हें थाने में बुला भेजता है और लोगों की आँख बचाकर गरीबों पर वह पिटाई करता है कि कुछ न पूछिए। थाना क्या गरीबों पर जूते लगाने के लिए ही रह गया है? अब जिनको धनपाल बेदखल कर देगा, उन्हें भी काम तो मिल ही जायगा लाला राम के नर्मदा फार्म में, लेकिन बेचारे अपनी जमीन के लिए वर्षों तक आँसू बहाते रहेंगे। किसान को तो उसी जमीन से प्रेम रहता है। जिस पर वह वर्षों से हल चलाता आया है। वह विचार आते ही उसे भी कला-भारती के प्रति एक आकर्षण प्रतीत हुआ, पर नहीं, वह अब और नहीं रुक सकता। यहाँ से जाना तो आवश्यक है।

रंजना की इतनी प्रतीक्षा इसलिए थी कि आनन्द चाहता था वह उसे अपनी रूपी दिखा सके: वैसे रंजना मेरी अनुपस्थिति में आकर भी तो रूपी को देख सकती है, पर मेरी उपस्थिति में वह यहाँ आ जायें और

रूपी को देखें तो शायद रूपी के सम्मुख वह प्रस्ताव रख सके जो यहाँ दूसरी कोई स्त्री नहीं रख सकी। मिसिज कासिमी ने तो यह फर्ज निभाने की बात भूल कर भी नहीं सोची, न फुलमत को ही इस ओर अपना कर्तव्य निभाने की बात याद आई। अब मैं स्वयं अपने मुँह से भी तो रूपी के सम्मुख यह प्रस्ताव नहीं रख सकता था। रंजना भाभी तो इतनी समझदार हैं कि सारी स्थिति को स्वयं ही भाँप जायँगी। रूपी उतनी पढ़ी-लिखी तो नहीं जितनी मुझे चाहिए, फिर भी गनीमत है; वह ऐसी सुन्दरी तो नहीं जैसे रेशमा है, न उसे सौन्दर्य प्रतियोगिता में रंजना के बाद तीसरा स्थान मिल सकता है, फिर भी गनीमत है। रंजना भाभी जानती हैं कि मुझे सोसाइटी गर्ल नहीं चाहिए, मैं अपनी जीवन-संगिनी को रंगों की तितली बनकर उड़ते देखना नहीं चाहता; न मुझे ऐसी ज्ञान-गोदड़ी चाहिए कि बात-बात में बहस करे और कदम-कदम पर अपनी दलील द्वारा मुझे परास्त कर दे, पछाड़कर नीचे गिरा दे; मैं तो तितली को भी हाथ बाँधता हूँ और ज्ञानगोदड़ी को भी दूर से ही नमस्कार करता हूँ। जीवन-संगिनी हो तो ऐसी जैसी करंजिया को काली मिट्टी है, जिसमें सोना उगता है। इसी काली मिट्टी से उगी है रूपी ? रूपी मुझे बुरा तो नहीं समझती। बड़ी शान्तिप्रिय लड़की है। अहं तो नाम को नहीं; हरजाईपन तो उसे छू भी नहीं गया। अरे अरे ! जिसके मुँह पर ताला लगा हो, जो मेरे सामने भी अपनी ज़बान नहीं खोल सकी इतने वर्षों तक, वह क्या किसी पहरे की मुहताज होगी ? उसमें तो मैं, मेरा व्यक्तित्व उसी तरह फूले फलेगा जैसे करंजिया की काली मिट्टी पर सोना उगता है। अब तो रंजना भाभी को आ ही जाना चाहिए···

उसकी उद्विग्नता अब इस सीमा तक आ पहुँची थी कि रंजना आये न आये, रूपी तक कोई उसकी आवाज पहुँचाये न पहुँचाये, वह अब यहाँ नहीं रुक सकता।

५८

सोम सन्तुष्ट था; फुलमत और रानी बिटिया के प्रति उसके मन में अधिक-से-अधिक आकर्षण था, अब वह भूलकर भी न सोचता कि वह एक अनाथ है। दूसरा सन्तोष यह था कि इस वातावरण में उसकी कला खूब पनप रही है। वह कई बार आनन्द से कह चुका था, "मैं कोई सिकन्दर महान् तो हूँ नहीं कि दुनिया भर को हाथ लगाकर यह सन्तोष पाने के पीछे मरता रहूँ कि मैंने विश्व पर विजय प्राप्त कर ली। मानव जहाँ भी रहता है, वहीं उसका विश्व विराजमान है, क्यों न वह अपने चतुर्दिक ध्यान से देखे और समाज की संघर्षशील शक्तियों में अपनी शक्ति मिला दे? क्यों न वह एक कण में समूची सृष्टि की मुखाकृति पहचाने? जो सुगन्ध विश्व में भटक रही है वह किसी एक फूल को सूँघने से भी तो प्राप्त हो सकती है। ठंडी हवाएँ केवल हिमाच्छादित पर्वत-शिखरों के समीप ही नहीं चलतीं, उनका एक झोंका करंजिया में भी आ पहुँचता है। यह पैर का चक्कर व्यर्थ है, जगह-जगह भटकने की मनोवृत्ति ग़लत है। क्यों न मानव अधिक-से-अधिक गहराई में उतरने की चेष्टा करे?" आनन्द इसके

उत्तर में केवल हँस छोड़ना, उस समय उसके मुख पर अवहेलना की रेखाएँ उभरतीं, जैसे वह कह रहा हो—सोम, अभी तुम बच्चे हो !

समलू जेल से छूटकर आ गया था। आते ही उसने सोम का आभार माना जिसने उसकी फुलमत और सनमत को सँभाल कर रखा; जेल-जीवन की कहानियाँ सुना-सुनाकर वह अपने दामाद का सिर घुमा देता।

एक दिन आनन्द के मन की बात भाँपकर सोम ने कहा, "मंजिल तो एक ही होती है। क्या तुम करंजिया को अपनी मंजिल नहीं समझते ? शायद तुमने रूपी को यह बात अब तक नहीं बताई।"

"रूपी चाहे तो मेरे साथ चल सकती है।"

"अच्छा तो जाते-जाते तुम बाग से फूल तोड़ ले जाना चाहते हो ?"

"तुम तो फूल के पास बैठकर धूनी रमाने वालों में हो ! फूल आखिर कब तक टहनी पर रह सकता है ?"

"यह उपमा ठीक नहीं। मैं कहता हूँ आनन्द, तुम उन लोगों में से मालूम होते हो जिन्हें पुस्तकालय में बैठे-बैठे किसी पुस्तक में कोई चित्र पसन्द आ जाता है और वे आँख बचाकर उस चित्र को फाड़कर ले जाते हैं और यह भूल जाते हैं कि उनके बाद आने वाले इस पुस्तक में उस चित्र को न पाकर कितने उदास हो जायँगे।"

"तो तुमने करंजिया को ही अपनी मंजिल समझ लिया ? मैं इसे इन्सानों का म्यूजियम समझता हूँ, एक जीवित संस्कृति का म्यूजियम ! इस म्यूजियम की वह जीवित मूर्ति मेरे साथ चल पड़े तो मेरा पथ सचमुच प्रशस्त हो जाय !"

"आखिर तुम एक क्यूरेटर के लड़के हो, आनन्द। यह बात तुम्हारे ख़मीर में है। क्यूरेटर को पत्थर और धातु की मूर्तियाँ म्यूजियम में सजाकर रखने का शौक रहता है, तुम भी तो अपने ड्राइंग रूम में करंजिया की इस मूर्ति की नुमाइश किया करोगे।"

आनन्द ने मुस्करा कर सोम की ओर देखा।

"लेकिन तुमने कभी यह भी सोचा है, आनन्द," सोम ने पलटकर कहा, "कि अपने वातावरण से अलग होकर यह मूर्ति कितनी उदास हो जायगी, इसके मुख पर विषाद की रेखाएँ उभरेंगी; उस समय तुम इस मूर्ति को प्रसन्न नहीं कर सकोगे !"

करंजिया के वातावरण में सोम को नव-जीवन की स्फूर्ति का अनुभव होता; प्रकृति का स्निग्ध अंचल कितना समीप था, मानव का संघर्ष भी दूर नहीं था, यह संघर्ष कलाकार की तूलिका को भी प्रिय था। संघर्ष के चित्र ऊबड़-खाबड़ जीवन के चित्र थे; इनकी रेखाएँ भी मोटी थीं। इनमें अपना ही आकर्षण था; यों लगता था कि संघर्ष ने कलाकार की तूलिका को जो प्रेरणा दी है वह अब पीछे नहीं पलट सकती। कला-भारती में नये-नये बच्चे आते, उनकी तूलिका द्वारा अंकित चित्र कला-भारती के कला-गुरु को भी प्रेरणा देते, जैसे अमराई में कोयल की कुहु ध्वनि वातावरण में रची हुई सुगन्ध को लाँघकर आती है। इस वातावरण से भाग जाने में कलाकार को जीवन का कोई नया अर्थ प्रतीत नहीं होता था। वह तो आनन्द पर मन-ही-मन हँस देता। कितना विचित्र प्राणी है आनन्द ! अब यहाँ से भागने की सोच रहा है। ऐसे आदमी को तो कहीं भी जीवन की तृप्ति नहीं मिलती जो गहराई में उतरने से कतराता है, जो जीवन में खप नहीं जाना चाहता, जो इसे ऊपर-ऊपर से देखकर केवल नेता बनने की धुन में मस्त रहता है। यहाँ कौन किसका नेता है ? संघर्ष में तो जनता स्वयं अपनी नेता बनती है। जनता को कोई घुड़सवार नहीं चाहिए। अब तो जनता अपने नेता के नीचे घोड़ा बनने से रही; जैसे घोड़ा घुड़सवार को नीचे गिरा देता है, जनता भी नेता को वह पटखनी देती है कि बेटा जी याद रखें कि हाँ किसी पर सवारी की थी। यह सोचकर वह मन-ही-मन आनन्द पर कहकहा लगाता। करंजिया उसे प्रिय था, यहाँ उसकी फुलमत थी जो तूलिका से काम लेना सीख रही थी, यहाँ रानी बिटिया थी जो एक दिन कला-भारती का नाम उज्ज्वल करेगी !

५६

कुलदीप और रंजना नई कार पर करंजिया पहुँचे; उनका ड्राइवर था हफ़ीज़ कलन्दर, जो अब पहचाना ही नहीं जाता था। जाड़ा शुरू हुए बहुत दिन नहीं हुए थे। आनन्द खुश था कि रंजना भाभी ने यहाँ आने का वचन दिया था, सो पूरा कर दिखाया।

जिस दिन मेहमान आये, कला-भारती के आँगन से हटकर, पूर्वी द्वार के बाहर, अलाव जलाया गया; रंजना के कहकहे फुलझड़ियाँ छोड़ते रहे। सोम को लगा जैसे आज ही दशहरा है, भले ही रंजना भाभी दशहरे से दस-बारह दिन बाद पहुँचीं।

"आप लोगों ने बहुत काम कर डाला," कुलदीप ने हंसकर कहा, "मैं तो ठेके लेता रह गया, काम तो आप लोगों ने किया।"

"कला-भारती से भी बड़ा काम तो मेरे विचार में कपिलधारा से नहर निकाल कर किया गया," रंजना ने चुटकी ली, "ऐसे कार्यों के पीछे या तो सरकार का फंड हो या एक विचार।"

"खाली विचार भी तो काम नहीं देता, भाभी!" आनन्द ने अपने

कार्य पर गर्व का अनुभव करते हुए कहा, "यह कार्य जनता के सहयोग से ही सम्भव हो सका। भला हो भीमसेन का जिसकी कहानी से इस कार्य में असीम प्रेरणा प्राप्त की गई।

"नहर निकालने से भी बड़ा कार्य रहा सोम का विवाह।" रंजना ने चुटकी ली, "फुलमत कहाँ रह गई?"

"फुलमत रानी बिटिया में उलझी होगी, आनन्द ने हंसकर कहा, "उनसे कल मिलिएगा।"

"इस लिहाज से सोम आगे निकल गया!" कुलदीप ने व्यंग्य कसा, "आनन्द पीछे रह गया।"

अलाव की गीली लकड़ियाँ चटख रहीं थीं। लकड़ियाँ चटखने की आवाज में कहकहे खोये जा रहे थे। रंजना वैसी ही मालूम हो रही थी जैसी उस समय थी जब आनन्द और सोम करंजिया आने से पूर्व पेंड्रा रोड में उनके यहाँ ठहरे थे। कुछ स्त्रियाँ ऐसी भी होती हैं जिन्हें आयु बहुत कम बदल पाती है; उन्हीं में रंजना की गणना की जा सकती थी। उसकी आँखों में चमक थी; प्रसन्न मुख, बात करते समय फूल झड़ने का अन्दाज, आवाज़ में घुंघरू की झंकार। आनन्द को लगा जैसे कल की बात हो जब वह मोहेंजोदड़ो से पेंड्रा रोड़ पहुँचा था।

कुलदीप के मन पर पेंड्रा रोड का चित्र ही अधिक गहरा अंकित था। उसने कहा, "पेंड्रा रोड में जो रौनक है, यहाँ कहाँ है? वहाँ बहुत अच्छा मौसम रहता है, न ज्यादा सरदी पड़ती है, न ज्यादा गरमी। यहाँ तो जंगल के अंचल के कारण कड़ाके का जाड़ा पड़ता है।"

"लेकिन मुझे यह जगह अच्छी लगी।" रंजना ने जोर देकर कहा।

"अबके ठेके में भी हमें खासी बचत हुई," कुलदीप ने अपनी ही डींग मारते हुए कहा, "देश आजाद हो गया; अंग्रेज तो चले गये, रह गये देसी अफ़सर। यह हमारा सौभाग्य रहा कि हमारे मिलने-जुलने वाले अफ़सरों की तबदीलियाँ नहीं हुईं।"

"आप की जेब गरम रहती है तो इसीलिए कि रंजना भाभी बड़ी भाग्यवती महिला हैं!" सोम ने चुटकी ली।

"तुम्हारी फुलमत भी तो कम भाग्यवती न होगी, सोम!" रंजना ने हंसी की फुलझड़ी-सी छोड़ते हुए कहा, "खैर इनके कहने का दूसरा मतलब था। ये कहना चाहते थे कि अंग्रेज़ के चले जाने से भी रिश्वत का बाज़ार कहीं नहीं गया; अफ़सरों से मिलकर जैसे पहले गुलाम हिन्दुस्तान में काम होता था वैसे ही आज़ाद हिन्दुस्तान में भी चलता है।"

"बदलता बदलता बदलेगा हमारा देश!" आनन्द ने गम्भीर होकर कहा, "आज़ादी के आते ही कोई जादू की छड़ी तो नहीं फेरी जा सकती, भाभी! दूसरा प्रश्न तो असूलों का है, मेरा मतलब है किन असूलों पर मुल्क की हुकूमत का ढाँचा खड़ा किया जाता है; यदि ढाँचा वही रहता है जो गुलाम हिन्दुस्तान का था तब तो ज्यादा अन्तर की आशा रखना व्यर्थ होगा। लेकिन, जैसा कि हमारे देश के स्वतन्त्रता-संघर्ष के इतिहास से स्पष्ट हो जाता है, अभी तक हम एक प्रकार के अवस्थान्तर युग से गुज़र रहे हैं और यह आशा की जा सकती है कि जनता अपने उत्तरदायित्व को अधिक-से-अधिक समझेगी और हमारी सरकार अधिक-से-अधिक जनवादी दृष्टिकोण को अपनायेगी—एक ऐसा दृष्टिकोण जो निर्धन और धनी वर्गों के बीच की खाई को पाटते हुए देश के जीवन-स्तर को ऊँचा करे; चोर बाज़ार को बन्द किया जाय, रिशवत और लूट-खसोट का भण्डा-फोड़ हो, किसानों को मालगुज़ारों की गुलामी से मुक्त किया जाय, बेगार आदि के विरुद्ध सारे देश में आन्दोलन चले जैसे यहाँ भी चल रहा है; शिक्षा पर अधिक-से-अधिक खर्च किया जाय—तब बात बन सकती है।"

"आपने तो पूरा भाषण दे डाला, आनन्द!" रंजना ने चुटकी ली।

अलाव पर नई लकड़ियाँ डाली जा रही थीं, लकड़ियाँ चटख रही थीं, जैसे लकड़ियाँ चटखने की आवाज़ भी जीवन के नये मूल्यों की रूपरेखा प्रस्तुत कर रही हो!

६०

चार हल से कम का किसान भी कोई किसान है?—यह था लालाराम का तकिया कलाम; इसकी पुष्टि उसने रंजना और रूपी के सम्मुख भी आवश्यक समझी। उस दिन सवेरे-सवेरे रूपी भी आ गई थी; कुलदीप, रंजना और आनन्द उन्हें साथ लेकर करंजिया का नर्मदा फ़ार्म दिखाने के लिए पहुँचे तो लालाराम ने अनुभवी अखाड़ेबाज के लहजे में कहा, "सयानों का बोल है :

दस हल राव आठ हल राना, चार हलों का बड़ा किसाना।
दो हल खेत एक हल बारी, एक बैल से भली कुदारी॥

कहिए, आनन्द जी, यह बोल मिथ्या तो नहीं हो सकता।"

"मिथ्या कैसे होगी यह चौपाई," आनन्द ने हँसकर कहा, "आपने तो इसकी पच्चीस गुना सच्चाई सिद्ध कर दिखाई।"

नर्मदा फ़ार्म सौ हल का फ़ार्म था। लालाराम की प्रशंसा करते हुए आनन्द ने कहा, "भाभी, कपिलधारा से नहर निकालने का विचार लालाराम को ही आया था; अब नर्मदा फ़ार्म की स्थापना का श्रेय भी लालाराम

को ही प्राप्त है।

"आनन्द जी, आप ही तो मेरे जीवन में परिवर्तन लाये। आप यहाँ न आये होते तो मैं पहले की तरह शराब का ठेकेदार ही रहता; अब आपने ठेकेदारी छुड़वा दी तो कुछ तो करना था पेट का धन्धा।"

"खेती ही उत्तम है, लालाराम जी। इसीलिए कहा है—उत्तम खेती मध्यम बान!" आनन्द ने ज़ोर से कहा।

"हमें भी तो मध्यम समझिए, ठेकेदारी खेती से नीचे ही रहती है।" कुलदीप ने दबे लहजे में कहा, "हमें भी अपने साथ किसान बना लें लालाराम जी।"

"आप आ जाइए, यहाँ तो सब कार्य बराबर के साझे में किया जाता है।"

"लालाराम जी ठीक कह रहे हैं, कुलदीप जी," आनन्द ने नर्मदा फार्म की रूप-रेखा बताते हुए कहा, "दस हल की जमीन तो लालाराम की थी; नब्बे हल की जमीन वाले चालीस किसानों को उसने अपने साथ सम्मिलित कर लिया और उनसे कहा—हम बराबर कार्य करेंगे, बराबर मेहनत का फल लेंगे।"

"घाटे में तो काका, तुम ही रहे," रूपी ने लालाराम से कहा, "औरों का लाभ हुआ।"

"औरों का लाभ भी मेरा लाभ है, रूपी!" लालाराम ने आँखों के कोनों में हँसी समेट कर कहा, "सब समझ लेने की बात है, कहीं से तो काम शुरू करना होता है!"

"मेहमान बाबू भी तो कहते हैं काका, कि अमीर-गरीब के बीच की हदें मिटाये बिना दुनिया आगे नहीं बढ़ सकती!" रूपी ने लालाराम के समीप होकर कहा, "मेहमान बाबू ने तो कहा ही था काका, तुमने करके दिखा दिया।

"नर्मदा फ़ार्म के पीछे आनन्द जी की प्रेरणा ही काम कर रही है,

रूपी ! इनके मुँह पर प्रशंसा करते मुझे कोई संकोच नहीं होता, सच की प्रशंसा में काहे का डर ?"

लालाराम ने पहले डेरी फ़ार्म दिखाया। यहाँ अच्छी-से-अच्छी नस्ल की पचास गायें उपलब्ध की गई थीं। रंजना और रूपी ने प्रत्येक गाय के समीप जाकर उसकी आँखों में झाँकने का यत्न किया।

एकसाथ बहुत से हल चल रहे थे; कुछ बैल अस्वस्थ होने के कारण कुछ हल काम में नहीं लाये जा सके थे। प्रत्येक हल के पास जाकर आनन्द ने मेहमानों को नर्मदा फ़ार्म के किसानों से मिलाया। जब रंजना को पता चला कि मालगुज़ार ने नर्मदा फ़ार्म के साझेदारों को अलग करने की नीयत से एड़ी-चोटी का ज़ोर लगा दिया तो उसे मालगुज़ार पर बहुत क्रोध आया। इसके बाद उसे बताया गया कि इस काम में सफल होने की खातिर धनपाल ने यहाँ तक कह दिया कि यदि ये किसान नर्मदा फ़ार्म से मुँह मोड़ लें तो वह उनके लगान में भी थोड़ी कमी करने को तैयार है। यह सुनकर रंजना बोली, "बड़ा धूर्त्त है आप लोगों का मालगुज़ार !"

"धूर्त्त न होता तो मुझ पर झूठा इलज़ाम लगाकर मुझे जेल में कैसे पहुँचा देता ?" समलू ने आगे आकर कहा; और जब उसने पूरी कहानी सुनाई कि किस तरह भीमकुण्डी के अनाज डिपो में उसकी मुश्कें कसकर मुन्शी दीनानाथ और उसके दो गुण्डे उसे मालगुज़ार की कोठी में उठा ले गये और किस तरह उसकी कमर के गिर्द सोने के गहनों की पोटली बाँधकर उसे चोरी के इलज़ाम में पकड़ा दिया तो रंजना बोली, "ऐसे चण्डाल अब इस धरती पर कुछ ही दिनों के मेहमान हैं !"

"हम उन्हें भी अपने जैसा बनायेंगे।" आनन्द ने ज़ोर देकर कहा,

"चण्डालों को कोई इन्सान नहीं बना सकता।" समलू ने क्रोध में विष घोलते हुए कहा, "मैं कहता हूँ मालगुज़ार का कहीं भला न हो जिसने एक निरदोस पर झूठा दोस लगाया। अब मालगुज़ार को भी कोई जेल में डलवा दे तो मेरा मन राजी हो जाय।"

"समलू का लहू खौल रहा है !" लालाराम ने कहा, "मालगुज़ार के उपद्रव तो बन्द होते नज़र नहीं आते। अब वह बेदखली दायर कर रहा है; उसका मन तो तब खुश हो जब हम भूखे मर जायँ।"

"अब कोई मालगुज़ार किसी को ज़मीन से बेदखल नहीं करा सकेगा।" कुलदीप ने हँसकर कहा, "आखिर हिन्दुस्तान आज़ाद हो चुका है, आज़ादी का कुछ तो लाभ होना ही था, लालाराम जी !"

"हम तो तब आज़ादी मानें जब मालगुज़ारी टूट जाय।"

"वह तो अब टूटी कि टूटी !" रूपी ने हँसकर कहा, "मेहमान बाबू तो कहते हैं कि ज्यादा दिन नहीं लगेंगे, मेरा मन कहता है कि अभी इसमें देर है।"

"मुझे तो यह जगह बहुत अच्छी लगी," रंजना ने हँसकर कहा।

"तुम चाहती हो कि हम भी यहीं आ रहें ?" कुलदीप ने चुटकी ली।

"आ जाइए," लालाराम ने गद्‌गद कंठ से कहा, "इस नर्मदा फ़ार्म को अपना ही फ़ार्म समझिए।"

"पर आनन्द तो करंजिया से जा रहा है ?" रंजना ने ठंडी साँस भरकर कहा, "वह यहाँ रहता तो हम ज़रूर यहाँ आ जाते।"

"हम आनन्द जी को नहीं जाने देंगे।" लालाराम ने अर्थपूर्ण दृष्टि से आनन्द की ओर देखते हुए कहा, "हमें छोड़कर कहाँ जा सकते हैं आनन्द जी ! अभी तो करंजिया का काम शुरू ही हुआ है !"

"जो काम शुरू होता है, खत्म भी जरूर होता है !" रंजना ने रूपी की ओर देखकर कहा, "तुम क्यों उदास हो रही हो, रूपी ? क्या तुम्हें भी आनन्द के यहाँ से चले जाने का उतना ही रंज होगा ?"

अब वे चलते-चलते फार्म के पश्चिमी सिरे पर पहुँच चुके थे जहाँ खड़े होकर लालाराम ने कहा, "आनन्द जी कहीं नहीं जा सकते; आनन्द जी तो करंजिया के भीमसेन हैं !"

६१

कार्यक्रम बन चुका था। आनन्द ही करंजिया से चलने के लिए सबसे अधिक उत्सुक था। सोम ने साफ़ इन्कार कर दिया; फुंलमत फिर भी कहती रही, "हम भी चलते तो अच्छा था।" लेकिन सोम न माना।

"सोम, जब तुम आये थे तो तुम दोनों की मंज़िल एक थी," रंजना ने आग्रह करते हुए कहा, "अब तुम लोगों की मंज़िल अलग-अलग कैसे हो गई?"

"भाभी, तुम यहाँ ग़लती कर रही हो; मेरी मंज़िल तो वही है और वही रहेगी भी।" सोम ने हँसकर कहा।

"मंज़िल तो मेरी भी वही है!" आनन्द का स्वर गम्भीर था, "आदिवासियों का ध्यान मुझे पहले से भी अधिक है, पर आदिवासी केवल करंजिया में ही तो नहीं बसते।"

रंजना कुछ न बोली, पर मुस्कान ने उसके मुख की आभा को और भी बढ़ा दिया था। फिर उसने कहा, "आनन्द तुम्हारे जैसा आदमी तो मैंने

कभी नहीं देखा। ये लोग हैं कि तुम्हारी प्रशंसा करते थकते नहीं। मैं तो कल नर्मदा फ़ार्म में लालाराम और रूपी के मुख पर तुम्हारे जाने की खबर सुनकर उदासी की रेखाएँ देखकर चकित रह गई; समलू तुम्हारी कितनी प्रशंसा कर रहा था, और रूपी भी तो कह रही थी कि हम मेहमान बाबू को जाने न देंगे। मैं तो समझती हूँ कि करंजिया ही तुम्हारी कर्मभूमि है। मैंने तो तुम्हें कुछ दिन के लिए पेंड्रा रोड आने का निमन्त्रण दिया था, और तुमने न जाने कैसे करंजिया को हमेशा के लिए छोड़ने की सोच ली।"

"यह तो मैं बहुत दिनों से सोच रहा था, भाभी!" आनन्द ने अपना दृष्टिकोण प्रस्तुत करते हुए कहा, "मेरी कर्मभूमि करंजिया तक कैसे सीमित रह सकती है? मैं आसाम जाने का कार्यक्रम कभी नहीं छोड़ सकता। वहाँ भी आदिवासी मेरी बाट जोह रहे हैं; अपनी उस कर्मभूमि में भी मैं अकाल के चिह्न हमेशा के लिए मिटा दूँगा।"

"तुम तो बम्बई जाने की सोच रहे थे, आनन्द!" सोम ने चकित होकर कहा।

"बम्बई में मुझे कोई विशेष कार्य तो नहीं है," आनन्द ने चाय का कप उठाते हुए कहा, "आदिवासियों से सम्बन्धित मेरी दो पुस्तकें छप रही हैं बम्बई में, सोचता हूँ उन्हें निकलवाकर ही आसाम जाऊँ।"

"हफ़ीज़ कलन्दर ने पास आकर कहा, "तो सामान रखना शुरू करूँ, आनन्द बाबू साहब?"

"हाँ हाँ!" आनन्द ने किसी को कुछ कहने का अवसर न देते हुए कहा।

आनन्द ने दूर से चली आ रही भीड़ को देखा; एक क्षण के लिए उसका मन डगमगा गया। लेकिन उसने अपना पथ निश्चित कर लिया था। भीड़ पास आती गई। अब तो सोम, कुलदीप और रंजना की आँखें भी भीड़ की ओर उठ गईं।

सबसे आगे लालाराम और रामबिहारी लाल आ रहे थे, उनके पीछे

मंडल और फिर सारा करंजिया। आनन्द की आँखें जैसे चारों ओर घूम गईं और वह बेचैन हो गया। इस भीड़ में उसे रूपी का चेहरा कहीं नज़र न आया। उसे लगा कि जब से भूलन ने उस पर आक्रमण किया था, रूपी उसके सामने अधिक न आती थी, और जिस दिन भूलन जमानत पर छूट-कर उससे क्षमा माँगने आया, रूपी की आँखें जैसे उससे कह रही थीं—मैं जानती हूँ, तुम इसे क्षमा कर दोगे, आनन्द! और उसने उन आँखों का भाव समझकर भूलन को क्षमा कर दिया था। उस समय रूपी की आँखों से जैसे आँसुओं का झरना बह निकला था। लालाराम ने आगे आकर कहा, "सबकी यही राय है कि आप आज न जायँ!"

"जाना ही ठहरा तो आज और कल में क्या अन्तर है!" आनन्द ने लालाराम के आग्रह को टालते हुए कहा।

"हमें आनन्द जी के कार्यक्रम में बाधा तो नहीं डालनी चाहिए!" रामबिहारी लाल ने ऊपर से सहानुभूति दिखाई।

"करंजिया के काम को आप अधूरा ही छोड़े जा रहे हैं, आनन्द जी!" ब्रह्मचारी अचिन्तराम ने आर्द्र स्वर में कहा, "आपकी अनुपस्थिति में कला-भारती मुरझा जायगी।"

"कला-भारती के प्राण तो आप ही हैं ब्रह्मचारी जी, आपके साथ रामरत्न और सरदारीलाल भी हाथ बटायेंगे। आप लोगों को यह सुनकर खुशी होगी कि सोम जी यहीं रहेंगे और मैं जानता हूँ कि आप लोग उन्हें पहले के समान मेरा ही रूप समझते रहेंगे।"

आनन्द ने एक-एक व्यक्ति से स्नेहपूर्वक विदा ली। मंडल से विदा लेते हुए तो उसकी आँखें भीग गईं, इतना स्नेही व्यक्ति कहाँ मिलेगा? फिर उससे रहा न गया, उसने पूछ ही लिया, "रूपी कहाँ है, काका?"

"आती ही होगी, बड़े राजा," मंडल ने आर्द्र स्वर में कहा, "वह भी अपना सामान बाँध रही थी।"

"सामान बाँध रही थी?" आनन्द ने उत्सुकता से कहा।

"उसने कल मुझसे पूछा कि काका, मैं भी चली जाऊँ मेहमान बाबू के साथ; और बड़े राजा, हमारे में कन्या की बात कभी टाली नहीं जाती और रूपी तो अपना भला-बुरा आप समझती है।"

"काका, मैं भी तुमसे यही पूछने वाला था!"

"झूलन को जब आपने क्षमा कर दिया तो मैंने भी उसे क्षमा कर दिया, बड़े राजा! झूलन को रूपी ने भी क्षमा कर दिया और वह यहाँ से चला गया।"

हफ़ीज कलन्दर ने आकर कहा, "सामान सब रखा जा चुका है और रूपी बिटिया का सामान भी रख दिया है।"

"रूपी कहाँ है?" आनन्द ने चारों ओर देखकर पूछा।

"वह फुलमत के पास होगी!" मंडल ने अन्दाज लगाते हुए कहा।

आनन्द कार के समीप पहुँचा तो उसने देखा कि रूपी अगली सीट पर चुन्नू मियाँ की बगल में बैठी है और फुलमत उसके पास खड़ी आँसू-भरी आँखों से उसकी ओर देख रही है।

इतने में रंजना और कुलदीप भी आकर पिछली सीटों पर बैठ गये।

सब लोग खामोश खड़े थे; उनकी आँखें खोई-खोई-सी थीं, जैसे उनका सर्वस्व लुटा जा रहा हो। एक ओर सोम और फुलमत खड़े थे; सोम की बाँहों में रानी बिटिया किलकारियाँ मार रही थी, जैसे उसे कोई ग़म न हो। रूपी ने कार से उतरकर अपनी माँ से विदा ली और फिर मंडल के पैर छूकर बोली, "काका, हो सका तो मैं जल्दी ही लौट आऊँगी, मेरी फिक्र न करना।"

सबके चेहरे उदास थे। आनन्द खुश था। उसका पथ उसके सामने था।

रूपी के कार में बैठते ही हफ़ीज कलन्दर ने कार स्टार्ट कर दी। तभी दूर से एक आदमी दौड़ता हुआ आया और पास आकर बोला, "कासिमी साहब कह गये थे कि वे कबीर चबूतरा में मिलेंगे।"

आनन्द और रूपी ने हाथ उठाकर करंजिया वालों से विदा ली। और कार चल पड़ी।

६२

करंजिया की सीमा से बाहर निकलते ही रूपी ने मन-ही-मन अपनी जन्मभूमि को प्रणाम किया। उसे याद आया कि आनन्द ने ही उसे सबसे पहले बताया था कि संसार में दो वस्तुएँ ही महान् होती हैं, एक अपनी माँ, एक अपनी जन्मभूमि। आज उसने माँ की आँखों में आँसू देखे थे, उसे लगा कि वह जन्मभूमि की अवहेलना करके उसे भी उदास छोड़े जा रही है।

सामने जंगल का अंचल कोहरे में लिपटा हुआ था। रूपी ने पीछे दृष्टि डालकर देखा, करंजिया को भी कोहरे ने अपने अंचल में ले लिया था : उसका करंजिया, उसकी माँ, उसका काका, उसकी फुलमत और सब सहेलियाँ—सब पीछे छूट गई थीं। उसके अन्तरतम की कोमल भावनाएँ भविष्य की ओर अग्रसर हो रही थीं; अनेक दिनों का देखा हुआ स्वप्न पूरा हुआ चाहता था, इससे तो वह खुश थी, एक दिन उसने अपने घर के बरामदे में बैठे-बैठे सोचा था कि क्या वह इस सीमित-से दायरे से कभी बाहर भी जा सकेगी और आज वह सचमुच सपने की डगर पर चल निकली

थी। कार के पहिये उसे उड़ाये लिए जा रहे थे; अब तो जगतपुर पीछे रह गया था, कार जंगल से होती हुई कबीर चबूतरा की ओर जा रही थी।

पिछली सीट की ओर रूपी का बिल्कुल ध्यान नहीं था; अब तो वह करंजिया के बारे में भी कुछ नहीं सोचना चाहती थी। जंगल के वृक्षों की ओर देखते हुए उसे लगा जैसे वह उन्हें अन्तिम बार देख रही है। यह फूलों का मौसम नहीं था; जाड़े में शाल के श्वेत फूल कहाँ थे; सेमल के लाल फूल और अमलतास के पीले सुनहरी फूल भी कहाँ धरे थे, लेकिन जैसे जंगल के पेड़ कह रहे हों—फूलों का मौसम भी आयगा!

कार की गति धीमी होती गई; एकदम कार रुकी तो रूपी ने देखा कि वे कबीर चबूतरा के डाकबंगले के सामने आ पहुँचे हैं। कासिमी साहब तो रूपी को देखकर खामोश रहे, पर बेगम कासिमी ने छूटते ही पूछ लिया, "रूपी, तुम यहाँ कहाँ ?"

"जहाँ दूल्हा वहीं दुलहन!" रंजना ने चुटकी ली।

रूपी ने सिर झुका लिया। उसे याद आया कि जब उसने अगले ही रोज करंजिया हस्पताल की नर्स कंचन गौरी से कहा था कि वह आनन्द के साथ जायगी और कंचन गौरी ने चकित होकर पूछ लिया था कि तुम किस रूप में जाओगी तो उसने उस समय भी इसी प्रकार सिर झुका लिया था।

दोपहर के खाने के बाद वे फिर यात्रा के लिये तैयार हो गये। कासिमी साहब ने तो बहुत जोर दिया कि आज रात के लिए यहीं रुक जाइए, पर आनन्द तो आज ही पेंड्रा रोड पहुँच जाना चाहता था।

"जंगल का रंग बहार में दूसरा ही होता है," हफ़ीज़ कलन्दर ने हँसकर कहा, "जब आप आये थे, आनन्द बाबू साहब, तो बहार का मौसम था।

"अल्ला पाक की दुआ से फिर बहार आयगी!" चुन्नू मियाँ ने कहा।

"और फिर आनन्द बाबू करंजिया आयेंगे।" कुलदीप ने हँसी की फुलझड़ी छोड़ी।

इस पर जोर का कहकहा पड़ा; रंजना तो हँसते-हँसते लोट-पोट हो गई। रूपी की अन्तरात्मा काँप उठी और उसने अपने मन को दलासा देते हुए कहा—मैं तो जरूर आऊँगी अपने करंजिया में!

"अगली बहार में तो मैं आसाम की यात्रा करने वाला हूँ," आनन्द ने अपने कार्यक्रम पर ज़ोर दिया, "आसाम मेरी राह देख रहा है, जैसे करंजिया मेरी राह देख रहा था!"

"अपने सोन काजल को मत भूल जाइएगा, आनन्द बाबू साहब!" हफ़ीज़ कलन्दर ने अपनी स्मृति से पर्दा उठाते हुए कहा।

"कौन-सा सोन काजल?" रंजना जैसे चौंक उठी।

"करंजिया की वादी के लिए आनन्द बाबू साहब ने यही नाम तजवीज किया था, बीबी जी! यह उस दिन की बात है जब उन्होंने पहली बार जंगल पार करके जगतपुर के समीप से करंजिया की वादी का नजारा देखा था। कहते थे यहाँ सूरज का सोना भी है और उस पर लम्बे सायों का काजल भी!"

"यह तो बहुत ही सुन्दर कल्पना है!" रंजना ने हँसकर कहा, "ऐसी बात तो कोई कवि ही कह सकता है।"

"ऐसे-ऐसे कई सोन काजल आयँगे मेरे रास्ते में!" आनन्द ने गम्भीर होकर कहा।

रूपी खामोश बैठी रही। जंगल उसके मन पर गहरी छाप लगा रहा था, जैसे एक-एक वृक्ष उसे कह रहा हो—शीघ्र लौटकर आना, हमें भूल मत जाना! यह जंगल उसका जाना-पहचाना जंगल था; जब वह जबलपुर में पढ़ती थी, अपने स्कूल की लड़कियों के साथ कई बार इस जंगल में आई थी। उसे याद था कि जबलपुर के फादर आर्चर को यह जंगल बहुत पसन्द था और वे जबलपुर में बैठे-बैठे इस जंगल में आने के लिए उत्सुक हो उठते थे; उन्होंने इस जंगल के सम्बन्ध में एक पुस्तक भी लिखी थी जिसमें कुछ फोटोग्राफ तो संसार की सर्वोत्तम फोटोग्राफी के नमूने कहे जा

सकते थे।

कार तेज़ी से जंगल पार कर रही थी।

"हफ़ीज कलन्दर, तुम्हें वे दिन तो याद होंगे जब तुम बैलगाड़ी चलाया करते थे," चुन्नू मियाँ ने कहा, "जब तीन दिन में तेंतीस मील का सफ़र करते थे।"

"वे दिन मुझे खूब याद हैं, चुन्नू मियाँ!"

"मुझे तो लगता है कि यह कल की बात है, हफ़ीज कलन्दर!"

"दुनिया बहुत तेज-तेज डग भर रही है," आनन्द ने कहा, "जबलपुर से करंजिया को पक्की सड़क से मिला दिया गया, अब यह तेंतीस मील की पक्की सड़क भी बन जाय तो करंजिया पेंड्रा रोड से मिल जाय; सड़क तो बहुत जरूरी है, तरक्की की गाड़ी तो सड़क पर ही चल सकती है।"

"बैलगाड़ी से तो कार ही अच्छी है," चुन्नू मियाँ ने चुटकी ली, "मोहेंजोदड़ो की बैलगाड़ी हो या पेंड्रा रोड की बैलगाड़ी, उनमें तो बहुत समय बरबाद होता है; यह जमाना तो कार का है। हमारी कार को ही लो, कैसे उड़ी चली जा रही है।"

"मतलब तो पहियों के चलने से है," आनन्द ने अपना दृष्टिकोण स्पष्ट करते हुए कहा, "पहिये तेज़ चलने चाहिएँ, यह तो मैं मानता हूँ।"

रूपी कुछ न बोली—पहिये उड़े जा रहे थे, करंजिया बहुत पीछे छूट गया था।

रंजना ने रूपी को खामोश देखकर कहा, "आनन्द तुम्हारी दुलहन बोलती क्यों नहीं? बातूनी दूल्हे की दुलहिन को कुछ तो बोलना चाहिए!"

६३

उनके विवाह का प्रस्ताव रंजना भाभी ने ही रखा था; उनके पेंड्रा-रोड पहुँचने से तीसरे दिन ही विवाह की तिथि निश्चित हो गई। करंजिया कार भेजकर रूपी के काका और काकी को बुला लिया गया था; सोम और फुलमत भी आ गये थे। तार देकर आनन्द के पिता जी को भी बुला लिया गया था, जो देश के विभाजन के बाद मोहेंजोदड़ो से नई दिल्ली के नैशनल म्यूजियम में चले आये थे। उन्होंने इस विवाह पर कोई आपत्ति करना उचित न समझा। विवाह गोंड-रीति से हुआ। विवाह के पश्चात् आनन्द ने देखा कि रूपी अनमनी-सी रहने लगी है, पर वह बम्बई जाने का विचार छोड़ नहीं सकता था।

रेलगाड़ी बड़े वेग से भागी चली जा रही थी; पहिये उन्हें नजर न आ सकते थे, पर रेलगाड़ी की गति पहियों का ध्यान दिला रही थी। आनन्द के समीप ही रूपी बैठी थी, अनमनी-सी; उसने रूपी से अनुरोध तो नहीं किया था कि वह अवश्य करंजिया से विदा लेकर उसका साथ दे, और अब तो वह उसकी दुलहन थी। उसका स्वागत था, शत-शत स्वागत। सेकेंड-

क्लास के डिब्बे में सब आराम था; कोई भीड़ न थी। परे कोने में एक वयोवृद्ध अंग्रेज़-जोड़ा बैठा था। चुन्नू मियाँ ने ऊपर वाला बर्थ पसन्द किया; आनन्द ने बहुत ज़ोर दिया था कि वह साथ वाले बर्थ पर नीचे ही बिस्तर लगा ले, पर उसने एक न सुनी।

आनन्द सोच रहा था कि करंजिया पीछे रह गया; जंगल की गम्भीर मुद्रा उसकी कल्पना को अब भी थपथपा रही थी; कुलदीप और रंजना भाभी का आतिथ्य, साथ ही अधिक दिन रुकने का आग्रह रह-रहकर याद आ रहा था। रंजना भाभी बार-बार कह उठती थी, "इतनी भी क्या जल्दी है, आनन्द ?" लेकिन वह अधिक दिन कैसे रुक सकता था ? उसे तो बम्बई पहुँचने की जल्दी थी। रेलगाड़ी के दनदनाते पहिये जैसे अदृश्य होते हुए भी उसे आश्वासन दे रहे हों—गाड़ी समय पर बम्बई पहुँच जायगी।

रूपी की मुद्रा से प्रत्यक्ष था कि वह दुविधा से निकल नहीं सकी। आनन्द के जी में तो आया कि वह उसे बताये कि नर्मदा भी तो चलते-चलते कई स्थलों पर मुड़ती चली गई है, मोड़ से डरना तो ठीक नहीं और मोड़ पूछकर तो आता नहीं, इसका तो अपना ही अन्दाज होता है। कभी-कभी रूपी मुस्कराकर आनन्द की ओर देखती, जैसे विश्वास दिला रही हो कि वह उदास नहीं है और उसे अपने जीवन के इस मोड़ पर गर्व है, पर अगले ही क्षण वह फिर किसी चिन्तन में खो जाती, उसके मुख पर मानसिक पीड़ा की रेखाएँ गहरी होने लगतीं।

आनन्द को कई बार रूपी का वह वेश स्मरण हो आता जो उसे करंजिया में प्रिय था; वहाँ तो रूपी को करंजिया की अन्य गोंड-युवतियों का वेश ही पसन्द था, वही शृङ्गार—कानों के कर्ण-फूलों से लटकती हुई लड़ियाँ, दोनों ओर के कर्ण-फूलों को एक डोरी से सिर के ऊपर ले जाकर बाँध दिया जाता था, जिससे कर्ण-फूलों का बोझ कानों पर अधिक न पड़े; उलझे केशों के बीच से जाती हुई डोरी उस पगडंडी की याद दिलाती थी

जो जंगल के बीच से गुज़र रही हो। पर अब तो रूपी के वेश पर रंजना भाभी की व्यक्तिगत छाप लग गई थी, साड़ी बाँधने का वही अन्दाज़, अंगिया का वही कटाव, केश-विन्यास की एकदम आधुनिक पद्धति —सामने से केशों का छज्जा-सा ऊपर को इतना उठा हुआ कि चेहरे का कटाव कुछ नया नज़र आने लगा था। रंजना भाभी ने तो रूपी का वेश और शृङ्गार बम्बई के अनुरूप बनाने का यत्न किया था। पर अब तो रूपी के बालों का सामने वाला छज्जा कुछ-कुछ नीचे को ढलक गया था; आनन्द को ध्यान आया कि जब तक केश किसी नये अन्दाज़ के अभ्यस्त न हो जायँ वे पिनों के रहते भी ढलक आते हैं।

कई बार आनन्द सोचता कि रंजना भाभी ने रूपी को बम्बई फैशन की सफेद ज़मीन पर नीली बुन्दकियों वाली साड़ी और नीली अंगिया पहना कर अच्छा किया; ऊपर से भूरे रंग के कोट में रूपी एकदम आधुनिक लगने लगी थी। लेकिन पुरानी रूपी जैसे खो गई हो। पुरानी रूपी का स्मरण आते ही आनन्द के दिल पर चोट लगती। वैसे यात्रा में तो यह ठीक है, वह सोचता, यहाँ रेलगाड़ी के सेकेंड क्लास के डिब्बे में करंजिया के वेश और शृङ्गार वाली रूपी के साथ बैठना तो बहुत मुश्किल में डाल देता। हर किसी की निगाह ऊपर उठती रहती, स्टेशन पर लोग उन्हें घूर-घूर कर देखते। शायद बहुत से लोग यही सोचते कि मैं जंगल की किसी लड़की को अपने साथ भगाये लिए जा रहा हूँ। अब तो ऐसे सन्देह के लिए गुंजाइश न थी।

"बम्बई में भी तुम इसी तरह चुप रहोगी, रूपी?" आनन्द ने रेलगाड़ी की खिड़की से उषा का दृश्य देखते हुए कहा, "क्या अभी तक नींद का खुमार बाक़ी है? उषा को नहीं देखोगी?"

"आपने देख ली तो मैंने भी देख ली उषा!" रूपी ने करवट बदल

कर कहा।

"मालूम होता है करंजिया की याद अभी तक सता रही है।"

"कुछ-कुछ तो यह बात ठीक ही है।"

"तुम्हें वह दिन भी याद है रूपी, जब तुम ने कला-भारती के पूर्वी द्वार में मेरे साथ उषा का दृश्य देखा था।

"मुझे सब याद है।"

"ऋग्वेद के उषा-काव्य का रसास्वादन भी याद है।"

"वह भी याद है।"

"ऋग्वेद का उषा-काव्य उस युग का काव्य है रूपी, जब समाज में आज के युग से कहीं अधिक शान्ति थी, समाज में वर्ग-संघर्ष न था जो आज पारस्परिक ईर्ष्या और शत्रुता को जन्म देता है; जनतन्त्र के उस आदि-युग में स्त्री-पुरुष निष्कपट और सरल जीवन व्यतीत करते थे; उनके जीवन में आशा के स्वर घुले हुए थे; उषा-काव्य उसी आशा का प्रतीक है। हाँ तो अब उठोगी नहीं, रूपी? देखोगी नहीं उषा का दृश्य? कुछ ही क्षणों का मेहमान है यह दृश्य।"

रूपी ने सिर उठाकर उषा की प्रतिपल गहरी होती ललिमा को देखा और कहा, "उषा भी यही पूछ रही है कि बम्बई कितनी दूर है?"

आनन्द ने हँसकर कहा, "तुम भी कितनी भोली हो, रूपी! जिस उषा को हम रेल की खिड़की से देख रहे हैं—पहियों की दनदनाहट के शोर में—उसी उषा को पीछे करंजिया वाले और आगे बम्बई वाले देख रहे होंगे!"

६४

रूपी का ख्याल था बम्बई जबलपुर जैसी होगी, या नागपुर और वर्धा से थोड़ी बड़ी जिन्हें वह विद्यार्थी-जीवन में देख चुकी थी। लेकिन बम्बई तो उसके अनुमान से बहुत बड़ी निकली; इतनी बड़ी कि यहाँ अन्नदेवता का ठौर-ठिकाना मालूम करना कठिन था।

"किस गाड़ी से अन्नदेवता बम्बई आया होगा?" एक दिन रूपी ने चुटकी ली, "सुबह की गाड़ी से आया होगा अन्नदेवता या शाम की गाड़ी से।"

"तो तुम अन्नदेवता से मिलने की फिक्र में हो, रूपी?"

"क्यों नहीं?" रूपी ने चलते-चलते कहा।

बम्बई की भाषा में चालू और खलास—ये दो शब्द ही प्रमुख थे, इस पर बम्बई की व्यक्तिगत छाप थी। रूपी को लगा कि अब तक तो अन्नदेवता भी बम्बई की भाषा के इन शब्दों से परिचित हो चुका होगा। बम्बई तो दौड़ रही थी; बम्बई के पास फ़ुर्सत के क्षण कहाँ थे?

मारो ठेला हेइयाँ!—बोझ खींचते मजदूरों की आवाज गूँज उठी।

रूपी ने मजदूरों के चेहरों पर यों दृष्टि डाली, जैसे वह अन्नदेवता को

पहचानने का यत्न कर रही हो। ये लोग भी तो गाँव से आये होंगे; शायद करंजिया का कोई आदमी भी नजर आ जाय; करंजिया का तो कोई आदमी नहीं था यहाँ; और अन्न देवता भी कहाँ मिल सकता था ?

जबलपुर, नागपुर और वर्धा में भी रूपी 'मारो ठेला हैंइयाँ' की आवाज सुन चुकी थी। वहाँ भी दीवारों पर जड़े हुए काँच के टुकड़े देख चुकी थी। ये काँच के टुकड़े इस भय से ही तो लगाये जाते थे कि चोर-उचक्के घर के भीतर न घुस सकें। अब यहाँ तो जैसे दुनिया-भर का काँच ऊँची दीवारों पर जड़ दिया था बम्बई ने ! इन दीवारों से घिरे हुए मकानों में कौन लोग रहते हैं ? इन्हीं में तो कहीं सम्मिलित नहीं हो गया अन्न-देवता ? ये प्रश्न रूपी को झकझोर रहे थे।

"जानते हो मैं यहाँ क्यों चली आई ?" रूपी ने ट्राम में चढ़ते हुए कहा।

"बताओ, रूपी !" आनन्द ने ट्राम में बैठे हुए लोगों की तरफ देखकर कहा।

"मेरा ख्याल था कि बम्बई में कहीं तो अन्नदेवता मिल ही जायगा। अब अन्नदेवता कहाँ मिलेगा ? कब मैं उससे पूछ सकूँगी कि पेंड्रा रोड वाली रेल्वे लाइन निकलते ही वह पहली ही रेलगाड़ी पर बम्बई की बिना-टिकट यात्रा करने के लिए क्यों चल दिया था और यहाँ एक बार आकर करंजिया लौटने की बात क्यों भूल गया ?"

"वाह कविप्रिया !" आनन्द ने जैसे अपना कवि-रूप प्रस्तुत करते हुए कहा, "तुम्हारी कल्पना में अन्नदेवता का चित्र इतनी गहरी रेखाओं द्वारा अंकित है, यह मैं नहीं जानता था।"

"बम्बई में जो चटखारा है—पिसे मसाले का-सा चटखारा, वह करंजिया में कहाँ था ?"

"यह तो तुम ठीक कह रही हो, रूपी !"

"यह चटखारा छोड़कर अन्नदेवता वापस करंजिया चला जाता तो उससे

बड़ा मूर्ख कौन होता ?"

"यहाँ रेशमी वस्त्रों की चमक भी तो है, रूपी !"

"मैं सब देख रही हूँ। यह एक और प्रलोभन है। अन्नदेवता की आँखें तो अब रेशमी वस्त्रों में लिपटी हुई स्त्रियों पर ही मुग्ध हो सकती है।"

आनन्द ने कनखियों से रूपी की ओर देखा; बम्बई की रूपी करंजिया की रूपी से कितनी भिन्न थी—रेशमी कपड़ों में लिपटी हुई एक तितली वह भी तो थी। फिर भी वह यों बात कर रही थी, जैसे रेशमी वस्त्रों के नीचे उसका व्यक्तित्व दब न सकता हो।

"बम्बई का सबसे बड़ा मज़ा है पैसा, रूपी !" आनन्द ने चुटकी ली, "टकसाल का मुँह पहले बम्बई की ओर खुलता है; ठन करके बज उठते हैं रुपये ! तुम्हारी करंजिया तक जाते-जाते तो इस टकसाल के रुपये बहुत पुराने हो जाते हैं, बहुत घिस जाते हैं।"

"मुझे तो बम्बई अच्छी नहीं लगती !"

"अभी यहाँ आये दिन ही कितने हुए हैं, रूपी ! बम्बई का चेहरा तो बहुत बड़ा है, और बम्बई के हाथ-पैर भी कुछ कम बड़े नहीं हैं; बड़े मुँह पर बड़ा हाथ फेरकर हँसती है बम्बई।"

रूपी ने ट्राम से उतरते हुए कहा, "मुझे तो मेरी करंजिया में वापस ले चलो !"

आनन्द को हर रोज़ प्रेस में जाकर अपनी पुस्तकों के प्रूफ़ पढ़ने पड़ते थे; प्रकाशक पर सब जिम्मेदारी छोड़ना उसे स्वीकार होता तो उसके करंजिया में रहते ही ये पुस्तकें छप गई होतीं।

"मुझे तो अच्छी नहीं लगती बम्बई !" रूपी ने फिर कहा,

"बम्बई को जानने के लिए तो बहुत दिन रहना चाहिए बम्बई में। इतने दिन हम यहाँ थोड़े ही बैठे रहेंगे ? मेरी दोनों पुस्तकें छपकर निकलीं कि हम यहाँ से हुए उडन्त आसाम के लिए !"

६५

एक दिन नाश्ते पर चुन्नू मियाँ ने हँसकर कहा, "मुझे तो यह होटल बहुत पसन्द आया, राजा बाबू! अल्ला पाक का लाख-लाख शुक्र है। इन्सान ने कैसे-कैसे होटल बनाये; अल्ला पाक ने तो समुद्र को बनाया जो सामने ठाठें मार रहा है या फिर अल्ला पाक ने इन्सान को बनाया!"

"अल्ला पाक को भी कुछ दिन के लिए 'सी विऊ' होटल में ले आइए, बड़े बाबा!" आनन्द ने हँसकर कहा, "हो सके तो हमारे करंजिया-निवासी अन्नदेवता को भी यहीं ले आइए; आखिर हम उससे मिल तो लें, क्योंकि अब वह करंजिया तो जाने से रहा, जैसा कि रूपी का भी ख्याल है!"

रूपी के उदास चेहरे पर हर्ष की रेखाएँ न उभरीं। आनन्द जाने लगा तो रूपी बोली, "मैं आज यहीं बैठकर चीनी कविता का वह संकलन उलट-पुलटकर देखूँगी, तुम प्रेस हो आओ।"

"तो तुम चलो आज मेरे साथ, बड़े बाबा!" आनन्द ने चलते हुए कहा, और चुन्नू मियाँ उसके साथ हो लिया।

रूपी ने होटल के पाँचवीं मंजिल के कमरे की खिड़की से समुद्र की ओर देखा। आज उसकी तबीअत अनमनी-सी थी; 'उसके पंख होते तो उड़कर करंजिया जा पहुँचती। फिर उसने एक हजार वर्ष से भी पुराने चीनी कवि ली पो की कविता की वह पुस्तक उठा ली जो कल ही प्रेस से लौटते समय आनन्द ने बाजार से खरीदकर उसे भेंट की थी और बाकायदा उस पर लिखा था—रूपी को : करंजिया की शत-शत स्मृतियों सहित : स्नेहांकित आनन्द जय आदर्श !

आनन्द के हस्ताक्षर को वह देर तक देखती रही। आनन्द उसका अपना नाम था; डॉक्टर जय आदर्श उसके पिता जी थे, जो पहले मोहेंजोदड़ो म्यूजियम के क्यूरेटर थे, और अब देश के बटवारे के बाद दिल्ली के म्यूजियम में आ गये थे। आनन्द अपने नाम के पीछे पिताजी का नाम लगाता था, जैसे यह भी एक प्रकार की क्षतिपूर्ति हो ! तो वह भी अपने नाम के पीछे अपने पिता जी का नाम क्यों न लगा ले; क्यों न वह भी अपना नाम रूपी मंडल घोषित करे ?···फिर उसे ख्याल आया कि अब तो वह आनन्द की पत्नी है और वह इस संसार में मिसेज रूपी आनन्द जय आदर्श ही कहलायगी। पुस्तक खोलकर उसने अपनी दृष्टि एक कविता पर टिका दी :

कटी-छँटी थीं मेरी अलकें—माथा कब ढकता था इन से ?
खेल रही थी—दरवाजे के आगे, तोड़ रही थी फूल !
तुम आये, प्रिय, हरे बाँस-घोड़े पर चढ़कर
बिखराते, छटकाते कच्चे बेर
चाङ्कान के कूचे में हम आस-पास रहते थे
कच्ची उम्र हमारी, मन आनन्द-भरा
तुम संग ब्याह हुआ तो मैंने चौदह में था पैर धरा
लाज-लजी-सी थी मैं—कब दिल्लगी मुझे लेती थी घेर ?
अँधियारे कोने में रहती थी मैं सिर दुबकाये
लाख बुलाने पर भी कब मैं मुड़कर तकती ?

पन्द्रह लगते-लगते मेरी भौंहें तिरछी हुई जा रहीं
और हँस-पड़ी सहसा मैं भी।
जब पहुँची सोलह में तब तुम चले गये प्रिय, दूर देश को,
च्यूताङ् पर्वत-पथ पर,
जहाँ पत्थरों के ढूहों से
चकराता, बहता था पानी—भँवरें लेता;
पाँच महीने बीत गये अब और न कीजो देर।
मैंने तुम्हें निहारा—दरवाजे के आगे पथ पर जाते।
वहाँ तुम्हारे पैरों की है छाप—हरी सिंवारों की छाती पर
इतनी घनी सिंवार—झाड़े नहीं हट रही है वह
आखिर शरद्-पवन ने लाकर वहाँ जुटाया
झरे जीर्ण पत्तों का ढेर।
अब है मास आठवाँ,
उड़ें तितलियाँ पीली-पीली हमरी पच्छिम की बगिया में हरी घास पर
मेरी छाती फटती जाती, रूप कहीं मेरा मैला हो जाय न—मैं डरती हूँ!
देखो, जब तुम लौटो तीन जनपदों के इस पार
कहीं अनसुनी कीजो ना तुम मेरी टेर।
तब तुम मुझको भूल न जाना
पहले से तुम खबर पठाना
चाङ्फेङ्शा का लम्बा रस्ता चलकर मैं आऊँगी
औ' तुम से मिल जाऊँगी
दूरी के विचार से मैं ना भय खाऊँगी!

रूपी के मन पर ली पो की इस कविता की प्रतिक्रिया यह हुई कि उसे अपने 'चाङ्कान'—अपने करंजिया, और अपने झूलन की याद सताने लगी।

६६

सोफ़िया ने आनन्द का परिचय बम्बई के कई सम्पन्न परिवारों से कराया जो उसके कार्य में सहायक हो सकते थे। इन में वे लोग भी थे जिन्होंने करंजिया के अकाल के दिनों में सैंकड़ों रुपये दिये थे। उसके बाब कट के घुँघरीले बाल उसकी गरदन पर झुके पड़ते थे; जब वह जल्दी में गरदन घुमाकर आनन्द की ओर देखती, आनन्द को लगता जैसे वह उसके हृदय में फाँस-सी लगाकर कुछ निकाल लेना चाहती है। उसका अपना स्टूडियो था; बम्बई के आर्ट सर्कल में उसके चित्र पसन्द किये जाते थे; अनेक आलोचकों ने उसकी शैली की प्रशंसा की थी।

आनन्द को सोफ़िया ने छूटते ही आर्य रक्त का प्रतीक बताया; एकदम गौर वर्ण, नाक एकदम सुतवाँ, आँखें ज्योतिर्मय। उसकी पोर्ट्रेट बनाकर सोफिया ने जैसे प्राचीन आर्य चेहरे को प्रस्तुत कर दिखाया; बम्बई के आर्ट सर्कल में उसकी खूब चर्चा हुई।

बात-बात में सोफ़िया बम्बई की प्रशंसा करती; बम्बई में उसे बाहर की प्यास नहीं सता सकती थी, जैसा कि उसका ख्याल था। एक दिन सोम का

मज़ाक उड़ाते हुए उसने कहा, "मैं नहीं समझती कि उसे करंजिया में क्या मिल गया।"

"सोम के पंख थे, इसलिए वह उड़कर करंजिया चला गया," आनन्द ने सोम की ओर से कहा, "जिसके पंख ही नहीं, वह क्या उड़ेगा?"

"हमारी बम्बई में किसी चीज़ की कमी नहीं है!" सोफ़िया ने जैसे आनन्द को स्नेहपाश में बाँधने का यत्न करते हुए कहा, "आपकी बात तो समझ में आती है कि आप करंजिया में अपनी पुस्तकों का मसाला जमा करने गये, लेकिन सोम तो वहाँ घर बनाकर ही बैठ गया। आप से भी एक भूल ज़रूर हुई कि आप करंजिया से एक बीवी भी अपने साथ लेते आये; कहाँ जंगल, कहाँ बम्बई!"

अपनी बात खत्म करते हुए सोफ़िया ने इस अन्दाज़ से आनन्द की ओर देखा जैसे वह किसी म्यूज़ियम में अपनी पसन्द की मूर्ति को देखकर खुश हो रही हो। लेकिन आनन्द ने सोफ़िया की बात का कोई उत्तर न दिया; वह मुँह फेरकर बैठ गया।

सोफ़िया ने आदमी भेजकर अपने लिए और आनन्द के लिए दोपहर का खाना स्टूडियो में ही मँगवा लिया। वे देर तक बातें करते रहे। उसने निस्संकोच भाव से कहा, "मैंने एक न दो न तीन पूरी चार शादियाँ कीं; हर बार वही सिविल मैरिज। हर बार मुझे लगा कि मुझ से ग़लती हुई, मैंने ग़लत आदमी चुना। अब यह तो इन्सानियत का तकाज़ा है कि इन्सान ग़लती की तलाफ़ी करे; अब तो मैं बहुत डर गई हूँ और मैंने फ़ैसला कर लिया है कि मरती मर जाऊँगी शादी नहीं करूँगी, सिविल मैरिज एक्ट से भी नहीं।"

आनन्द सामने बैठा गम्भीर मुद्रा से सोफ़िया को देखता रहा। सोफ़िया फिर बोली, "वैसे यह सिविल मैरिज का ढंग कितना अच्छा है; मन न मिले तो छुट्टी ले लो।"

"मैं भी यह बात मानता हूँ।" आनन्द ने कहा, "विवाह का अर्थ

यह तो नहीं होना चाहिए कि मन न मिलने पर भी बोझा ढोया जा रहा हो !"

"आप की बात दूसरी है," सोफिया ने हँसकर कहा, "अब आप अपने लिफाफे को, बल्कि मैं कहूँगी, अपने पार्सल को उठाये-उठाये फिरेंगे। आप मजबूर हैं।"

आनन्द ने गम्भीर होकर कहा :

"शायद तुम्हें मालूम नहीं सोफिया, कि आदिवासियों की विवाह-पद्धति के अनुसार भी लड़के-लड़की को यह स्वतन्त्रता रहती है कि वह मन न मिलने पर बन्धन-मुक्त हो सकें। फिर भी मैं कहना चाहूँगा कि आदिवासी विवाह-पद्धति के अनुसार विवाह कराने के बावजूद रूपी को छोड़ने का ख्याल तो मेरे मन को छू भी नहीं सकता; मेरे सामने मेरा कार्य है। बहुत जल्द हम आसाम जा रहे हैं, बस मेरी पुस्तकें प्रकाशित हो जायँ !"

"मैं तो कुछ और ही सोच रही थी !" सोफिया ने बाब कट के बाल झटक कर कहा, "खैर ठीक है। आप आसाम जाइए; अपने पार्सल को उठाये-उठाये जहाँ चाहे जाइए !"

चुन्नू मियाँ को बम्बई बिल्कुल पसन्द न आई; कई बार वह रास्ता भूल जाता, बेचारा बड़ी मुश्किल से गेट आफ़ इंडिया का हवाला देकर सी विऊ होटल में पहुँचता। उसके कमरे की खिड़की से समुद्र का दृश्य बहुत बुरा नहीं लगता था; दूर तक फैला हुआ नीला जल जैसे कोई रास्ता दिखा रहा हो।

एक दिन पास वाले कमरे में एक बंगाली बाबू आकर ठहरे। चुन्नू मियाँ से उनकी दोस्ती हो गई। वे चुन्नू मियाँ को अपने कमरे में बुलाकर कहते, "रिकार्ड सुनेगा, बाबा?"

"सुनेगा क्यों नहीं?" चुन्नू मियाँ हँसकर कहता।

"बंगाली बाबू वही रिकार्ड लगाते जिसका शुरू का बोल था :

कोथाय पावो तारे
आमार मनेर मानुष ये रे!
हाराय शेई मानुषे तार उद्देशे
देश विदेशे बेड़ाई घूरे!"

यह सोचकर कि बाबा को बंगला का ज्ञान कहाँ होगा, बंगाली बाबू ने पहले ही दिन कहा था, "देखो बाबा, ई गान हमरे देश का बाउल गान है; बाउल एक रकम बोइरागी। बोइरागी बोलता कि हमरे मन के मानुष को हम कहाँ खोजने सकता, मन के मानुष को गुम करके उस की तलाश में हम देश-विदेश में चक्कर लगाता!—हाँ बाबा, ई गान तो बहुत अच्छा वाला। हमरा गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ठाकुर तो ई गान को बहुत पसन्द करता था।"

और अब चुन्नू मियाँ को भी तो यह गान बिल्कुल पसन्द था। सी विऊ होटल के कमरे में अपने बिस्तर पर पड़े-पड़े चुन्नू मियाँ कई बार सोचने लगता कि हमारे राजा बाबू भी तो किसी तलाश में आसाम जा रहे हैं। आनन्द का बचपन से लेकर अब तक का जीवन उसकी आँखों में घूम जाता। आनन्द तो शुरू से ही किसी तलाश में निकलने वाला लड़का मालूम होता था। सौदागर के बेटे की कहानी, जो बीसियों परीक्षाओं के बाद शाहजादी को हासिल करता है, आनन्द को बचपन से ही कितनी पसन्द थी। खैर हमारे राजा बाबू के जीवन में वह कहानी तो सच्ची हो गई; राजा बाबू को शाहजादी मिल गई—जंगल की शाहजादी, मंडल पटेल की बेटी! रूपी ने करंजिया छोड़ दिया। खैर अपने मायके को तो विवाह के बाद हर लड़की छोड़ देती है, पर रूपी तो अपने देश को भी पीछे छोड़कर चली आई; अब वह हमारे साथ आसाम जायगी। अब अगली तलाश क्या है? राजा बाबू से पूछेंगे। राजा बाबू बता देंगे; राजा बाबू कुछ छिपाकर तो रखते नहीं।

कई बार बिस्तर पर पड़े-पड़े चुन्नू मियाँ सोचता कि अब तो बहुत दिन हो गये बम्बई में रहते-रहते। राजाबाबू से कहेंगे कि अब आसाम की तैयारी जल्दी करें। यहाँ की भीड़-भाड़ तो हमें एक आँख नहीं भाती। जरा उनकी किताबों का काम खत्म हो तो फिर उनसे कहेंगे कि राजा बाबू, अब हमें तो आपकी बम्बई की सैर का जरा शौक नहीं रहा। फिर उसे ख्याल आता कि बंगाली बाबू तो बम्बई की तारीफ़ के पुल बाँधते थकते नहीं।

बंगाली बाबू इन्शोरेन्स एजेंट थे। सवेरे के नाश्ते पर वे हमेशा उसी

गीत का रिकार्ड लगा देते जिसमें इन्सान की तलाश का बखान किया गया था। एक दिन उन्होंने चुन्नू मियाँ को अपने कमरे में नाश्ते पर बुलाया। मालूम होता था कि आज उन्हें कोई खज़ाना मिल गया है।

"ई जलपान, बाबा!" बंगाली बाबू ने हंसकर कहा, "ई लंच नाई!"

"लंच की क्या कसर रह गई?" चुन्नू मियाँ ने जलपान की मेज़ पर तरह-तरह की चीजें देखकर कहा।

'कोथाय पावो तारे' वाला रिकार्ड दोबारा लगाते हुए बंगाली बाबू ने कहा, "ई गान हमरे शौभाग्य का गान, बाबा! कल एक मोटे सेठ की मोटी पालिसी हमरे हाथ आई, आज़ फिर हम एक मोटी पालिसी माँगता। बंगला देश में बोलता—माछेर तेले माछ भाँजा! इसका मतलब बोलता बाबा कि मछली का तेल में मछली को तला जाता। हम बोलता हम ऐसा मानुष नाई, बाबा! कोथाय पावो तारे आमार मनेर मानुष ये रे! हाँ बाबा, हम ई गान का सुर में बोलता; हमको पालिसी कैसे नाई मिलता? पालिसी के लिए हम देश विदेश में घूमता और हमरा सब दिन गाता—हाराय शेई मनेर मानुष, देश विदेशे बेड़ाई घूरे!"

रिकार्ड बज रहा था। चुन्नू मियाँ को लगा कि बंगाली बाबू अपने जीवन से खुश हैं, आये दिन इन्शोरेंस की एक-न-एक पालिसी कहीं से उनके हाथ लग जाती है; एक हमारे राजा बाबू हैं कि 'पालिसी' पाकर भी खुश नहीं होते।

"माछेर तेले माछ भाँजा!" बंगाली बाबू ने हँसकर कहा, "पालिसी कैसे नहीं मिलेगा; पालिसी के लिए हम बड़ा-बड़ा जादू करता है; कभी सिनेमा दिखाता, कभी रिबेट देता! हाँ बाबा, माछेरे तेले माछ भाँजा!"

इतने में आनन्द भी वहाँ आ गया। बंगाली बाबू बोला "आइए, आइए; एक पालिसी तो हम आपको भी देगा; आपकी श्रीमती जी को भी हम अच्छा वाला पालिसी देने सकता!"

रिकार्ड बन्द हो गया था। बंगाली बाबू ने उठकर फिर वही रिकार्ड लगा दिया—कोथाय पावो तारे··

६८

आनन्द की दोनों पुस्तकें—'गोंड संस्कृति : एक अध्ययन' और 'गोंड लोकगीत', प्रकाशित हुए बहुत दिन हुए थे; इनके चित्र सोम की तूलिका के चमत्कार थे। प्रकाशक यह देखकर चकित रह गया कि प्रेस में इन पुस्तकों की जो आलोचनाएँ प्रकाशित हुई हैं उन में लेखक से कहीं अधिक श्रेय चित्रकार को दिया गया है।

रूपी ने इन आलोचनाओं के कटिंग करंजिया में सोम को भी भिजवाये। केवल एक ही आलोचना ऐसी थी जिसमें चित्रों पर कीचड़ उछालने का यत्न किया गया था। न्यू आर्ट वीकली में प्रकाशित होने के कारण इसका महत्व अवश्य था। इस आलोचना में लेखक को भी बख्शा नहीं गया था। आलोचक को सबसे बड़ी आपत्ति इस बात पर थी—"इन पुस्तकों में लेखक की आत्मप्रशंसा का स्वर इतना मुखर क्यों हो उठा है?" और चित्रों के बारे में कहा गया था—"ये चित्र बहुत घिसे-पिटे से हैं। एकदम निष्प्राण, इनकी कोई भाषा नहीं, इनमें कोई गति नहीं है!" आलोचक के रूप में नीचे केवल 'ऐस' प्रकाशित हुआ था जिससे यह सन्देह करने की गुंजाइश थी

कि इसे सोफिया ने ही लिखा है ।

एक दिन आनन्द रूपी तथा चुन्नूमियाँ एलिफेंटा की सैर करने निकले। यह यात्रा मजेदार रही। बंगाली बाबू को इस यात्रा में विशेष रूप से आमन्त्रित किया गया था। त्रिमूर्ति की छाया में आनन्द ने देखा कि चुन्नू मियाँ इसलिए भी खुश है कि एलिफेंटा देखने के बहाने समुद्र यात्रा का रस भी आ गया।

"त्रिमूर्ति हमारी कला का उत्तम उदाहरण मानी जाती है, रूपी!" आनन्द ने एक क्यूरेटर के अन्दाज में कहा।

रूपी ने त्रिमूर्ति से दृष्टि हटाकर आनन्द की ओर देखा, जैसे वह उसके चेहरे पर भी तीन चेहरे देखने का यत्न कर रही हो।

"त्रिमूर्ति की कई रूप में विवेचना की गई है, रूपी!" आनन्द ने रूपी का ध्यान आकर्षित करते हुए कहा, "ब्रह्मा, विष्णु, महेश—ये हमारे तीन देवता हैं—ब्रह्मा सृष्टि करते हैं, विष्णु सृष्टि के रक्षक हैं, शिव सृष्टि का संहार करते हैं। वैसे शिव का अर्थ है कल्याणकारी। इसका यह अर्थ हुआ कि संहार भी उतना ही आवश्यक है। पुरानी घिसी-पिटी परम्पराएँ, जो उपयोगी नहीं रहीं, सूखे पत्तों की तरह स्वयं ही झड़ जाती हैं। ब्रह्मा, विष्णु, महेश—यही त्रिमूर्ति है। मनुष्य तो सब देवताओं से महान् है, उसमें भी तो यही तीन शक्तियाँ काम कर रही हैं अर्थात् मनुष्य त्रिमूर्ति है—वह एक साथ ब्रह्मा, विष्णु, महेश है।"

"हमरे बाँगला देश में कवि चण्डीदास भी बोलता—शबार ऊपरे मानुष सत्य, ताहार ऊपरे नाईं!" बंगाली बाबू ने उभर कर कहा, "मानुष एक रकम त्रिमूर्ति, ए तो ठीक सत्य, ए तो कोनो मिथ्या नाईं!"

आनन्द त्रिमूर्ति से हटकर अर्द्धनारीश्वर के सामने आ खड़ा हुआ और वह देर तक इसकी विवेचना करता रहा। फिर उसे ध्यान आया कि वह अपने पिता डॉक्टर जय आदर्श के स्वर में बोल रहा था; इसी आस्था और विश्वास के साथ तो उसके पिता मोहेंजोदड़ो की वस्तुएँ दिखाते रहे और अब

भी वे दिल्ली के नेशनल म्यूज़ियम में मोहेंजोदड़ो वाले विंग की वस्तुएँ म्यूज़ियम में आने वालों को इसी उत्साह से दिखाते होंगे।

"त्रिमूर्ति तो एक स्थान पर विराजमान है।" रूपी ने जैसे आनन्द की अगली यात्राओं पर व्यंग्य कसते हुए कहा, "और एक यह हमारी त्रिमूर्ति है कि आसाम जाने की सोच रही है!"

"आसाम तो चलना ही होगा, रूपी!" आनन्द ने कहा, "जो चलता नहीं वह आगे नहीं बढ़ सकता!"

"जो चलता है वही मंजिल पर पहुँचता है, "चुन्नू मियाँ ने शह दी, "मंजिल खुद तो चलने वाले के पास आने से रही!"

"कोई कुछ भी कहे," रूपी ने झुंझलाकर कहा, "मैं तो अपनी करंजिया को लौट जाऊंगी। हम वहीं रहेंगे।"

आनन्द उस समय अर्द्धनारीश्वर के सामने खड़ा था; उसे लगा कि यह उसी की मूर्ति है, मूर्त्ति में रूपी का चेहरा पहचानने का यत्न करते हुए वह बोला, "मनुष्य त्रिमूर्ति ही नहीं, वह अर्द्धनारीश्वर भी है! तुम्हें मेरे साथ चलना ही होगा, रूपी! मैं शिव हूँ तो तुम हो पार्वती—यह अर्द्ध-नारीश्वर आसाम ज़रूर जायगा!"

"हमरा तो एखन शादी नहीं हुआ,!" बंगाली बाबू ने पति-पत्नी को उलझते देखकर कहा, "एखन तो आमरा अर्द्ध नारीश्वर नहीं बनने सकता। फिर भी आमरा मन साक्षी दिते पारे कि आमरा ओ आपोन शंगो आशाम जेते पारबो!"

चुन्नू मियाँ चकित-सा बंगाली बाबू के मुख की ओर देखता रह गया; वह बंगाली बाबू की बात पूरी तरह नहीं समझ सका था।

"हाँ हाँ, आप भी आसाम चलिए हमारे साथ", आनन्द कह उठा, "आप भी हमारी यात्रा में सम्मिलित हो सकते हैं।"

रूपी ने चेहरा दूसरी तरफ़ घुमा कर कहा, "मेरी मंजिल तो करंजिया है।"

६६

मानव संस्कृति परिषद ने प्रतिनिधि विद्वानों के प्रामाणिक भाषण कराने की नूतन परम्परा स्थापित की थी। देश की स्वतन्त्रता के पश्चात् कुछ दिन तक तो 'इण्डो यूरोपियन सोसाइटी' की अवस्था डाँवाँडोल रही। फिर इसका नये सिरे से संगठन किया गया। पहले तो इसमें अंग्रेजों के पिट्ठू ही आते थे और यों लगता था कि 'इण्डो यूरोपियन सोसाइटी' किसी आई० सी० एस० की पत्नी है—वैसी ही शोख और नकचढ़ी! कदम-कदम पर सोसाइटी का कार्यक्रम शराब में भीगा नजर आता था। कार्यक्रम का अधिकांश भाग अंग्रेजी नाच गाने तक सीमित रहता था; कभी किसी भाषण का प्रबन्ध भी किया जाता तो यही सिद्ध करने के लिए कि पश्चिमी संस्कृति ही सर्वोत्तम है; हर बार अंग्रेजी राज की बरकतें उसी तरह गिनाई जातीं जैसे स्कूलों में इतिहास की कक्षा में गिनाई जाती थीं, और श्रोतागण इस पर यों तालियाँ बजाते जैसे पहली बार उन्हें यह ज्ञान प्राप्त हो रहा हो।

जब से 'इण्डो यूरोपियन सोसाइटी' का नाम बदल कर मानव संस्कृति

परिषद रख दिया गया था, परिषद का वातावरण कुछ-कुछ बदल गया था, फिर भी बम्बई की फैशनेबल सोसाइटी की स्त्रियाँ पहला ठाठ कायम रखने पर तुली हुई थीं, बल्कि कभी-कभी तो लगता कि परिषद का नाम बदलने और परिषद् के एलबर्ट हाल का नाम गांधी हाल रख देने से कोई अन्तर नहीं पड़ा।

आनन्द का भाषण सुनने के लिए मानव संस्कृति परिषद के गांधी भवन में हजारों लोग जमा हुए। स्त्रियों की संख्या आज पहले से अधिक थी, क्योंकि यह सूचना विशेष रूप से दी गई थी कि आनन्द जय आदर्श की गोंड पत्नी भी गोंडों की संस्कृति पर प्रकाश डालेगी।

मंच पर बैठे-बैठे रूपी ने गांधी हाल की स्त्रियों पर नजर डाली जिनमें एक-से-एक बढ़कर सुन्दरी नजर आ रही थी। उसे लगा ये रंगे होंठों वाली सभी स्त्रियाँ उससे कहीं अधिक सुन्दर हैं। चेहरा घुमाकर उसने आनन्द की ओर देखा जो किसी विचारधारा में खोया मालूम होता था। रूपी को लगा कि आनन्द ने उसे अपनी दुलहन बनाकर बहुत बड़ा त्याग किया है, उसे तो बम्बई में अच्छी-से-अच्छी दुलहन मिल सकती थी।

भाषण सुनने के लिए लोगों में बड़ा उत्साह नजर आ रहा था। अध्यक्ष ने श्रोताओं की उत्सुकता देखते हुए उठकर वक्ता का परिचय कराते हुए कहा, "आनन्द जय आदर्श का नाम किसी विशेष परिचय का मुहताज नहीं; एक गोंड लड़की से विवाह करके वे यह प्रमाणित कर चुके हैं कि उन्हें आदिवासियों से अथाह प्रेम है। आनन्द जय आदर्श आज हमारे सम्मुख न केवल अपने अनुसन्धान पर प्रकाश डालेंगे, बल्कि वे हमारी 'मानव संस्कृति परिषद' के इतिहास में एक नये अध्याय की वृद्धि करेंगे।"

आनन्द ने उठकर कहना आरम्भ किया:

"बहनो और भाइयो! मैं आदिवासी भारत में अपने दस वर्षों के अनुभव से यह कह सकता हूँ कि देश की प्रगति आदिवासियों की प्रगति के बिना असम्भव है। जो लोग आदिवासियों की गणना पिछड़ी हुई जातियों में करते

हैं उनका विचार भ्रान्तिपूर्ण है। आदिवासी सदैव प्रगतिशील रहे हैं। अब जिस चीज़ की सबसे बड़ी आवश्यकता है वह यह है कि उनकी आर्थिक प्रगति के लिए हम अधिक-से-अधिक सहयोग दें और उनकी प्रगति में अपनी प्रगति मानें। आदिवासी भारत में मालगुजारी प्रथा को खत्म करने के लिए सरकार को शीघ्र-से-शीघ्र कदम उठाना चाहिए; वहाँ पक्की सड़कें बनाई जायँ, हस्पतालों की ठीक व्यवस्था की जाय, शिक्षा के नये उपयोगी केन्द्र स्थापित किये जायँ!"

श्रोताओं ने देर तक तालियाँ बजाकर विद्वान वक्ता की दाद दी!

आनन्द ने दोबारा कहना आरम्भ किया :

"बहनो और भाइयों! मेरी पत्नी का जन्म एक गोंड-परिवार में हुआ। गोंड-संस्कृति उसके अंग-अंग में रची हुई है और वह इस पर बिल्कुल लज्जित नहीं है, जहाँ तक कि हमारा विवाह भी गोंड रीति से हुआ और हमें इस पर गर्व है। जो लोग गोंडों को बिलकुल असभ्य समझते हैं उन्हें मेरी दोनों पुस्तकों का अध्ययन करना चाहिए, जिनका प्रकाशन बम्बई के प्रतिभा प्रकाशन-गृह से हाल ही में हुआ है। एक पुस्तक में गोंड लोकगीत संकलित किये गये हैं; दूसरी पुस्तक में गोंड कला और संस्कृति की विवेचना प्रस्तुत की गई है। मैंने अपनी पुस्तक में केवल छः सौ गोंड लोकगीतों के अनुवाद दिये हैं; मैं कह सकता हूँ कि गोंड लोकगीत काव्य की दृष्टि से एक हजार वर्ष पुराने चीनी गीतों से टक्कर ले सकते हैं, कहीं-कहीं तो उनमें प्राचीन वैदिक काव्य से भी अधिक सुन्दर छवि-अंकन दृष्टिगोचर होता है। मैं कहता हूँ गोंड लोकगीत तो लोगों की जबान पर जीवित हैं। संस्कृति की गोंड जीवन में जो बहुमूल्य थाती उपलब्ध है उसे किसी संकट की आशंका नहीं है। मैंने अपनी पुस्तक 'गोंड संस्कृति: एक अध्ययन' की भूमिका में नृतत्त्व शास्त्र के एक विद्वान् का एक उद्धरण प्रस्तुत किया है—'आदिवासियों की वास्तविक समस्या है उनकी सांस्कृतिक और कलात्मक सम्पन्नता जो समस्त विश्व के विद्वानों और शासकों को परेशान किये हुए है। हम आदि-

वासियों की इस सांस्कृतिक और कलात्मक थाती का कैसे उपयोग करेंगे? क्या हम भारत के आदिवासियों को उस विनाश से बचा सकते हैं जिसका प्रहार अफ्रीका और प्रशान्त सागर के प्रदेशों के आदिवासियों पर हुआ है?' अब मैं कहता हूँ हमें किसी ऐसे तथाकथित विनाश के भय से घबराने की आवश्यकता नहीं है। संस्कृति स्वयं अपनी रक्षा करती है; संस्कृति तो निरन्तर परिवर्तनशील है, यह कोई बनी-बनाई वस्तु नहीं है; स्वयं आदिवासी समयानुकूल अपनी संस्कृति और कला में नये-नये उपादान लाते रहे हैं, अनुपयोगी बातें स्वयं सूखे पत्तों के समान झड़ जाती हैं······"

भाषण के प्रभाव से लोग मन्त्रमुग्ध-से बैठे थे। रूपी की दृष्टि बार-बार सामने वाली कुर्सियों पर बैठी हुई स्त्रियों की ओर उठ जातीं जो हर बार तालियां बजाने में पुरुषों पर बाजी ले जातीं। उसे लगा कि बम्बई का समस्त सौन्दर्य आज मानव-संस्कृति परिषद् में चला आया है। इस सौन्दर्य के जादू से उसका पति कैसे बच सकता है, यह सोचकर उसके मस्तिष्क पर गहरी चोट लगी। तो क्या आनन्द ने उसे अपनी दुलहन बनाकर गलती की थी?···

लोगों की तालियाँ सुनकर रूपी ने इधर-उधर देखा। आनन्द का भाषण खत्म हो गया था, रूपी का कन्धा झंझोड़कर आनन्द ने उसके कान में कहा, "अब तैयार हो जाओ, रूपी! बहुत अच्छा बोलना जिससे मेरी लाज रह जाय! सुनो, अध्यक्ष महोदय तुम्हारी प्रशंसा कर रहे हैं।"

अध्यक्ष महोदय कह रहे थे, "···अब श्रीमती रूपी जय आदर्श का भाषण सुनिए!"

रूपी अपने स्थान से खड़ी हुई। वह लड़खड़ा रही थी। उसके मुँह से अभी 'बहनो और भाइयो!' शब्द ही निकले थे कि वह ग़श खाकर गिर गई।

मंच पर हड़बड़ी फैल गई; सभा में शोर उठा। कुर्सियों से उठ-उठकर श्रोतागण मंच की ओर बढ़े।

७०

सी विक होटल के कमरे की खिड़की से रूपी समुद्र का दृश्य देख रही थी और सोच रही थी कि वह करंजिया से कितनी दूर चली आई। अब वह आसाम तो बिल्कुल नहीं जायगी। उसकी कल्पना में झूलन का चित्र घूम गया; बेचारा मेरे लिए कितने वर्ष लामसेना बना रहा। तो क्या मैंने उसके साथ विवाह न करके कोई अपराध किया? वह तो अभी तक अविवाहित होगा, शायद अभी तक मेरे लिए ही बैठा हो! उसकी बचपन की सखी फुलमत जैसे उससे कह रही हो—मुझे तो एक ही ग़म है रूपी कि तू हमें छोड़कर चली गई। सोम ने उसका जो चित्र बनाया था, उसका ध्यान आते ही कलाकार की तूलिका उसकी कल्पना में घूम गई। बचपन में सुना हुआ एक गीत उसकी कल्पना के तट से यों टकराने लगा, जैसे नीचे लहरें सागरतट को छू रही थीं :

मॉंदर अधीन बोले रे
मॉंदर के खुरन उचट गये, मॉंदरी!
मॉंदर अधीन बोले रे

न मोला खाय जाय
न मोला पिये जाय
न मोला किछुई सुहाय
माँदर अधीन बोले रे
माँदर अधीन बोले रे
माँदर के खुरन उचट गये, माँदरी !
माँदर अधीन बोले रे

और आज उसका जीवन भी तो इसी माँदर के समान था, जिसका मसाला उतर गया हो। माँदर अधीन बोल रहा था; न खाना अच्छा लगता था न पीना, कुछ भी अच्छा नहीं लगता था। वह यहाँ क्यों चली आई? उसने कब सोचा था कि वह इतनी दूर आ जायगी। घर की याद उसे बुरी तरह सता रही थी। करंजिया के नदिया टोला में तो उसके घर की बगल में एक पोखर ही था जिसके ऊँचे किनारे पर खड़े होकर वह किसी सागर के स्वप्न देखा करती थी—ऐसे ही एक स्वप्न को देखते-देखते ही तो वह पोखर में गिर गई थी। भूलन का चेहरा उसकी आँखों में फिर घूम गया जिसने पोखर में छलाँग लगा दी थी और उसे निकाल लाया था; करंजिया हस्पताल की नर्स कंचन गौरी यह खबर सुनकर दौड़ी हुई आई थी। तो क्या अब वह अपने उस पोखर को कभी नहीं देख सकेगी? उसकी जन्म-भूमि क्या और भी दूर होती जायगी? गीत के बोल गुनगुनाते हुए उसे ख्याल आया कि एक बार उसने यह गीत आनन्द को भी सुनाया था। आनन्द ने कहा था, "हम माँदर पर फिर मसाला लगा सकते हैं; हम माँदर को हारी हुई आवाज़ में नहीं बोलने देंगे। यह माँदर भी यही कहता है रूपी कि जीवन की डगर बहुत लम्बी है, इस डगर पर चलते रहने में ही भलाई है।"

उसने पीछे मुड़कर देखा; चुन्नू मियाँ सामान बाँध रहा था। उसके जी में तो आया कि ऊँची आवाज़ से कहे—बाबा, आज सामान न बाँधो, हम

आज रात की गाड़ी से नहीं जायँगे। लेकिन वह खामोश खड़ी रही।

रूपी ने खिड़की से हटकर आइने में अपना चेहरा देखा; उसे अपने माथे पर लगी हुई चोट नज़र आई; मानव संस्कृति परिषद् के मंच पर ग़श खाकर गिरने का दृश्य उसकी आँखों में घूम गया। आज सवेरे चाय पर बैठे-बैठे उसने आनन्द से साफ-साफ कह दिया था कि वह तो करंजिया जायगी; इसके उत्तर में आनन्द ने कहा था, "हम अर्द्धनारीश्वर हैं, हम तो इकट्ठे ही आसाम जा सकते हैं, तुम्हारे बिना वहाँ जाकर मैं आदिवासियों में सेवा-कार्य नहीं कर सकूँगा।" आनन्द के इतना कहने पर रूपी कुछ नहीं बोली थी···उसे अपने रूप और वेश पर हँसी आ गई, साथ ही क्रोध भी आया। करंजिया वाला रूप और वेश कौन-सा बुरा था? उसे क्यों छोड़ना पड़ा? उसे लगा जैसे करंजिया वाला रूप छोड़कर उसने बहुत-कुछ गँवा दिया। उसके बदले में क्या पाया?

अचानक किसी ने दरवाजे पर दस्तक दी; रूपी ने उचककर दरवाजे की ओर देखा और चुन्नू मियाँ से कहा, "दरवाजा खोलो, वे आ गये, बड़े बाबा!"

आनन्द ने आते ही पूछा, "सब सामान बँध चुका, बड़े बाबा?"

"सामान तैयार है, राजा बाबू!" चुन्नू मियाँ ने आगे आकर कहा; उसकी आँखों में राजा बाबू का बचपन से लेकर अब तक का चित्र घूम गया।

"तुम भी तैयार हो न!" आनन्द ने रूपी के समीप जाकर कहा, "सचमुच इस खिड़की से सागर बहुत सुन्दर नज़र आ रहा है, लेकिन अब तो चलने का प्रोग्राम बन चुका। मैं तो टिकिट भी ले आया हूँ!"

"मैं आज नहीं चल सकती," रूपी ने उदास स्वर में कहा, "मेरा मन अच्छा नहीं।"

"क्यों; क्या हुआ है?"

"मुझे मेरा बचपन, मेरा करंजिया पीछे खींच रहा है।"

"लेकिन हमें तो आसाम बुला रहा है, रूपी!"

रूपी कुछ न बोली, उसने आइने में अपना चेहरा देखा और मुँह फेर लिया।

"इन्सान के पीछे अनगिनत सदियों का सफ़र है," चुन्नू मियाँ ने गंजे सिर पर हाथ फेरते हुए कहा, "इन्सान के सामने भी अनगिनत सदियों का सफ़र है; अब अनगिनत सदियों का सफ़र तो अनगिनत सदियों में खत्म होगा।"

"लेकिन अब तो यात्रा के नये-नये साधन निकल आये हैं, बड़े बाबा!" आनन्द ने कहा, "मैं तो समझता हूँ इन्सान सदियों का सफ़र लमहों में तय करने का कायल रहा है और इसी में इन्सान की महानता है।"

रूपी अनमनी-सी खड़ी रही।

"जानते हो इन्सान का सफ़र किस लिए है?" चुन्नू मियाँ ने एक पैगम्बर के स्वर में कहा।

"बताओ, बड़े बाबा!" आनन्द की आँखें चमक उठीं!

"इन्सान को इन्सान की तलाश है!" चुन्नू मियाँ ने जोरदार आवाज़ में कहा।

रूपी ने अर्थसूचक दृष्टि से आनन्द की ओर देखा और कहा, "सुन रहे हो? इन्सान को इन्सान की तलाश है!"

"इन्सान को इन्सान की तलाश है।" चुन्नू मियाँ के हाथ छल्लेदार दाढ़ी पर आ टिके, उसकी आवाज़ में किसी दार्शनिक का अनुभव बोल रहा था, "इन्सान को इन्साफ़ की तलाश है, अमन की तलाश है। यह मैं इन आँखों से देख रहा हूँ। अल्ला पाक भी इन्सान की तलाश में दखल नहीं दे सकते। हर सफ़र की एक मंज़िल है, मंज़िल से पहले कई पड़ाव आते हैं।"

रूपी ने चुन्नू मियाँ की ओर देखा और वह मन्त्रमुग्ध-सी खड़ी रही।

"यह तो समुद्र भी जानता है!" आनन्द ने कहा, समुद्र में जहाज़ चलते हैं। कोई जहाज किसी एक बन्दरगाह पर आकर रुक जाय और समुद्र के नीले पानियों पर चलने के उसके सारे सपने हमेशा के लिए खत्म

हो जायँ तो कितनी हास्यास्पद बात होगी।"

"लेकिन मेरा करंजिया?" रूपी ने वेदना-मिश्रित स्वर में कहा।

"मेरा मोहेंजोदड़ो भी तो पीछे छूट गया," आनन्द ने यात्रा के लिए लालायित खानाबदोश के स्वर में कहा, "तुम्हारा करंजिया पीछे छूट गया। पर सच पूछो तो कुछ भी पीछे नहीं छूटता। मानव अपने अतीत को साथ लेकर आगे की ओर चलता है। लाख गिर-गिर पड़े मानव, लाख भूलें करे, लेकिन बार-बार उठता है मानव, भूलों को सुधारता है मानव—यही तो है मानव का गतिशील सत्य, मानव का विकासशील सत्य; यही है मानव की विजय-यात्रा, मानव की सत्य-यात्रा—इसी का उत्तराधिकारी है मानव। आज हम आसाम जा रहे हैं; कल उससे आगे जायँगे—मानव की उसी गतिशील परम्परा में योगदान देने के लिए। जीवन का रथ तो संसार की डगर पर आगे-ही-आगे जायगा।"

"रथ नहीं रुक सकता!" चुन्नू मियाँ ने अपने गंजे सिर पर हाथ फेरा और छज्जेदार दाढ़ी को थामकर कहा, "कोई रथ से उतर जाय चाहे कोई रथ पर सवार हो जाय, रथ नहीं रुक सकता। पहिये चलते रहें, पहिये रुकने न पायँ। चलो, पहियो! कभी-हौले-हौले, कभी तेज़-तेज़। चलो, पहियो!"

रूपी की आँखों में एक नई चमक आ गई, जैसे रथ के पहिये असंख्य शताब्दियों की यात्रा कुछ ही क्षणों में तय करने के लिए मचल उठे हों।